बालिका का सकारात्मक आत्म-बोध विकास

प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों व मुख्य शिक्षकों के लिए साधन सामग्री

उषा नय्यर

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अगस्त 1997
श्रावण 1919

PD 3T GR

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन, बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	**बैंगलूर 560085**	**अहमदाबाद 380014**	**24 परगना 743179**

रु. 82.00

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नाथ ग्राफिक्स, 1/21, सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली 110 016 द्वारा लेजर कंपोज होकर ताज प्रिंटर्स, 69, नजफगढ़ रोड, इण्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली 110 015 द्वारा मुद्रित।

आमुख

आज देश की स्वतंत्रता का अर्ध शतक पूरा हुआ। आज़ादी की लड़ाई में जुटी आम जनता और उसका नेतृत्व कर रहे पुरुषों और महिलाओं ने मिलकर एक नये भारत का सपना देखा था। एक ऐसा भारत जहाँ कोई भूखा न रहे, जहाँ कोई रोग से पीड़ित न हो, जहाँ कोई व्यक्ति अशिक्षित न हो, जहाँ जाति, धर्म, लिंग आधारित भेद भाव न हों। भारतीय संविधान ने इन सपनों को अपनी धाराओं में बाँधा। यहाँ हर नागरिक समान अधिकार व दायित्व रखता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष और किसी भी जाति अथवा धर्म का हो। एक ऐसे न्यायसंगत लोकतंत्र की संरचना करने में शिक्षा क़ा एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा की प्राप्ती, अच्छी सेहत, खेल-कूद के अवसर और स्वच्छंद अभिव्यक्ति हर बच्चे का जन्म-सिद्ध अधिकार, चाहे वह लड़का हो या लड़की और किसी भी जाति अथवा धर्म का हो। संविधान और उसके अन्तर्गत कानूनों और नीतियों द्वारा, ऐसे अवसर जुटाने का प्रयास किया गया है जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो पाये। लगातार बढ़ती जनसंख्या ने यह प्रयास विफल कर दिये हैं और लिंगाधारित भेदभाव और पूर्वाग्रहों से ग्रसित मानसिकता को हम बदल नहीं पाये।

आज भी देश में बालिकायें और महिलायें शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी हुई हैं और सामाजिक अवेहलना, यहां तक कि हिंसा से ग्रसित हैं। आज हमारे शिक्षकों के सन्मुख दो मुख्य चुनौतियां हैं। प्रथम हम सभी बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ सकें। वह न केवल प्रवेश ही पायें पर हम कुछ ऐसा करें कि वह अपनी शिक्षा सफलता पूर्वक पूरी करें। प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण सही शब्दों में तभी होगा जब प्रत्येक लड़की और लड़का इस सीढ़ी को पार कर उच्चतर शिक्षा के प्रतिभागी बनें। यह तभी हो पायेगा जब समाज महिलाओं को सम्मान देगा और बालिकाओं को वह हर ऐसा अवसर जिससे वह भविष्य की सशक्त महिला बन पायें। इसलिये, हम बालिका में एक सकारात्मक आत्म-बोध का विकास कर पायें, यह हमारी दूसरी प्रमुख चुनौती है। हमें बालिका को एहसास दिलाना है कि वह किसी से कम नहीं और उस की हर प्रतिभा को उजागर करने का प्रयास करना है। शैशव क़ाल से ही भेदभाव की दोहरी नीति स्वरूप बालिका अपने आप को निम्न और हीन महसूस करती है और यही धारणा लेकर वह बड़ी होती है। और हमारे पुरुष प्रधान समाज में, लड़कों के लालन-पालन करने में कोई कमी नहीं की जाती; लाड-प्यार, घूमने फिरने की स्वच्छन्दता, अच्छा भोजन, शिक्षा, सभी साधन दिये जाते हैं। यहां तक कि यह स्वच्छंदता अक्सर उच्छृंखलता का स्वरूप ले लेती है और उनमें हिंसक प्रवृतियां जगाती हैं।

भावी पीढ़ी के निर्माण में जुटे शिक्षकों से हमारा आह्वान है कि वह लिंग भेद और लिंगाधारित पूर्वाग्रहों का दमन करें और पाठशाला को सभी बच्चों के सर्वांगीण विकास की कर्म भूमि बनायें। समाजिक कूरीतियों के दमन में समाज की अगुआई करें और महिलाओं को समानाधिकार और सम्मान से सुसज्जित करें। कोई भी देश उतना ही ऊपर उठ सकता है, जहां

तक उसकी बालिका या महिला की पहुँच है। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहे भारत को सबल बनाने में उसके दोनों हाथ, दोनों पांव मजबूत बनाने होंगे – बालक और बालिका को समान अवसर देने होंगे। शिक्षा के माध्यम से महिला समानता और सशक्तिकरण में अपनी भूमिका निभायें और अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रतिपालन करते हुये देश के हर क्षेत्र में महिलाओं की प्रतिभागिता को बढ़ाये।

आशा है हमारे शिक्षक साथी इस साधन सामग्री को पुर्वोत्तर लक्ष्यों की प्राप्ति में उपयोगी पायेंगे। यह पुस्तिका, हमारी सहभागी प्रोफ़ेसर उषा नय्यर ने तैयार की और इस के निर्माण में दिल्ली स्थित तिन्नारी नामक स्वैछिक संगठन की भूमिका सराहनीय है। यह प्रोजेक्ट युनेस्को के सौजन्य से पूरा किया गया। हम स्थानीय युनेस्को आफिस और उसके विशिष्ठ विशेषज्ञ डा० वारेन मैलर का आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस साधन सामग्री के अंग्रेजी संस्करण "फ्राम गर्ल चाइल्ड टू परसन" को प्रकाशित किया। हिन्दी में इस साधन सामग्री को हम देश की बालिकाओं और उनके स्वर्णिम भविष्य को समर्पित करते हैं।

आशा है, हमारे सभी हिन्दी भाषी राज्य तथा संघ–शासित क्षेत्र इस साधन सामग्री का प्रयोग अपने अध्यापकों के सेवा-पूर्व प्रशिक्षण और सेवारत प्रशिक्षण में पूरा प्रयोग करेंगे।

अशोक कुमार शर्मा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अगस्त 1997

प्राक्कथन

इस तथ्य को अनकही मान्यता प्राप्त है कि उस समाज में जहां महिला जीवन और आदर को कमतर समझा जाता है वहां महिलाएं अपने को कम आंकती हैं तथा उनका आत्मबोध अपर्याप्त और नकारात्मक ही होता है। यह धारणा शैशव और बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हो जाती है और किशोरावस्था और युवावस्था तक आते-आते पुष्ट हो जाती है। प्रारम्भ में माता-पिता अपने बच्चों को प्रभावपूर्ण लिंगाधारित पहचान से अवगत करा कर उन्हें समरूप आत्मबोध प्रदान करते हैं और फिर आगे चलकर स्कूल और समाज इस पहचान और बोध का पुष्टीकरण कर देता है। वह लड़के और लड़कियों को यह विश्वास दिलाते हैं कि न केवल वे एक दूसरे से भिन्न हैं बल्कि असमान भी हैं और लड़के ऊंचे हैं और सशक्त हैं और लड़कियां नीची, मातहत और निःशक्त हैं। इस प्रकार से दो वर्ग गुथ जाते हैं जो आज की चाही-अनचाही प्रसारण माध्यम पल्लवित कल्पना में लड़कों को न केवल स्वतंत्र बनाते हैं बल्कि लड़कों में गैर-जिम्मेदार व्यवहार, आक्रामक और प्रभुत्व वाला व्यक्तित्व पनपाते हैं। लड़कियों को इस प्रभुत्व को स्वीकारना सिखाया जाता है, इस हद तक कि वे अपने विरुद्ध हिंसात्मक रवैया भी स्वीकार लें और उनसे परावशता व परावलम्बन ही व्यवहार संहिता में अपेक्षित होता है।

स्कूल को माता-पिता के सहयोग से न केवल बालिकाओं को निम्न आत्मबोध और आत्म सम्मान के चक्र से मुक्त कराना है बल्कि लडकों के सामाजिक मान्यतागत आक्रामक और नियंत्रक आत्मबोध को बदलने की सजग चेष्टा भी करनी होगी। स्कूल से पूर्वजो लिंगाधारित संबंध और लिंगाधारित परिचय बच्चों में पनपते हैं उनका स्कूल में पुष्टीकरण होता है। परिवार में होने वाले महिलाओं और बालिकाओं के प्रति हिंसात्मक व्यवहार का प्रतिबिम्बन सड़कों पर भी होता है। लड़कों में लड़ाई, झगड़े करने की प्रवृति पनपती है जो आगे चलकर साम्प्रदायिक दंगों और युद्ध का रूप ले लेती है। इस सब से महिलाओं पर और अधिक हिंसात्मक आक्रंमण होते हैं जो महिला छेड़-छाड़, लैंगिक उत्पीड़न से लेकर उनकी हत्या तक बढ जाते हैं। इसलिए स्कूल को बराबरी से दोनों समुदायों के साथ मेहनत करनी पड़ेगी – लड़के और लड़कियां – जिससे वह आज के समय के अनुकूल सकारात्मक आत्मबोध से लैस हो सके। जाति, धर्म और लिंग भेद की अवहेलना में मानव जाति के लिए सामाजिक भूमिका के रूप में अत्यधिक सम्भावनायें है। संवैधानिक लोकतंत्र, वैज्ञानिक अनुसंधान और वैज्ञानिक अभिरुचि कुछ ऐसे नये स्थापन हैं जो महिलाओं और पुरुषों क़ो व्यक्तिगत योग्यता और मानवीय गुणों के आधार पर प्राप्त भूमिकाएं प्रदान करने का अवसर दे रहे हैं, जो उनकी अभी तक की पुरुषगत या महिलागत गुणों या स्वभाव की उपलब्धियों के विपरीत हैं। आज के बच्चों को परिवार, बाजार, राज्य में बराबरी और सामंजस्य पूर्ण जीवन–यापन की नई भूमिका के लिए तैयार करना है।

जन्म से 5 वर्ष की आयु तक और बचपन-किशोरावस्था से 18 वर्ष की आयु के जो दो आयु वर्ग

हैं, स्कूली स्थिति उनके बीच में एक कड़ी है। स्कूल को दो बातों को ध्यान में रखना है। प्रथम यह कि 5 वर्ष की आयु तक बच्चा अपनी समूहगत लिंगाधरित भूमिका सीख लेता है। द्वितीय यह कि शिक्षक चाहे वे पुरुष हों या महिला, उन्हीं समुदायों और संस्कृतियों से आते हैं और उनमें लिंगाधारित सामाजिक भूमिका की वही गहरी छाप होती है। शिक्षक उसी सांस्कृतिक अभिव्यंजना की व्युत्पत्ति करते हैं जो पुरुष को सकारात्मक और सशक्त और महिला को नकारात्मक और निःशक्त माने बैठे हैं। इसीलिए उनका अपना आत्मबोध करके लिंगाधारित होता है। उन्हें बालक-बालिकाओं को समानता और शान्ति संदेश के पुनः अनुकूल न के लिए अपने आपको प्रति अनुकूलित करना पड़ेगा जिससे वे यह समझ सकें कि लिंगाधार क्यों और किसलिए हो, समानता के वे औपचारिक यंत्र क्या हैं और उनमें विश्वास हो और फिर वे व्यावहारिक और सुरक्षित ढंग से स्कूली पाठ्यक्रम और कार्यक्रम में हस्तक्षेप बूझ सकें।

अन्ततोगत्वा एक शिक्षक का दायित्व केवल बच्चों की बौद्धिक परिपक्वता को विकसित करना ही नहीं है बल्कि उनका सम्पूर्ण विकास शिक्षकों की जिम्मेदारी है। पाठ्यक्रम के विशिष्ट लक्ष्यों को पूरित कराने के साथ-साथ शिक्षक को यह भी ध्यान देना है कि बच्चे किस प्रकार के मानव बन रहे हैं। अगर शिक्षक इस प्रकार के दायित्व से अपने आपको मुक्त भी माने और अपने शिष्यों के बौद्धिक विकास मात्र तक अपने कर्त्तव्य को सीमित रखें तो भी शिक्षकों की प्रक्रिया, उनका आचरण और व्यवहार उनके शिष्यों को प्रभावित करता ही है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसकी कार्य योजना ने महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा को समस्त शैक्षिक प्रयास के लिए एक सोपान समझा है। महिला सशक्तिकरण की पूरी युद्ध नीति का पहला आक्रमण महिलाओं और बालिकाओं का आत्म सम्मान और आत्म विश्वास बढ़ाने के लिए ही होना है। महिलाओं के समाज के प्रति योगदान से एक सकारात्मक छवि उगानी होगी। उनमें समीक्षात्मक सोच की क्षमता का विकास करना होगा जिससे वे निर्णय के आधार पर चुनाव कर सकें और सामाजिक प्रक्रियाओं में बराबरी से भागीदारी निभा सकें।

प्रस्तुत साधन सामग्री शिक्षकों तथा प्रधान शिक्षकों के द्वारा सामूहिक स्वयं शिक्षण प्रणाली के लिए तैयार की गई है। इसका उद्देश्य है कि एकाकी शिक्षक अथवा अनौपचारिक शिक्षा का इन्स्ट्रक्टर मिलजुल कर लिंगाधारित समानता और छात्रों में सकारात्मक आत्मबोध विकास हेतु प्रयत्नशील हों। आशा है कि शिक्षक तथा सिखाने वाले इसमें कुछ जोड़ घटा कर क्षेत्रीय भाषा तथा परिप्रेक्ष्य में ऐसी तथा अपने परिवेश की इसमें अच्छी साधन सामग्री बना सकेंगे। यदि ऐसा हो जाता है तो इस सामग्री का संकलन सफल हो जाएगा। हमारा प्रमुख लक्ष्य है इस "आत्म खोज" की

प्रक्रिया को प्रस्फुटित करना, एकजुट होकर कार्यरत होने का परिसंवाद फैलाना :

क. जिससे यह समझ आए कि असमानताएं आंत्रिक है, और

ख. लड़कियों मे (लडको में) सकारात्मक आत्मबोध के विकास में सहायता करने के लिए पाठ्यक्रम में व्यावहारिक मध्यस्थता नियोजित करनी होगी जिससे वे नागरिकों, अभिभावकों, कार्यकर्ताओं, नेताओं के रूप में उभर सकें जिसमें दृढता सक्षमता और सहानुभूति जैसे गुण उपजें।

यदि हम अपने शिक्षक अथवा इन्स्ट्रक्टर के रूप में लड़कों और लडकियों को उनके व्यक्तित्व के विकास की यात्रा को विकसित मानव के परिधान से सजा सकें तो हम बच्चों के प्रतिं अपने ऋण से मुक्त हो सकेंगे। तब ही यह नन्हे-मुन्हें आपस में मिलजुलकर एक सुन्दर भविष्य की संरचना से जुड़ जाएंगे बजाय इसके कि आपस में गुत्थम-गुत्था, मार-पिटाई की प्रवृतियों को बढ़ावा दें।

इस पुस्तिका को बनाने का कार्य यूनेस्को दिल्ली आफ़िस के सौजन्य से सम्पन्न हुआ। प्रो. वारेन मैल्लर, सीनियर स्पेशलिस्ट यूनेस्को के विशेषकर आभारी हैं, जिन्होंने इस संसाधन सामग्री को शिक्षकों के लाभार्थ संकलित करने का एक आगामी कदम उठाया। 'तिन्नारी' सेन्टर फार थर्ड वर्ल्ड वीमेन्स स्टडीज़ ने इस परियोजना को पूर्ण रूप दिया। मैं प्रोफेसर सरोजिनी बिसारिया अध्यक्षा, तिन्नारी की आभारी हूँ, जिन्होंने अपने सतत सहयोग से इस कार्य को सम्पन्न करवाया।

उन सब शिक्षकों को जो इस सामग्री का प्रयोग करते हुए उसमे अपने सुझाव व विचार जोड़ेंगे उनका हम धन्यवाद करते हैं। आशा है कि यह तिन्नारी का यह छोटा सा प्रयास बालिका की आगे की यात्रा को सुलभ बनाएगा।

ऊषा नय्यर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महिला अध्ययन विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

विषय सूची

परिचय

परिप्रेक्ष्य

शिक्षा हरेक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। सब ही को शिक्षा पहुंचाने के प्रयत्न लगातार किए जा रहे हैं । इस संदर्भ में शिक्षा में कार्यरत लोगों को दो प्रमुख चुनौतियों का सामना करना है:

1. पहली चुनौती है कि अच्छे किस्म की पढ़ाई-लिखाई सब तक पहुंचा सकें। विशेषतः महिलाओ और बालिकाओं के लिए क्योंकि वह पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक पिछड़ी हुई हैं।

2. दूसरी चुनौती है कि वह कौन से यत्न करें जिससे शिक्षा महिला समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण को लेकर चल सके और भारतीय समाज को हमारे संवैधानिक मन्तव्यों तक पहुंचा सके।

किसी भी काम को पूरा करने के लिए साधनों की जरूरत होती है। पहली चुनौती में अधिकाधिक संसाधन जुटाना और सब लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना है। यह शायद उतना कठिन नहीं जितना कि प्राणी मात्र में ऐसा मानसिक बदलाव लाना कि वह समानता की अवधारणा को स्वीकार सकें और आत्ससात् कर ले। प्रथमतः उन्हें इस बात से अवगत कराना होगा कि मानव अधिकार और भारतीय सविधान के मूल अधिकार स्त्री-पुरुष समानता के बीजक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संस्थानों ने इस अधिकार को स्वीकारा है। यह बात समझने के बाद वह जनमानस बन जायेगा जो आज की तेजी से बदलती हुई दुनिया में नर-नारी की बदलती हुई सामाजिक भूमिका को आत्मसात् कर लेगा। इस प्रकार शिक्षा नई पीढी को एक शान्तिपूर्ण और समानता पर आधारित भविष्य के लिये तैयार करने की सचेत कोशिश कर पायेगी।

पठन सामग्री तथा कार्यानुभवो के निर्माण मे औपचारिक और अनौपचारिक शाला, पाठ्यक्रम और शिक्षकों की प्रमुख भूमिका होती है। विशेषकर तब जब बालक-बालिकाओं में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बराबरी की सूझ-बूझ पनपानी हो जिससे साझेदारी और एक सम्मिलित भविष्य के लिए उन्हें प्रेरित किया जा सके। पारम्परिक परिवार प्रथा तथा मूल्यो पर केन्द्रित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संस्थाएँ जो नारी को निम्न स्थान प्रदान करते है और उनके आत्म विश्वास तथा पहल शक्ति का हनन करते हैं, उन्हें समझते हुए, बहुत ही सूझ–बूझ से नकारना होगा। नारी के प्रति रूढिवादी विचारधारा वाली सभी सामाजिक संस्थाएँ स्कूल की समानता चेष्टा की प्रतिद्वन्द्वी हैं।

बालिका जन्म से ही तिरस्कृत है और तबसे ही वह यह महसूस करती है कि उसकी जरूरत नही। तरह-तरह के नकारात्मक संकेत उसे मिलते रहते हैं। उसको भेदभाव झेलना पडता है खासतौर से खेल-कूद, खान-पान और स्वास्थ्य संरक्षण में। उपेक्षा तो हर वक्त उसकी होती ही रही है। अक्सर उसे स्कूल जाने से वंचित रखा जाता है। वही बालिकाए तो स्कूल जा पाती है जिन्हें जन्म लेने दिया गया हो और जो पांच वर्ष की आयु पा जाए। पारम्परिक परिवारों मे ऐसा होता है कि बालिका के स्वाभाविक कौतूहल और जिज्ञासा को दबा दिया जाता है और यदि वह जरा भी बोले तो उसे रोका जाता है। इस समाजीकरण की प्रक्रिया में वह स्कूल पहुचने से पहले ही संकोची, परावशी, दब्बू और मूक बन जाती है। और वह यह मान लेती है कि वह घर व घर के बाहर दूसरे दर्जे की प्राणी है क्योंकि पहला दर्जा पुरुषोचित स्थापन में, उसका है ही नहीं। आस-पास वह लोग होते हैं जिनका उसके जीवन में विशेष स्थान होता है, जैसे माता-पिता, चाचा-चाची, बुआ, मामा-मामी तथा अन्य पारिवारिक सबंधी या मित्रगण। और यह सब जो भी कहते हैं उसे बालिकाऐं सहज मान लेती हैं। नतीजा यह होता है कि सभी जातियों, आर्थिक श्रेणियों की बालिकाएं और महिलाएं चाहे शिक्षित भी हों, अक्सर ऋणात्मक आत्मबोध से जूझती ही रहती हैं। और विद्यालय इस प्रकार के आत्मबोध और स्वधारणा को और मजबूत कर देता है।

स्वाभाविक प्रतीत होने वाला अस्वाभाविक लिंग-भेद पनपता है और दोनों लिंगों में वह विभेदीकरण उत्पन्न होता है जो तथ्य पर आधारित नहीं है। शाला परिवार में पारम्परिक भूमिका से सम्बद्ध प्रशिक्षण और क्रियाओं की ओर बढाती है जिससे वह उन्हीं व्यवस्थाओं और व्यवसायों को चुनते हैं जो लिंग भेद पर आधारित हैं। पढ़ी-लिखी महिलाएं भी उन्हीं व्यवसायों को चुनती है जो उनकी पोषक तथा सहायक पारिवारिक भूमिका का विस्तार मात्र होते हैं। और फिर सोचें जरा शिक्षक और शिक्षा प्राशासको के बारें में। वे भी चाहे नर हो या नारी, उसी सांस्कृतिक वातावरण से उभरे हैं जिनमे से उनके विद्यार्थी आज आ रहे हैं। और उन्होंने भी वही समाजीकरण प्राप्त किया था जिसमें लिंग पर आधारित कार्य विभाजन प्रचलित था, जैसे कुछ काम पुरुषों के लिए और कुछ महिलाओं के लिए ही निर्धारित थे। पुरुष वर्चस्व माने जाते है तथा परिवार के साधनों के एक बड़े हिस्से पर उनका आधिपत्य अपेक्षाकृत अधिक रहता है और वह सब से अच्छा भोजन, अधिक विश्राम और अवकाश, अधिक स्वतंत्रता के अधिकारी माने जाते हैं। संबद्ध आयुवर्ग की महिलाओं से असीमित सम्मान चाहते हैं जिसके लिए चाहे सब से अच्छा भोजन, अधिक विश्राम और अवकाश, अधिक स्वतंत्रता के अधिकारी माने जाते हैं। सबद्ध आयुवर्ग की महिलाओ से असीमित सम्मान चाहते हैं जिसके लिए चाहे बल प्रयोग ही क्यों न करें यह

सब मनोधारणायें घुट्टी में ही पिला दी जाती हैं। जब यह दो वर्ग, युवा और वयस्क, स्कूल नामक इस 'सामाजिक युक्ति' के वातावरण में अपने उन पूर्वाग्रहों के साथ मिलते है तो वह 'स्त्रीयोचित' व 'पुरुषोचित' भूमिकायें और आचार व्यवहार लेकर चलते हैं और उनकी मानसिकता में दोनों लिगों के असमान संबंध रचे बसे ही रहते हैं। पाठ्यपुस्तक तथा पाठ्यक्रमो का पुर्नावलोकन और संशोधन किया जा रहा है। प्रायः पाठ्य-पुस्तकों में महिलाओं को कमजोर दिखाया जाता है, बहादुर पुरुषों पर पूर्णतया अवलंबित मानते हुए, उन्हें भीरू, बेवकूफ, बुद्धिहीन तथा द्वेषपूर्ण दर्शाया जाता है।

शैक्षिक सामग्री चाहे छपी हुई किताबें हों या विज्ञापन, चलचित्र खबरें तथा अन्य प्रसारण माध्यम-पुरुषों को प्रधानता देते हुए जेन्डर अन्तराल को बढ़ाते हैं और स्त्रीयोचित तथा पुरुषोचित श्रम विभाजन और नर-नारी में असमान क्षमतायें हैं, ऐसी अवधारणाओं को और सुदृढ करते हैं। यह सब पुरुषों को नायक रूप मे प्रस्तुत करते हैं। बडी बात है कि महिलाएं रेडियों, दूरदर्शन पर खबरें पढ लें किन्तु वे खबरों की निर्माता नहीं होती। निर्णायक भूमिका बस पुरुषों की ही है। महिलाएं केवल प्रक्षालक तथा नहाने के साबुन के चुनने का काम करती हैं। घरेलू होना स्त्रीयोचित है, व्यापार व राजनीति पुरुषोचित। पुरुषों जैसा व्यवहार करने वाली महिला को आक्रामक और नारीत्व विहीन माना जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा संसद द्वारा अंगीकृत उसकी कार्ययोजना (पी.ओ.ए.) शिक्षा को महिला समानता तथा सशक्तिकरण का प्रभावी साधन मानती है। इसके प्रांचल हैं :

- महिलाओं में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास बढाना,
- समाज, राजतंत्र तथा आर्थिक गतिविधियों में उनका अस्तित्व दर्शाते हुए महिलाओं की छवि को सकारात्मक बनाना,
- समीक्षात्मक क्षमताओं का विकास करना,
- सामूहिक प्रक्रियाओं के माध्यम से निर्णय लेने और काम करने को बढ़ावा देना,
- महिलाओं को विशेषकर शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य (मुख्यतः प्रजनन स्वास्थ्य) के बारे में सूझ-बूझ के साथ विकल्प चुनने के लिए तैयार करना,

- विकासात्मक प्रक्रियाओं में बराबरी की भागेदारी निभाना,
- आर्थिक स्वतंत्रता के लिए जानकारी, ज्ञान और कौशल जुटाना,
- सभी क्षेत्रों में उनकी बराबरी पर आश्रित साझेदारी को बढ़ाने के लिए उनमें सामाजिक अधिकार और अपने हक को समझने के लिए कानूनी स्थिति तथा जानकारी को और बढ़ाना (संशोधित पी.ओ.ए. 1991 पृष्ठ 2)

इसको संचालित करने के लिए प्रत्येक शिक्षा संस्थान से यह अपेक्षित है कि वह महिला विकास के कार्यक्रम चलाए और शिक्षकों तथा निर्देशकों को महिला सशक्तिकरण के लिए सही ढंग से ट्रेनिंग दे जिससे वह इस काम के लिए विशेष प्रतिनिधि की भूमिका निभा सके। वे कार्यक्रम बनाये जायें जिनसे जेन्डर और गरीबी का 'सुग्रहीकरण' हो सके और जिस प्रक्रिया में शिक्षक और प्रशासक मिलजुल कर एक सफल नेतृत्व दे सकें। जेन्डर सुग्रहित पाठ्यक्रम निर्माण में तथा पाठ्यपुस्तकों से लिग भेद निकालने की प्रक्रिया राष्ट्रीय और राजकीय स्तर पर की जा रही है।

उद्देश्य

प्रस्तुत मॉडयूल शिक्षकों तथा प्रधान शिक्षकों के लिए तैयार किया गया है जिससे वह महिला समानता को पनपा सकें और लिंगाधारित विभेदीकरण का उन्मूलन कर सकें। इस मॉडयूल के प्रमुख उद्देश्य है :

1. भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री एवं पुरुषों के बीच बसी हुई असमानताओं के विभिन्न पहलुओं को समझना और संवैधानिक, कानूनी तथा निर्धारित नीतियों और कार्यविधियो को समझना और समझाना।

2. लोकतांत्रिक, न्यायशील, समानाधिकार और आधुनिक टेक्नोलॉजी पर आधारित समाज के परिवर्तनशील ढांचे में महिला और पुरुष की बदलती हुई सामाजिक भूमिका के प्रति आस्था व समझ उपजाना और इस संबंध में अपने पूर्वाग्रहों को समझना और निष्कासित करना।

3. लिंगाधारित समानता को बढ़ावा देने के लिए पाठ्यक्रम के लिए व्यावहारिक बुद्धि का विकास और कार्य नियोजन जिससे बालक-बालिकाओं में सकारात्मक आत्मबोध विकसित हो और वे प्रबुद्ध, न्यायशील, विवेकपूर्ण, नागरिकों, कार्यकर्ताओं, नेताओ के रूप में उभर सकें। उनमें हिम्मत, दृढ विश्वास बढ़े और वे अपने आप को हर स्थिति का सामना करने में सक्षम पाएं।

सीखने की एक सामूहिक प्रकिया

प्रस्तुत मॉडयूल सामूहिक रूप से सीखने के लिए तैयार किया गया है। यह एक बढ़ता हुआ संकेत है कि चाहे समूह स्थायी हो या अस्थाई, वह समूह के सदस्यों में एक दूसरे के लिए प्रेरक वातावरण उत्पन्न करके, अनेकों व्यावहारिक विचार, सामूहिक चेतना, सजग क्रिया और सबसे महत्वपूर्ण सामूहिक वचनबद्धता उत्पन्न कराते हैं। महिला-पुरुष समानता जैसे सुग्राही क्षेत्र में सामूहिक पारस्परिकता से नई सामाजिक भूमिकाओं के निर्माण के लिए बेहतर समझदारी और गतिशीलता उत्पन्न हो सकती है और सामूहिक तथा वैयक्तिक कार्य-प्रक्रिया पनप सकती है।

इस प्रकार की सामाजिक विषमताओं के समाधान के लिए जिनका उल्लेख प्रस्तुत मॉड्यूल में दिया गया है समूह के सदस्य पारस्परिक विमर्श ले सकते हैं और एक दूसरे के लिए रिसोर्स परसन का दायित्व निभा सकते हैं । इस मॉडयूल का उपयोग व्यक्तिगत अध्ययन तथा प्रयोग के लिए भी किया जा सकता है।

यह अध्ययन समूह अनौपचारिक हो सकते हैं तथा शिक्षकों की नियमित बैठकों में भी इस पाठ्यसामग्री का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसको विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर के परिवेश को बदलने के लिए एक आंदोलन का रूप देने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस साधन सामग्री का उपयोग ब्लाक रिसोर्स सैन्टर तथा डी.आई.ई.टी. में जेन्डर प्रशिक्षण के लिए शिक्षकों तथा प्रधान शिक्षकों के लाभार्थ किया जा सकता हैं।

अध्ययन समूह अपने आप ही इस साम्रगी का अनुसरण कर सकते हैं तथा किसी अन्य विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं होगी। वे स्वयं में ही रिसोर्स परसन का समूह हैं और अकसर अनौपचारिक ढंग से अपना नेता तय करके विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को चालू कर सकते हैं।

यह मॉडयूल शिक्षकों के कार्यकाल में प्रशिक्षण के हिसाब से तैयार किया गया है किन्तु सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण को सम्पादित करते समय उतनी ही उपयोगिता से इसका इस्तेमाल कर सकते हैं ।

मॉडयूल की इकाईयां सब अन्योन्याश्रित व एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। किन्तु प्रत्येक इकाई अपने में पूर्ण है और उसमें स्पष्ट निर्देशों, आवश्यक सूचनाओं और संकेतों का विनियोग है। अन्त में संदर्भ तथा अध्ययन सामग्री भी जुड़ी हुई है।

इकाई
1

लिंग भूमिका पहचान और आत्मबोध

परिचय

यह इकाई निम्नांकित विषयों पर दृष्टिपात करती है :

- शिशु तथा पांव चलने वाले नन्हे बच्चे अपने-अपने सांस्कृतिक परिवेश में किस प्रकार वयस्क महिला और पुरुष छवि में अपने आप को देखना शुरू करते हैं।
- किस प्रकार से लिंग भूमिका की पहचान पनपती है जो कि विषमतापूर्ण और अधिकतर असमान भेदभाव पूर्ण व्यवहार से लैस होती है और बालिकाओं में हेयता और ऋणात्मक आत्मबोध को उत्पन्न करती है।
- यह हेयता की भावना और ऋणात्मक आत्मबोध बालिकाओं में न सिर्फ बालिकाओं के मुखरित होने और उनकी सफलता में बाधा डालती है बल्कि पीढ़ी-दर-पीढी माताओं से बेटियों को हस्तांतरित होती है। इसके लिए सुनियोजित और युक्तिपूर्ण हस्तक्षेप की आवश्यकता है ।

अपेक्षित उपलब्धि

इस इकाई को सम्पन्न करने के पश्चात् आप निम्नांकित दक्षतायें प्राप्त कर लेंगे।

- बालकों तथा वयस्कों में आत्म विकास की उस प्रक्रिया को समझ लेंगे जो उनमें लिंग भूमिका की पहचान और आत्मबोध पनपाती है।
- लिंग आधारित भेदभाव किस प्रकार बालिकाओं में ऋणात्मक आत्मबोध, हीन आत्म सम्मान और धुंधली आत्मछवि और बालकों में वरिष्ठता और प्रभुत्व का बढ़ा-चढ़ा आइना पनपाता है- इसका मूल्यांकन कर सकेंगे।
- आप महिला और पुरुष की लैंगिक और लिंगाधारभूत सामाजिक भूमिका में अंतर समझ पायेंगे।

> घर में, बाजार में, कक्षा में, खेल के मैदान में, स्कूल मध्यावकाश में और कहीं भी हम लड़कियों और लड़कों के व्यवहार में बहुत से अंतर देखते है । उदाहरण के लिए सामान्यतः लड़के फुर्तीले, खिलाड़ी प्रवृत्ति वाले, विश्वस्त, निडर, जोशीले, कोलाहलपूर्ण होते हैं और कभी-कभी उद्दंड, आक्रामक झगड़ालू, धौंस जमाने वाले और नियंत्रण से बाहर भी हो जाते हैं।
>
> दूसरी ओर लड़कियां अक्सर विनम्र, शान्त अक्सर शर्मीली, दब्बू, कम बोलने वाली, निश्चेष्ट, आसानी से धमकी में आ जाने वाली और हर आदेश को बिना शर्त मानने वाली, अधिक फरमाबरदार और आसानी से नियंत्रण स्वीकार करने वाली होती है ।

उपरोक्त बिन्दुओं को निम्नांकित प्रतिज्ञाप्तियों के आधार पर विश्लेषित कीजिए और यदि आप चाहें तो अपने अनुभव पर आधारित और बिन्दु शामिल कर लें।

प्रतिज्ञप्ति एक

हम उन भिन्नताओं को न केवल देखते हैं बल्कि यह विश्वास करते है कि यह दोनों लिगों के लिए प्रदत्त है- जीव प्राणीगत है और इसलिए बदले नहीं जा सकते हैं।

प्रतिज्ञप्ति दो

यह भिन्नताएं दोनों लिंगों के युगायुग सामाजिकरण प्रक्रियाओं और अनुभवों पर आधारित हैं। समाज में से ही इनका निकास है और समाज में ही इनका स्थापत्य है, इसलिए समाज ही इनको बदल सकता है।

प्रतिज्ञप्ति तीन

नर-नारी की सामाजिक भूमिकाएं सांस्कृतिक देन हैं और अलग-अलग स्थिति तथा समय काल में इनमें अन्तर होता है।

प्रतिज्ञप्ति चार

आज की मानव सभ्यता पूरे विश्व में दोनों लिंगों की सामाजिक भूमिका के लिए नवीन अपेक्षाएं और नई सम्भावनाएं उत्पन्न कर रही है।

लिंग और उसकी सामाजिक भूमिका

पहला जैविक आधार गत है और दूसरा लिंग के आधार पर निर्दिष्ट विविधता को मूल्य देता है।

प्रत्येक मानव नर या मादा के रूप में जन्म लेता है लेकिन उसकी संस्कृति उसे पुरुष अथवा स्त्री बनाती है। इसलिए लिंग की सामाजिक भूमिका (जेन्डर) लिंग आधार गत सामाजिक व्यवहार की परिभाषा ही तो है।

समाज कृत अन्य भिन्नताओं में से आधारित सामाजिक भूमिका सबसे प्राचीन और सार्वभौम है। यह सामाजिक भूमिका कठिनाई से बदलती है किन्तु चूंकि यह समाज द्वारा निर्मित है इसलिए यह अमिट नही और परिवर्तित की जा सकती हैं।

हम दोनों लिंगों में अन्तर देखते हैं जैसे लड़के अधिक आक्रामक, चुलबुले और प्रतिस्पर्धी होते हैं और लड़कियां अधिक निश्चेष्ट, समाजीकृत और कहना मानने वाली होती हैं जोखिम उठाने वाले पुरुषों का झुकाव स्वार्थपरता, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति और हिंसात्मक व्यवहार (जो अक्सर महिलाओं के खिलाफ होता है) की तरफ होता है। महिलाओं का झुकाव सावधानी बरतने, स्वीकारणीय, प्रतिपालकीय और अक्सर निश्चेष्टवान व्यवहार की ओर होता है।

हम यह भी विश्वास करते हैं कि 'स्त्री-पुरुष जन्म से ही ऐसे हैं'।

लिंग आधारित सामाजिक भूमिकाएं सीखी जाती है। अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आयामों में यह भूमिकाएं हर अलग-अलग संस्कृति में अलग-अलग ही होती हैं। सामाजिक मूल्य तथा मान्यताएं विभिन्न संस्कृतियों में बहुत कुछ भिन्न होते हैं। लिंग आधारित सामाजिक भूमिकाएं कुछ हद तक सार्वलौकिक हैं किन्तु अधिकतर इनका निर्देशन एक सांस्कृतिक कृत्य हैं।

मार्गरेट मींड ने (1935) न्युगिनी की एक जनजाति के साथ काम करते हुए पाया कि:

अरापेश–पुरुष और महिलाएं दूसरों की आवश्यकताओं और मन्तव्य के प्रतिपाक्षी होते हैं और आक्रामकता तथा प्रतिस्पर्धा से बचते हैं। सारांश यह है कि उनका व्यवहार हमारी संस्कृति में नारी सुलभ माना जाएगा।

मुन्दूगुमोर – नरभक्षी-पुरुष और महिलाएं। शत्रुतापूर्ण, झगड़ालू, दूसरों के अधिकारों तथा भावनाओं से बेरुख होते हैं तथा इनको हमारी संस्कृति में पुरुष प्रधान गुण माना जाता है। चम्बूली-पुरुष संवेदनशील, असीम स्नेह से पाले गए, कलात्मक, भावावेशी और परनिंदा प्रेमी होते हैं। महिलाऐं स्थिर व्यावहारिक और आक्रामक प्रवृत्तियों की होती हैं।

अफ्रीका के पुरुष अपनी प्रकृति और अस्थिपिंजर तथा मांसपेशियों की बनावट के आधार पर कड़ी मेहनत कर सकते हैं। परन्तु अधिकतर अफ्रीकी महिलाऐं इसके विपरित ही सोचती हैं। जब उनसे यह कहा गया कि अमरीका में भारी काम पुरुष करते हैं तो अफ्रीका की महिलाओं ने आश्चर्य और असंतोष प्रकट किया। उनके विचार में अमरीकन गलती कर रहे हैं क्योंकि उनके अनुसार पुरुष शराब बहुत ज्यादा पीते हैं और खाते कम हैं जिससे ताकत का हनास होता है और वह कृषि संबंधित कठिन कार्यों के लिए उपयुक्त सामर्थ्य नहीं समेट पाते। उनके विचार से पुरुष इस प्रकार के कार्य के लिए स्वभाव से ही क्षम्य नहीं है। और शायद आप जानते हों, अफ्रीका में सारा खेती-बाड़ी का काम और बाजार घर महिलाऐं ही करती हैं तथा अफ्रीका का 75 प्रतिशत खाद्यान्न उपजाती हैं।

जुनी इन्डीयनस में (अमरीका निवासी) वर न कि कन्या, सुहागरात को डर और आशंका से चिंतित रहते हैं और जुनी समाज में अधिकतर निर्णय महिलाऐं ही लेती हैं।

ईरान में पुरुषों से सहनशीलता अपेक्षित नहीं बल्कि यह माना जाता है कि वे भावुक होंगे और यहां तक कि अनावश्यक उद्‌वेग को प्रदर्शित करेंगे। अगर वे यह सब नहीं करते तो उनमें कुछ कमी मानी जाती है और वे विश्वास के योग्य नहीं समझे जाते। ईरानी पुरुष कविता में रस लेते हैं और उनसे अंतर्बोधी और भावुक होने की अपेक्षा की जाती है न कि तार्किक। ईरान में महिलाएं तार्किक और व्यावहारिक बुद्धिवाली समझी जाती हैं।

भारत में मेद्यालय के मातृ प्रधान समूहों में स्त्री अधिक विश्वस्त और भूमि-संपति की अधिकारिणी है और पुरुष दूसरे दर्जे के अधिकारी माने जाते हैं।

केरल में नायर महिलाऐं जो अभी माक मातृ प्रधान तथा मातृ स्थान पर ही विवाहोपरान्त रहती थीं, उनमें यह प्रथा थी कि ऊंची जाति के पति रात को आते और भोर होते ही चले जाते। सम्पत्ति माता से पुत्री को प्राप्त होती। समुदाय ने अपनी यह प्रथा छोड़ दी है और अब पितृ-सत्ता प्रणाली अपना ली है। फिर भी नायर महिलाऐं अभी भी काफी हद तक साझेदारी के दृष्टिकोण को अपनाती हैं। मध्यभारत तथा उत्तर-पूर्वी प्रदेशों की जनजातियों में अधिक समानता के भाव

हैं। महिलाऐं जीविका मात्र पर सीमित परिवारों की मुख्य भरणी हैं, पुरुष शराब पीते हैं और कुछ नहीं करते। पहाड़ी जनजातियों में भी महिलाऐं अधिक मूल्यवान मानी जाती हैं, विवाह प्रणालियों में "भाग लजाना" या "भगा ले जाना" प्रथा प्रचलित है और यदि कन्या विवाह के लिए राजी नहीं होती तो उसके माता-पिता के पास वापिस भेज दिया जाता है। 1995 की 26 जनवरी को उत्तर के एक पर्वतीय राज्य की एक झांकी में दूल्हे को अपने दरवाजे पर खडा होकर, दुल्हन की बारात का इंतजार करते दिखाया गया था।

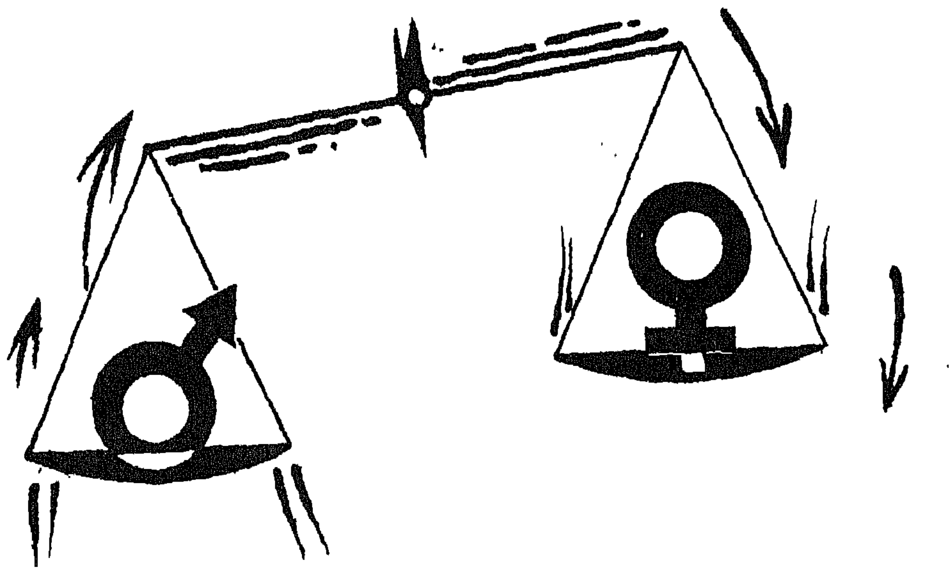
फिलीपिन में साम्राज्यवाद से पहले मातृ-प्रधान समाज था और आज भी वहां बूढे माता-पिता की सेवा-सुश्रुषा बेटियों का दायित्व माना जाता है। इससे बेटियों का मान बढ़ता है और माता-पिता उनके प्रशिक्षण और लालन-पालन पर समय और धन व्यय करते हैं। फिलीपिन में हाईस्कूल और युनीवर्सिटी में लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक संख्या में हैं।

शब्दावली

पितृ-प्रधान	:	पुरुष परिवार में सर्वशक्ति सम्पन्न होता है।
पैत्रिक	:	सम्पत्ति पिता से पुत्र को मिलती है और वंशावली भी पुत्र से ही चलती है।
पितृव्य	:	विवाह के बाद दुल्हन पति के घर पर निवास करती है।
मातृ-प्रधान	:	परिवार की सबसे बड़ी महिला ही सर्वशक्ति सम्पन्न होती है।
मात्रिक	:	सम्पत्ति माता की तरफ से बेटी को मिलती है तथा वंशावली बेटी से चलती है।
मातृव्य	:	विवाहोपरांत पति पत्नी के घर पर ही निवास करता है।



नर-नारी में व्यवसाय का आरोपन इसी प्रकार से बदल जाता है। क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि महिलाओं का सिर ज्यादा सख्त और मजबूत होता है। इसलिए अरापेश महिलाएं सिर पर बहुत बोझा लाद कर चलती हैं वैसे ही जैसे अफ्रीकी, एशियाई और भारतीय महिलाएं। तमिलनाडु की 'हैड लोडर्स' और पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों में सिर व कमर पर लकड़ी का बोझ लादे हुए जाती हुई महिलाएं भारत में एक सुपरिचित दृश्य है वैसे ही जैसे दिन-प्रति-दिन सड़कों व भवनों के निर्माण के लिए पत्थर तोड़ती महिलाएं। मरकूसा लोगों का खाना पकाना, घरदारी और शिशु पालन खासतौर पर पुरुषों का काम है और इसको देखकर राल्फ लिन्टन ने कहा 'किन्तु अधिकांश समाजों में लिंग विभाजन के नमूने निरन्तर सतत् हैं'।



आत्म बोध और आत्म सम्मान

आत्म बोध

आत्मबोध से अभिप्राय है कि एक व्यक्ति अपने बारे में क्या अवधारणाएं रखता है, अपनी विशेषताएं, अपने ज्ञान, अपनी त्रुटियां सब समझता है और दूसरे उसे कैसा समझते हैं उसका

आभास रखता है। आत्मबोध ऋणात्मक, नकारात्मक तथा अपर्याप्त हो सकता है। या सकारात्मक और पर्याप्त हो सकता है। इसी से उसकी अपनी आत्म छवि निर्मित होती है। यह समझ में आता है कि अन्य व्यक्ति हमारे बारे में क्या सोचते हैं, हमें कैसा पाते हैं। बहुधा आत्म छवि, आत्मबोध के पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त की जाती है। सही बात तो यह है कि आत्म छवि अधिकांश अपने बारे में दूसरों के प्रतिबिंबन पर निर्भर करती हे जबकि आत्मबोध में इस प्रतिबिंब के साथ-साथ अपनी अवधारणाएं, मूल्य प्रेरक, लक्ष्य, अपेक्षाएं जैसे तथ्य भी सम्मिलित हैं।

आत्म सम्मान

आत्म सम्मान आत्मबोध का सक्रिय स्वरूप हैं, जिसमें एक व्यक्ति अपने समाज के परिप्रेक्ष्य में अपना मूल्यांकन करता है। एक व्यक्ति का आत्म सम्मान इस बात पर निर्भर होता है कि वह स्वयं को कैसे मूल्यांकित करता है और जो दूसरों की अपने बारे में राय के सम्मिश्रण से उपजता है। इस प्रकार व्यक्ति का आत्म सम्मान तथा दूसरों द्वारा दिया गया सम्मान अन्योन्याश्रित हो जाते हैं। उच्च आत्म सम्मान और उच्च प्राप्ति प्रेरणा साथ-साथ चलते हैं। हीन आत्म सम्मान से स्वयं प्रताड़ित व्यवहार उत्पन्न होता है नतीजा यह होता है कि लड़कियों की प्राप्तियां कम रहती हैं और फलस्वरूप ऋणात्मक आत्म-सम्मान बढ़ता है। वे लोग जिनके लक्ष्य ऊंचे नहीं होते उनकी आत्मछवि धुंधली ही रह जाती है। ऐसे व्यक्ति असफलता से अधिक डरते हैं बजाय इसके कि सफलता के जिज्ञासी हों उनका अपने बारे में विचार कमतर ही होता है और उनकी अधिकाधिक योग्यता कम जोखिम वाले मामूली कार्यो तक ही सीमित रह जाती है।

स्वायत्व, आत्म सम्मान व सृजनात्मकता

वे व्यक्ति जो अपने फैसले आप करते हैं और जानते हैं कि वे कौन हैं, जो अपने व्यवहार की पूर्ण जिम्मदारी लेते हैं, वे अपने भाग्य की डोर को समूह के हाथ में नहीं छोड़ते। ऐसे व्यक्तियों को अन्तःशासित व्यक्ति भी कहा जाता है। सफल और सृजनात्मक व्यक्ति स्वायत्व के लक्षणों से आभूषित होते हैं और आत्म सम्मान के उच्च पायदान पर खड़े होते हैं। सृजनात्मक व्यक्ति अपने आपको व्यक्तिवादी, स्वायत्व युक्त, निश्चयात्मक, मेहनती और जोशीला समझते हैं। कम सृजनात्मकता वाले लोग अपने बारे में कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग करते हैं। जैसे जिम्मेदार, निष्कपट, बर्दाश्त करने वाले और दूसरों को समझने वाले इत्यादि और जरा कमतर छवि के होते

है। अधिक सृजनात्मक व्यक्ति अधिक सधे हुये और अपने काम में अधिक रुचि लेने वाले व क्रियाशील होते हैं।



आत्म परिपूर्ण

प्राणी मात्र को दूसरों से प्यार और सहानुभूति पाने की मौलिक आवश्यकता होती है और यदि वह नही मिलता तो रोगात्मक स्थिति हो जाती है जिससे मृत्यु तक हो सकती है। आवश्यकताओं के पांच समूह (मैस्लों 1954) चुने गए, शारीरिक सुरक्षा संबंधी प्रेम, आदर और आत्म परिपूर्ण

इन सब आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए दूसरों से तथा अन्य समूहों से आदान-प्रदान आवश्यक होता है। इस प्रकार अन्य समूहों की सदस्यता हमें एक पहचान देती है। हमारी 'खुदी' और दूसरों की खुदी हमें यह समझने की शक्ति देती है कि हम कितने हद तक दूसरों से मिलते हैं और उनसे कितने अलग हैं। अपना सामाजिक समूह-संस्कृति जीवन को अर्थ देती है, तथा एक संदर्भ प्रदान करता है और जिसके माध्यम से हम वातावरण को देखते व समझते हैं। इस प्रकार समूह वह संदर्भ केन्द्र हो जाते हैं जो हमें यह सुझाते हैं कि हम कौन हैं, हम क्या नहीं हैं, हम कैसे व्यवहार करे और हम क्या न करें। आत्म अनुभूति का सबसे पहला लक्षण यही तो होता है कि शिशु किस प्रकार माता-पिता का स्नेह प्राप्त करता है। यह शिशु अपने आपको उनके प्रेम का पात्र समझ पाता है और अपने आपको इसके योग्य समझता है और उसका माता-पिता से स्नेह संबंध स्थापित हो जाता है। यही वह केन्द्र बिन्दु है जहां से 'स्वयं' स्वरूप का ढांचा निर्मित होना शुरू होता है। क्योंकि बाह्य अनुभूति में परिवार प्राथमिक सामाजिक इकाई का रूप ले लेता है और माता-पिता इस पारिवारिक ढांचे मे उसके समाजिकरण के वाहक बनकर उसे वह लक्ष्य और मूल्य सुझाते हैं। जिससे आगे चलकर वह अपनी आचरण संहिता बना डालते हैं। दूसरों से आदान-प्रदान के लिये यह आचरण संहिता अधिकार प्रदान करती है और महत्वपूर्ण अन्य लोगों से प्रत्युत्तर प्राप्त करती है। इसी से बच्चों को यह पता लगता है कि वह कौन है और उन्हें दूसरे क्या समझते हैं। सकारात्मक प्रत्युत्तरों से सुरूचिपूर्ण आत्म छवि निर्मित होती है और उसका फल होता है आत्म परिपूर्ति । औरों का अधिक नकारात्मक रवैया और भावनायें जब बच्चों पर थोपी जाती हैं तो उनका व्यक्तित्व कुंठित होने लगता है और आत्म सम्पूरित होने के लक्षण उनमें कम होने लगते हैं। वह अपनी पूर्ण सक्षमता हासिल नहीं कर पाते।

हम सब में सकारात्मक दिशाओं में विकास की क्षमता होती है। जब हमें सकारात्मक, ग्राही वातावरण में रहने का अवसर मिलता है तब आत्म परिपूर्ण प्रक्रिया शुरू होती है।

आत्म बोध में विसंगति

जब व्यक्ति उस वातावरण में पनपता है जहां उसका नकारात्मक आत्म संबंधी धारणाओं से मुकाबला रहता है, तब वह उन धारणाओं को विपरीत प्रमाणों के बावजूद अपना लेता है। कभी-कभी हम अपने लिए उन धारणाओं को अंगीकार कर लेते हैं जो सही नहीं और यह भी जानते हैं कि किस प्रकार दूसरे लोग इन धारणाओं से हमें मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील हैं।



चकमक
जुलाई 1992

अधिकांश संस्कृतियों में 'लिंग भूमिका पहचान' तथा 'आत्म बोध' का निर्माण

सर्वमान्य व्यवहार के तरीकों के लिये सामाजिक भूमिका एक अपेक्षा होती है। माता-पिता, बड़े भाईयों, बहनों और परिवार के अन्य सदस्यों की व्यवहार प्रणाली से लिंगानुकूल भूमिका सीखी जाती है। उपयुक्त अवसरों पर इसी का पुष्टीकरण होता है। जैविक लिंग और समाजीकृत लिंग भूमिका जेन्डर विकास के कल्पनात्मक दृष्टिकोण से अलग-अलग अवधारणायें हैं। दो या तीन वर्ष की आयु के बच्चे अपने को लड़का या लड़की समझने लगते हैं और पाँच वर्ष की आयु तक वे सुनिश्चित ही अपनी लिंग भूमिका में रच बस जाते हैं।

शैशव, बाल्यकाल, स्कूल-पूर्व, किशोरावस्था और वयस्क में भूमिका इंगन



अक्सर देखा गया है कि बालिकाओं तथा महिलाओं में निम्न आत्म-छवि और ऋणात्मक आत्म आवधारणा होती है उनकी जरूरत ही नहीं है, ना ही उनका कोई मूल्य। आत्म अवधारणा के निर्माण में शिशु-पालन प्रक्रिया का बहुत बड़ा दायित्व है। हमारी संस्कृति में बच्चों को उनके लिंगाधार पर अनुभव प्रदान किए जाते हैं। लडकियों को कम प्रतिष्ठा दी जाती है, अक्सर उन्हें बोझ समझा जाता है जिससे छुटकारा पाना है और 'कमतर' दर्जा मिलता है। लड़कियां बहुत

बालपन से यह जान जाती है कि लडकों को विशेष महत्त्व दिया जाता है । दुलार करने वाले स्नेही माता-पिता के घर में भी आगन्तुक से इस प्रकार का सम्बोधन सुनने को मिल जाता है 'कितनी प्यारी बच्ची है, कितना अच्छा होता यदि यह लड़का होती' छोटी-छोटी बालिकाएं समझ लेती हैं कि कितनी उत्सुकता से एक नर-शिशु को पैदा होने पर उत्साहपूर्वक समारोह किया जाता है। वह माता-पिता जिनके केवल बेटियां होती हैं दया के पात्र माने जाते हैं। 'मेरे विषय में जरा सोचिए। मैं तीन बेटियों की माँ हूँ। मेरा दूसरा दोहिता लड़का हुआ, पहली लड़की थी । घर में अंधेरा छा गया क्योंकि इस शिशु को शारीरिक विसंगति थी जो कि सुधार के आयाम में थीं। फिर भी सब चिन्तित थे। और हमारी पडोसन बधाई देने आई और कहने लगी 'चलो मुंडे दी वाज ते पई' ।

जन्म पर

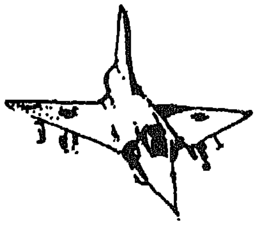
बेटे के जन्म पर प्रसन्नता और समारोह और बेटी के जन्म पर दुःख की अभिव्यक्ति और भाग्य की पराजय माना जाता है। दाइयां भी लम्बा मुंह बना लेती है क्योंकि उन्हें बख्शीश, बधावा नहीं मिलेगा। दिल्ली के एक सरकारी अस्पताल में दाइयां लडके के जन्म पर थाली बजाती हैं जबकि लड़की के जन्म पर एक मिट्टी का घड़ा फोड़ती हैं क्योंकि धातु की तरह ही लडका मूल्यवान माना जाता है और लड़की केवल धूल ही तो है। छोटी-छोटी बालिकाए यह सब देखती हैं और समझती हैं और संकेत लेती हैं कि भाई अधिक महत्वपूर्ण है। लड़के हीरे हैं और लडकियां केवल सामान्य पत्थर ही।

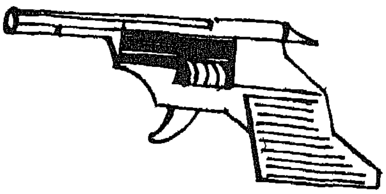
शैशव

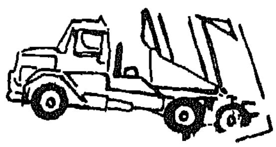
माताएं बेटों को बेटियों की अपेक्षा लम्बे अर्से तक स्तन-पान कराती हैं। स्वयं माताओं को भी पुत्री जन्म के बाद उपेक्षित किया जाता है। न उन्हें खाना और न ही आराम जितना पुत्र जन्म के बाद मिलता है। वे अपनी निराशा को स्पन्दन के माध्यम से कही अनकही में बालिकाओं को हस्तान्तरित कर डालती है। लड़कों का अधिक दुलार और पुचकार होता है। एक अध्ययन ने यह निष्कर्ष निकाला कि 400 लोरियों में से केवल तीन बालिकाओं के लिए थीं। लड़का बेश-कीमती होता है, राजा बेटा, और लड़की अभिशाप, 'सिर मुंडी, मर जानी'।



घुटने चलने और स्कूल-पूर्व की आयु







दो से तीन साल तक के बालक जान जाते हैं वे लडके हैं या लड़की । उनको लिग विशेष भूमिका आधारित नामों से अलंकृत किया जाता है, अलग-अलग तरह के वस्त्र दिए जाते हैं, अलग तरह के खिलौने और अलग-अलग तरह का खान-पान। लडकियो को गुड़िया और बर्तन तथा लड़कों को बन्दूकें और गाड़ियां, हवाई जहाज की प्रायः दिए जाते हैं। इस प्रकार इसी आयु से ही नर-नारी के दायरे निश्चित हो जाते हैं। लड़कियां और महिलाएं घर के अन्दर और लडके और पुरुष घर के बारह जिनकी पहुँच आसमान तक।

6-10 वर्ष की आयु

लंबाई और वजन के आधार पर मध्यम वर्गीय परिवारों के बालक-बालिकाओं में विशेष अंतर नहीं है किन्तु सामान्य स्कूलों में अधिकांश लड़कियां अपर्याप्त पोषित और कम वजन की होती हैं। घरों में यह साफ दिखांई देता है कि पहले पिता और पुत्र फिर मां और पुत्री भोजन प्राप्त करते हैं। समृद्ध परिवारो में भी सबसे अच्छा भोजन पुरुष वर्ग को दिया जाता है मांस और मछली के स्वादिष्ट टुकड़े पुरुषों और लड़कों को मिलते हैं । लडकियां इस स्थिति को देखती हैं समझती हैं और अपनी कमतरी को आत्मसात् कर लेती हैं। अक्सर बड़ी आयुवाली महिलाओं को दृष्टिकोण यही होता है कि कम पोषण का भोजन लड़कियों के लिए हितकर है अधिक प्रोटीन और पुष्टिकरण वाला भोजन जल्दी ही तारुण्य ला डालता है। इसके प्रमाण स्वरूप भारत के अधिकांश भागों में नगर में रहने वाली बालिकाएं जल्दी रजस्वला हो जाती हैं जबकि कम पौष्टिक आहार प्राप्त ग्रामीण बालिका को इस स्थिति से देर तक बचाव मिल जाता है।

तारूण्य अवस्था

बालिकाओं में तारुण्य का प्रवेश एक प्रकोप माना जाता है। क्योंकि इसके बाद विवाह तक बालिका की विशेष देखभाल रखनी पड़ती है। दक्षिण भारत में बालिकाओं के लिए रजस्वला होने पर प्रचलित रीतियां बहुत अलंकृत होती है जिनमे बालिकाओं को काफी उलझन होती है जैसे अपनी लम्बी घघरी पर आधी साड़ी पहननी पड़ती है और लड़के चुटकी लेते हैं। अक्सर

हर महीने में रजस्वला के दिनों में बालिका को स्कूल नही भेजा जाता। स्कूलों में बालिकाओं के लिए प्रसाधन कक्ष नहीं होते। अधिकांश लडकिया इस अवस्था में या तो स्कूल से निकाल ली जाती हैं या स्कूल जाना छोड देती हैं। यूं ही आठ-नौ वर्ष की आयु में वे स्कूल जाना शुरू करती हैं और फिर जल्दी ही छोड़ देने के कारण प्राथमिक शिक्षण भी पूर्ण नहीं कर पाती।

रीतियाँ, त्यौहार और गीत

पारिवारिक रीतियों और त्यौहारों में पुरुष वर्ग की महत्ता को देखते हुए लड़किया बड़ी होती है। छोटी लड़कियां अच्छा पति पाने के लिए व्रत रखती है। महिलाएं पति की दीर्घ आयु की इच्छा से व्रत करती हैं। पुत्र प्राप्ति के लिए व्रत होते हैं। भाईयों को महत्वपूर्ण मानकर त्यौहार मनाए जाते हैं जैसे रक्षा बन्धन, भाई दूज। इन अवसरों पर बहिनें भाईयो को राखी और कलावे के धागे बाधती हैं और माथे को रोली, और केसर के तिलक से सुशोभित करती हैं। प्रार्थना करती हैं उनके लम्बे जीवन की और प्रत्युत्तर में उन्हे सुरक्षा के लिए आश्वासन मिलता है। और भाई चाहे आयु में छोटे ही क्यों न हों, अपनी बड़ी बहनों के ऊपर आचरण संहिता से आलोचना कर सकते हैं। हर स्थिति में लड़किया चाहे वह बडी हों या छोटी पुरुष वर्ग के सामने हाथ बांधे रहती हैं। यही उनका मुकाम है।

हिन्दू घरानों में वर्ष में दो बार उन बालिकाओं को जो अभी तरुणावस्था तक नही पहुंची हैं मां दुर्गा के प्रतिरूप में पूजा जाता है। जन्म-ग्रह में उनका अस्थाई निवास उन गीतों तथा रीतिरिवाजों से याद दिलाया जाता है। जिसमें हर समय उन्हें अस्थाई सदस्यता का बोध कराया जाता है, जिसमें उन्हें यह बाताया जाता है कि उनका असली घर .उनके पति का घर है। हर समय इस बात का दबाव होता है कि उन्हें पति के घर में समायोजित होना है तथा उसके अनुकूल तैयार होना है। उन्हें अपनी आवाज उठाना या जवाब देना वर्जित होता है, उन्हें अपनी नजर झुका कर रखने को कहा जाता है। नौ-दस वर्ष की उम्र के करीब उन्हें घर के बाहर खेलने से रोका जाता है जबकि लड़कों को बाहर रहने, सड़कों पर जाने की खुली छूट होती हैं इससे लड़कों का व्यक्तित्व खुला और स्वच्छन्द (उच्श्रृंखल) और लडकियों का संकुचित ही रह जाता है।

शादी के गाने ऐसे होते हैं जिसमें पति के घर में लडकियों के लिये बुरे व्यवहार तथा शारीरिक हिंसा का जिक्र होता है। उदाहरण के लिये पत्नी को मारना रात्रि मिलन का स्वाभाविक भाग माना जाता है। एक पंजाबी गीत इस प्रकार से है— 'बीच रात में वह मुझे मारता है और मेरी कोमल हड्डियां तोड देता है, फिर सुबह मेरे आंसू पोंछता है और जानना चाहता है कि मुझे

कहाँ–कहाँ लगी है' दूसरा इस प्रकार है, जैसे ही तुम शकरकंद के खेतों को सींचने जाते हो अपने रास्ते जाओ, परन्तु मुझे इतना ज्यादा न मारें क्योंकि मैं एक कोमल लड़की हूँ'।

लगातार एक बात माता-पिता को चिंतित करती है – लड़की के लिये सही जीवन साथी की खोज और दहेज की रकम की चिंता। माता-पिता की परेशानी लड़कियों को शर्म और अपराध की भावना से भर देती है और वे असहाय सी देखती रहती है। कुछ लड़कियाँ तो मां बाप को इस सदमें से उबारने के लिये अपना जीवन खत्म कर देती है। दहेज का उत्पीड़न, बुरा व्यवहार और दुल्हन को जलाना, ऐसा लगता है जैसे ये देश के विभिन्न भागों में बच्ची को मार डालने के रूप में फिर से जी उठा है। हरियाणा और पंजाब में लडकी को गर्भ में ही खत्म कर डालते हैं और वह निरंतर चल रहा है और लड़की शिशु की मृत्यु लड़के शिशुओं की अपेक्षा कहीं अधिक है।

इसके विपरीत, लड़कों को न केवल अच्छा भोजन, अच्छा उपचार दिया जाता है परन्तु उन्हें इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि वे उद्यमी और उग्र बनें। सडकों पर लडाई और पत्थरबाजी करके 'जीतकर' लौटने पर उन्हें प्रभावी बढ़ावा दिया जाता है बल्कि लड़के यदि मार खाकर घर लौटे और रोते हुए पाये जायें तो उन्हें झिड़का जाता है। कुछ अपमानजनक बातें कही जाती है जैसे 'क्या तुम लड़की हो जो रोये जा रहे हो', 'शर्म आनी चाहिए क्यों नहीं चूड़ियां पहनकर घर बैठ जाते' यह शायद लड़कों में एक नकारात्मक उद्विग्नता पैदा करती है जो उन्हें उग्र, हिंसक और लड़ाकू बनाता है।

लड़कों को बाजार के कामों के लिए भेजा जाता है और घरेलू कार्यों के अतिरिक्त कार्य के लिये तैयार किया जाता है। लड़कियों को घर के कामों, पशुओं की देखभाल, पानी भरने, लकड़ी चारा इकट्ठा करने के काम दिये जाते हैं। यह प्रत्यक्ष रूप से भविष्य के लिये घरेलू कामों का एक प्रशिक्षण है जो लड़कियों के लिए भविष्य के दृष्टि दर्शन के लिये होता है। लड़के बहिर्गामी, बहिर्मुखी, हिम्मती हो जाते हैं। लड़कियां घर घुसी, सीमिंत और सीमाबद्ध हो जाती है। लड़कों पर इस बात के लिये बराबर दबाव डाला जाता है कि वे कुछ हासिल करें, कुछ बनें, कमाने वाले बनें, माँ-बाप व अपने परिवार की सहायता करें, और उन्हें बड़ी जल्दी बाहरी दुनिया में भेज दिया जाता है। यह सब अक्सर लड़कों को परेशानी में डाल देता है। अपराधी अपराध और मादक द्रव्यों को लेने की और यही सब बातें उन्हें अग्रसर करती हैं।

यह बात बिल्कुल साफ है कि लिंग भूमिका समाजीकरण ने केवल लड़कियों को यह बताता है कि वे भिन्न हैं बल्कि यह भी बताता है कि उनकी घर में ज्यादा जरूरत नहीं है वे निम्न

हैं और अपने को धन्य माने कि उन्हें स्कूल या सहेली के घर या काम करने जाने की अनुमति मिल रही है। उनकी अपनी पसंद या इच्छा का कोई महत्व नहीं होता। 'बाबुल मैं तेरे खूंटे की बछिया जित बाँधें बंध जायेंगे'। लड़की को उसके जन्म गृह मे एक अस्थाई सदस्य माना जाता है। और पतिगृह में भी अपनाई नहीं जाती है और हमेशा 'बाहरी' सदस्य का दर्जा ही पाती है। 'हम तो दोनों जहां से गए ना खुदा ही मिला न विसाले सनम'। यदि लड़का लंबा हो रहा है तो गर्व से देखते हैं -लड़की लम्बी हो रही हो तो हमेशा ताना ही मिलता है ''ताड की ताड़ होई जा रही है'' (यह तो ताड़ के पेड़ की तरह बढ़े ही जा रही है)

औरतें अपनी जाति से ही नफरत करती हैं

औरतें जो लड़के को जन्म देती है उसे सम्मान दिया जाता है और बहुत अच्छा भोजन आराम, अच्छे कपड़े, गहने दिये जाते हैं और अच्छे से रखा जाता है। जिनकी लडकियां होती हैं उन्हें अनादर, कम भोजन, यहां तक कि अपमानित किया जाता है। कौन औरत ऐसा नसीब चाहेगी। 'लड़कियों को पैदा ही नहीं होना चाहिए'। आजकल उनको पैदा ही नहीं होने दिया जाता जब वे गर्भ में ही होती हैं तभी गर्भपात से नष्ट कर दिया जाता है। अन्यथा लडकी शिशुओं, नवजातों को मार देते हैं । जहर देते हैं या दम घोट देते है। औरतें जिन्हें प्रायः मारा-पीटा जाता है और अपमानित किया जाता है वे अपने औरत होने को घृणित समझती हैं वे उस लड़की का क्या करें जिसे भी बड़े होने पर यही नसीब भुगतना होगा और पारिवारिक साधनों पर एक बोझ माना जाएगा। 'लड़कियों पर खर्च करना तो पड़ोसियों के बगीचे को सींचने के समान है' – ऐसी कहावतें भारतीय और चीनी भाषाओं में बहुत हैं।

घर के बुजुर्ग जवान लड़कियों और महिलाओं को यह आशीर्वाद देते हैं कि उनके बहुत सारे पुत्र हों 'सत पुत्री हों' (पंजाबी) जैसे ही दुल्हन अपने पति के घर में प्रवेश करती है एक रस्म में, उसके गोद में लड़के को बिठाया जाता है। एक तिल के दानों का खेल होता है। दुल्हन के हाथ में तिल रखे जाते हैं और घर की महिलायें गाने गाती हैं 'उसकी हथेली पर रखे तिल के दानों के बराबर उसके पुत्र हों' हर सुबह, जब दुल्हन सास के पैर छूती है तो वह कहती है 'साई जिये बुढ़ सुहागन हो' (भगवान करे तुम्हारे पति की लम्बी आयु हो और बुढ़ापे तक तुम उसकी दुल्हन बनी रहो) छोटी लड़कियां यह देखती हैं कि महिलायें व्रत रखती हैं – लड़के के जन्म के लिये, शिव शंकर के जैसे पति के लिये, पति की लंबी उम्र के लिये। लड़की के लिये या उसकी सुख समृद्धि के लिऐ कोई उपवास नहीं होते। यदि एक लड़की के बाद लड़का पैदा होता है तो उसे शुभ मानते हैं और उसे शुभ दर्शाने के लिए उस लड़की की पीठ पर गुड़ का भेला फोड़ा जाता है।

लडकियों के लिए भोजन, खेल या चिकित्सा, देखभाल में खुला भेदभाव देखने को मिलता है। अच्छा भोजन लडकों व पुरुषों को दिया जाता है लड़कियों को कम खाने देते हैं ताकि वे खंभे की तरह जल्दी से बढ न जायें। खेल को लड़को के साथ जोडा जाता है और उसकी प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में देखा जाता है। यौवनावस्था के बाद लड़कियां तो पूरी तरह चारदीवारी में रह जाती हैं या बाहर जाने को भी मिलता है तो कोई साथ जाता है, अकेले कभी नही जाती हैं। उनका लड़की होना हमेशा याद दिलाया जाता है मातायें ये कहती रहती हैं 'कब में इस मुसीबत से पीछा छुडाऊंगी, इसकी पहरेदारी से कब उबरूंगी, यह हमारा जरूर मुंह काला करायेगी'। लडकियां दरवाजे पर खड़ी हों तो छोटे भाई तक झिड़क देते हैं। वे पैर फैलाकर नहीं बैठ सकती, कूद नहीं सकती, फांद नहीं सकती। उसकी शारीरिक गतियां और हिलना डुलना नियंत्रित रहता है। लडकियों के लिये बहुत से बंधन और आदेश होते हैं, यह करो, यह नहीं करो। उनके लिये सारे निर्णय, उन्हें क्या खाना है, क्या पहनना है, क्या वे स्कूल जायेंगी या बाहर खेलेंगी, त्यौहार में जायेंगी, किससे शादी करेंगी और कब, दूसरों द्वारा दिये जाते हैं। कई शिशु अवस्था में ही मर जाती हैं- कारण मात्र उपेक्षा है।

लड़कियां अक्सर सुनती है 'यह तो हमारे गले का पत्थर है'। उसे इस बात के लिये दोषी मानते है कि कैसे दहेज इकट्ठा करेंगे और कैसे उससे पीछा छुडायेंगे। तीन लडकियों का कानपुर (उ.प्र.) और केरल में आत्महत्या कर लेना अभी पुराना नहीं है। चंडीगढ़ में बेटे के जन्म के बाद तीन लडकियों ने माता-पिता से उपेक्षित होने पर आत्महत्या कर ली थी।

अतः इस तरह बढ़ी हुई लड़की अपने में अपर्याप्त, ऋणात्मक आत्मबोध को विकसित करती है। वह अपर्याप्त, पहल शक्ति की कमी, भीरू, बहुधा डरी हुई (अनजाने भय से) संकोची, निर्भर, अपने आप को अभिव्यक्त करने में या निर्णय लेने में कमजोर रहती है। इस प्रकार की ज्यादातर छवि ग्रामीण क्षेत्रों की भारतीय लड़कियों में देखने को मिलती (आदिवासियों को छोडकर) है। शहरी क्षेत्रों मे यह छवि अलग-अलग है परन्तु कुछ समूहों में यही विश्लेषण रहेगा। मध्यम, उच्च मध्यम वर्ग की लडकियां भोजन व चिकित्सा देख-भाल में भेदभाव नहीं पाती है। किन्तु निम्न मध्यम और यहां तक की उच्च मध्यम वर्ग इस बात के लिये तैयार रहते हैं कि वे लड़कों की पढाई में ज्यादा खर्च करें चाहे उससे कोई लाभ

न हो। लड़कों को प्राइवेट स्कूलों में भेजा जाता है, लडकी के लिये निःशुल्क सरकारी शिक्षा ही ठीक है।



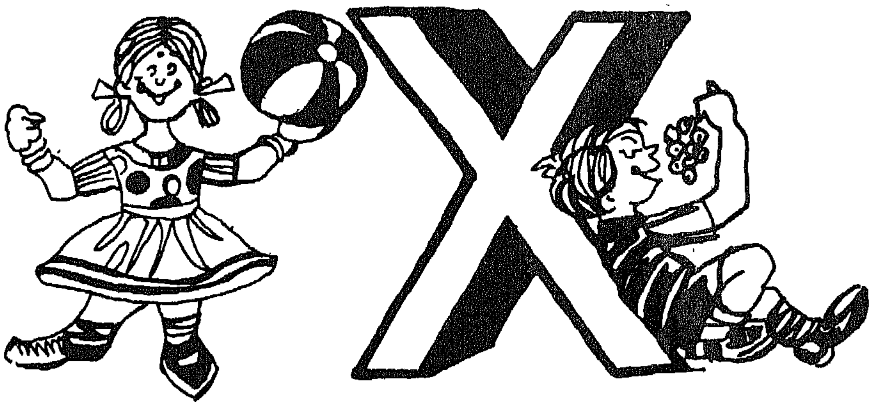
''आपने अपना गृह-कार्य समाप्त कर लिया है? अब शान्ति बर्तन धोने में अपनी मां की सहायता कर सकती है। सुनील, अब आप खेलने जा सकते है।''

मध्यम वर्ग की शहरी लडकियों पर लड़कों की अपेक्षा स्कूल के बाद कहीं आने-जाने पर ज्यादा रोक-टोक रहती है और यह उन्हें एक प्रकार से मदद भी करता है। वे अपनी माँ की घर पर सहायता करती हैं और फिर भी लडकों की अपेक्षा बोर्ड परीक्षा में ज्यादा अच्छा परिणाम लाती हैं। अब दस साल से लड़को की अपेक्षा लड़कियां ज्यादा अच्छा, यहाँ तक कि विज्ञान और गणित में लड़कों से ऊंचा प्रतिशत ला रही हैं। वे माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक परीक्षाओं में लड़कों की अपेक्षा अच्छे प्रतिशत से उत्तीर्ण होती हैं वे ज्यादा समझदार आत्मविश्वासी और अपने बारे में दृढ़ हो रही हैं और अपारम्परिक व्यवसायों में अधिक मात्रा में प्रवेश कर रही हैं। प्रसिद्ध पर्वतारोही बच्छेन्द्री पाल का आत्मबोध निश्चित ही सकारात्मक है। किरण बेदी जो एक उत्कृष्ट पुलिस अफसर है, निवेदिता भसीन हवाई पायलट, नई हवाई सेना, जल सेना अफसर, एन.सी.सी., पैरा जम्पर्स, इन सब महिलाओं में आत्म विश्वास और आत्म

सम्मान की कमी नहीं। नासा के द्वारा अंतरिक्ष में भारतीय महिला भेजी गई, यह बहुत गर्व की बात है। सक्षमता तथा उपलब्धि सकारात्मक आत्म बोध को जन्म देते हैं।

विखण्डन
और
पुनर्निर्माण

लैंगिक अवरोध कम करने के लिए दोनों का ही प्रयास आवश्यक है।



आत्म विश्लेषण : समूह अभ्यास

अनुदेश : 1,2,3,4, के लिये समूह सदस्यों को छोटी पुर्जों/आधा पेज शीट्स दीजिये। प्रत्येक अभ्यास को खत्म करने के बाद, अंत में विश्लेषण के लिये संकेत देखिये।

अभ्यास 1

निम्नलिखित जानकारियां दीजिए :

(1) नाम : ____________________

(2) किसके पुत्र/किसकी पुत्री : ____________________

(3) पता : ____________________

अभ्यास 2

याद कीजिए और अपनी संस्था में आयोजित विशिष्ट समारोहों के बारे में लिखिये, जैसे वार्षिक दिन, खेल-कूद, नाटक, वाद-विवाद आदि।

	समारोह	मुख्य अतिथि का नाम
1.	________	________
2.	________	________
3.	________	________
4.	________	________

अभ्यास 3

शिक्षक के आवश्यक गुणों की सूची दीजिये।

____

____

____

____

अभ्यास 4

प्रधान शिक्षक के गुणों की सूची दीजिये।

____

____

____

____

अभ्यास 5

प्रत्येक कथन के आगे लगे चौकोर में अपने मतानुसार (✓) का निशान लगाइये।

लड़कियों के लिये शिक्षा की उपयोगिता

		सहमत	असहमत
1.	लड़कियों में सकारात्मक आत्म प्रतिरूप और आत्मविश्वास विकसित करती है।	☐	☐
2.	आर्थिक योगदान के लिये लड़कियों को तैयार करती है।	☐	☐
3.	बच्चों व दूसरे परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य और पौष्टिक स्तर को सुधारती है।	☐	☐
4.	आने वाली पीढ़ी को शिक्षा की सुनिश्चितता करवाती है।	☐	☐
5.	लड़कियों और महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सजग करती है।	☐	☐
6.	शादी की उम्र को बढ़ाने में मदद व माता, शिशु और बच्चों की मृत्यु दर कम करती है।	☐	☐

7.	परिवार को छोटा करने में मदद देती है।	☐	☐
8.	समाज में नेतृत्व की भूमिका के लिये लड़कियों को तैयार करती है।	☐	☐
9.	जीवन के हर क्षेत्र जैसे परिवार, पंचायतों, म्युनिसपैलिटी, विधानमंडल में भागेदारी निर्णय प्रकिया के लिये लड़कियों को तैयार करती है।	☐	☐

अभ्यास 6

अपने मतानुसार प्रत्येक कथन के आगे (✓) का निशान लगाइयेः

		सहमत	असहमत
1.	लडकियों और लडकों को समान शिक्षा की आवश्यकता है।	☐	☐
2.	दोनों को समान मात्रा में भोजन की आवश्यकता है।	☐	☐
3.	जब आवश्यकता हो तो दोनों को ही समान स्वास्थ्य देखभाल तथा चिकित्सा दी जाये।	☐	☐
4.	दोनों को एक से कार्य/जिम्मेदारिया दी जाएं।	☐	☐
5.	दोनों को समान स्वतंत्रता दी जाये।	☐	☐
6.	दोनों को खेलने के लिये समान समय दिया जाये।	☐	☐
7.	दोनों ही हर कार्य को भली प्रकार कर सकते हैं।	☐	☐
8.	दोनों एक से व्यवसाय चुन सकते हैं।	☐	☐
9.	दोनों में एक सी बुद्धि और क्षमतायें होती हैं।	☐	☐

10.	समान कार्य के लिये पुरुष और महिलाओं को समान वेतन मिले।	☐	☐
11.	पति और पत्नी को सभी निर्णय मिलकर लेने चाहिए।	☐	☐
12.	घर का कार्य सभी सदस्यों के द्वारा बांटा जाना चाहिए ।	☐	☐
13.	घर की सम्पत्ति पति और पत्नी के सम्मिलित नामों में पंजीकृत होनी चाहिए।	☐	☐
14.	परिवार की सम्पत्ति/जायदाद में बेटियों की समान हिस्सेदारी के अधिकार को मान्य माना जाये।	☐	☐

अभ्यास 7

यदि आपके एक लड़का व एक लड़की, दोनों तकरीबन एक ही उम्र और क्षमता के हैं तो आप किससे निम्नलिखित करने को कहेंगी। कृपया सही (✓) का निशान लगाइये:

		लड़कियां	लड़के	अथवा दोनों
1.	बाजार से ब्रेड/सब्जी लाना	☐	☐	☐
2.	झाड़ू लगाना	☐	☐	☐
3.	भोजन बनाने में मदद	☐	☐	☐
4.	मवेशी चराने जाए	☐	☐	☐
5.	आपको एक गिलास पानी दे	☐	☐	☐

6. आपकी कोट/जैकेट टांग दे	☐	☐	☐
7. अतिथियों के लिये चाय बनाए	☐	☐	☐
8. कपडे धोने/उन्हें बाहर सुखाने मे मदद करे।	☐	☐	☐
9. कुएं से पानी खींचें	☐	☐	☐
10. बिजली का फ्यूज सुधारें या साइकिल टायर पंक्चर ठीक करें।	☐	☐	☐

अभ्यास 8

समूह के सभी सदस्य बारी-बारी निम्नांकित चित्र बोर्ड या पेपर शीट पर बनाने की कोशिश करें।

वकील	पायलट	शिक्षक
नर्स	वैज्ञानिक	किसान
डॉक्टर	शल्य चिकित्सा (सर्जन)	पर्वतारोही
वास्तुकार	जज	सैक्रेटरी
दर्जी	हॉकी खिलाड़ी	

समय सीमा : दस मिनटो में हमें काम चलाऊ चित्र चाहिए, सिर्फ सादी रेखायें, कोई बात नहीं यदि आपने कभी चित्र नहीं बनाया क्योंकि हर काम कभी न कभी तो पहली बार किया जाता है।

चैक लिस्ट

अभ्यास 9

अभ्यासः विश्लेषण/विशेषतायें, "स" सामान्य के लिये "प" पुरुष के लिये और "म" महिला के लिये कोष्ठक में भरें।

स्वावलम्बी		चंचल	
लज्जालु		आसानी से हताश	
मुखर		बातूनी	
शांत		जिद्दी	
बहिर्गामी		तर्कसंगत	
निष्क्रिय		महत्वाकांक्षी	
सकारात्मक		व्यवसाय उन्मुख	
धनलोभी		सक्षम	
यथार्थवादी		अटल	
रूखा		दब्बू	
विनोदी		हठधर्मी	
कलात्मक		सक्षम	
गंभीर		व्यक्तिपरक	
सहायक		युक्तिसंगत	
व्यावहारिक		अप्रत्यक्ष	
कठोर		जल्दी से खिन्न	
मजबूत		नेता	
सुग्राही		आत्मविश्वासी	
कल्पनात्मक		साफ	
धार्मिक		बेढंगा व्यवहार	
उग्र		कोलाहलपूर्ण	
धैर्यवान		प्रभावी	
नम्र		कोमल	
कार्यकुशल		सक्रिय	
दयालु		निष्पक्ष	

डांवाडोल	☐	सहयोगी	☐
स्वतंत्र	☐	संदिग्ध	☐
भावुक	☐	अव्यस्थित	☐
विनम्र	☐	नम्रभाषी	☐

अभ्यास 10

इस मॉड्यूल के अंत में अब यह एक मजे का खेल है, जो भी आप पर लागू हो उसके आगे सही (✓) चिह्न लगायें।

प्यारा	☐	काबिल	☐
स्वतंत्र	☐	उत्पादी	☐
गर्वीला	☐	मूल्यवान	☐
होशियार	☐	आत्मविश्वासी	☐
मजबूत	☐	सफल	☐
हठधर्मी	☐	स्वस्थ	☐
जिम्मेदार	☐	स्वतंत्र	☐
शक्तिशाली	☐	लिहाजी	☐
सर्वप्रिय	☐	विचारशील	☐
महत्वपूर्ण	☐	सार्थक	☐
प्रतिभाशाली	☐	निष्कपट	☐
रोचक	☐	मैत्रीपूर्ण	☐
सक्षम	☐	उपायकुशल	☐
श्रेष्ठ	☐	प्रतिष्ठित	☐
दक्ष	☐	प्यार का पात्र	☐
निपुण	☐	मूल्यवान	☐
उपयोगी	☐	मदद करने वाला	☐
साहसी	☐	पहलशक्ति	☐

विश्लेषण के संकेत

अभ्यास 1

सभी स्लिप को एकत्रित कर लें। हम दूसरे प्रश्न में केवल यह देखना चाहते है कि माता-पिता दोनों के नाम दिये है या नही। आप यह जानकर आश्चर्यचकित हो जायेंगे कि प्रत्येक समूह सदस्य केवल पिता का नाम देगा और आप सभी उस बात से सहमत होंगे कि हम सभी की मां हैं जिनके नाम भी हैं। हमें इस खेल से ये समझ लेना चाहिये कि हम इस फॉर्म को ऐसे ही भरने के अभ्यस्त हैं और यह हम बचपन से करते आ रहे हैं। हमेशा पिता का नाम/पति का नाम पूछा जाता है, स्कूल में, अस्पताल में, प्रवेश फॉर्म, पासपोर्ट फॉर्म, राशन कार्ड, चालान, लाइसेंस आदि में।

क्या आप यह नहीं सोचते कि समय आ गया है कि अब माता के नाम को भी सम्मिलित किया जाये। कुछ स्कूलों में यह शुरू भी हो गया है। हम इस बात के आदी हो गये हैं कि स्कूलों में छुट्टी के आवेदन में या स्कूल टेस्ट/अक सूची/प्रगति पत्र आदि में पिता के हस्ताक्षर ही मांगे जाते हैं। माता क्यों हस्ताक्षर नहीं कर सकती।

अभ्यास 2

समूह सदस्यों से स्लिप एकत्रित करें और पुरुष/महिला मुख्य अतिथियों को आमंत्रित करने की बारम्बारता को देखिए। मुख्य अतिथि ज्यादातर पुरुष होते हैं। जिस जगह औपचारिक स्थिति तथा प्रभाव पुरुष से जुडा होता है वहां बच्चों में असमानता की धारणा में प्रबलता आती है। इस बारे में क्या विचार है कि स्कूल के कार्यक्रमों में महिला मुख्य अतिथियों को बुलाने का प्रयत्न किया जाये। हम एक "महिला सरपंच" आमंत्रित कर सकते हैं और दूसरी प्रभावी महिलाओं को भी निमंत्रण दे सकते हैं जो कि प्रशासक हों, प्रधान शिक्षिकाएं हों, शिक्षाविद्, खिलाड़ी व कलाकार हों।

अभ्यास 3

समूह सदस्यों से स्लिप एकत्रित करें और उसकी सूची ब्लैक बोर्ड पर बनायें। आप देखेंगे कि जितने भी अच्छे गुणों की सूची है वह महिला व पुरुष दोनों में पाई जा सकती है। इसका मतलब शिक्षक की भूमिका से है न कि उसके लिंग से।

अभ्यास 4

अभ्यास 3 के समान ही।

अभ्यास 5

समूह के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक विषय पर अपना ही मत देने दिया जाये। माता-पिता व समुदायों को लड़कियों को शिक्षित करने के लाभों और आवश्यकता के बारे में मनवाने के लिए तरीकों की विवेचना करनी चाहिये।

अभ्यास 6

अपनी तुरंत प्रतिक्रिया लिखिये। जबरदस्ती और रचे हुये सही उत्तर पर विवेचना कीजिए। यह कुछ जोश पैदा करेगा परन्तु कुछ प्रकाश भी मुख्यतः जब पुरुष व महिला सदस्य दोनों ही समूह मे हों।

कोई बात नहीं मकसद यह था कि आपकी प्रतिक्रियाओं को सामने लायें और बहुत लिहाजी और अनुकूल उत्तर न हो। अगली मुलाकात में, शायद सहमति के क्षेत्र बढ़ जायें और आप अपने कक्षा के व्यवहार को रूपान्तरित करेगे और पुरुष व महिलाओं की सामाजिक भूमिकाओं के नजरिये को बदल सकें इसके लिए आपको अपने विद्यार्थियों को तैयार करना है।

अभ्यास 7

हिसाब करने के बाद आप यह पायेंगे कि लड़कों को बाहरी कार्य/इतकार्य दिये गये और सभी घरेलू कार्य लड़कियों के लिये थे। जैसा कि इकाई 1 में देखा कि इन कार्यो में महिला या पुरुष विशेष कार्य नहीं है। आपस में योगदान और गरिमा के भाव निर्मित करने के लिये घरेलू तथा बाहरी कार्यों दोनों को ही लड़कों और लड़कियों से बराबरी से बाँटा जा सकता है।

लड़कों को घर के काम करने के लिय प्रोत्साहित करना चाहिये। ताकि वे सुग्राही बने और पारस्परिक रूप से महिलाओं द्वारा किए गये इन कामों के महत्व को समझें जिन्हें वे तुच्छ समझते थे। दूसरी तरफ, लड़कियों को इस बात के लिए तैयार करने की आवश्यकता है कि वे समान रूप से बाहरी कार्यों के लिये तैयार हों जो कि आजकल दोनों ही लिंगो द्वारा बांट कर किए जा रहे हैं।

अभ्यास 8

आप यह पाएंगे कि अधिकार स्केच आदमियों के ही हैं जबकि महिलाएं अब यह सब भूमिका निभा रही हैं।

अभ्यास 9

इस अभ्यास में, हमने पुरुष व महिलाओं के लिये दिमाग में जमे हुए विचार के अनुसार कुछ गुणों, विशेषताओं, विशेषणों को चित्रित किया है। चलों अब हम इस पर विवेचना करें और देखें कि हमने कोई ज्यादती तो नहीं कर दी। हमें अपने खुद के अनुभवों और उन लोगों के जो हमारे चारों ओर है उसके बारे में सोचना होगा और यह निकालना होगा कि जाँच सूची में तो विषय दिये हैं वह मानव व्यवहार के द्योतक पुरुष और महिला दोनों में ही पाए जा सकते हैं।

अभ्यास 10

दूसरे समूह सदस्यों के साथ इन विचारों को बांटें और यह खोजे कि क्यों आप सोचते हैं यह गुण आप में नहीं है। यह आपको एक माप देगा कि आप अपने आपको किस प्रकार मूल्यांकित करते हैं। यह न भूलें जैसा आप अपने को मूल्यांकित करते हैं वैसा ही दूसरे भी आपको मूल्यांकित करते हैं। तो सकारात्मक सोच व सकारात्मक क्रिया की ओर बढ़ चलें।



इकाई 2

लिंगाधारित भूमिका में समानता नीति और कार्यान्वयन

परिचय

इस एकक में दो तथ्यों का अवलोकन है :

- विद्यमान नीति का ढांचा, संवैधानिक व कानूनी आश्वासन, अन्तर्राष्ट्रीय समझौते व प्रतिज्ञापन जिनका संबंध महिलाओं-पुरुषों, लड़कियों-लड़कों में समानता तथा समदृष्टि से है और उन विशेष विधाओं से भी जो जनसंख्या के आधे भाग, यानी महिलाओं के प्रति संचित प्रतिकूल परिस्थितियों को भी दूर करने के लिए निर्मित किए गए हैं।
- जीवन-चक्र अभिगमन द्वारा उपयुक्त लिंगाधारित संकेतों विषमताओं का विश्लेषण।

अपेक्षित उपलब्धि

इस इकाई को सम्पन्न करने पर आप कुछ इस प्रकार जान सकेंगे।

- वे संवैधानिक वे कानूनी प्रावधान जो विशेषकर,भारत में महिलाओं तथा बालकों के हित में हैं।
- वे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापन व समझौते जो महिलाओं व बालकों से संबंधित हैं।
- वे जीवन व समाजकीय संसाधन जिनमें लिंगाधारित भूमिका की विषमतायें तथ्यों तथा सांख्यकीय में मौजूद हैं।

लिंगाधारित भूमिका में समानता के परखी तथ्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के तीन वर्ष उपरांत 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ। संविधान निर्माण सभा में 14 महिला सदस्य थीं। संविधान उन नवीन संरचनात्मक मापक तथ्यों का निर्माता है जो अत्यधिक स्तरित समाज को उसकी गहरी जटिल सामाजिक व आर्थिक असमानताओं से उन्मुक्त कर उस समाज की ओर ले जाना चाहते हैं जो आर्थिक व तकनीकी विकास और सामाजिक न्याय उपलब्ध करा सके।

इन संवैधानिक प्रावधानों की नीतियों, नये कानूनों और पिछले कानूनों के संशोधन द्वारा तथा विकास की पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा क्रियान्वित करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया गया है।

संविधान न केवल महिलाओं के लिए समानता का प्रतिपादक है बल्कि राज्य को उन सब विशेष प्रावधानो को प्रयुक्त करने के लिए सक्षम बनाता है जिससे महिलाओं पर लदी हुई सदियों की संकलित सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनैतिक विषमाएं दूर हो सकें। (संरक्षात्मक पक्षपात)

मूल अधिकार

अनुच्छेद 14. विधि के समक्ष-राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध :

(1) राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर काई विभेद नहीं करेगा।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर :

क. दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या

ख. पूर्णतः या भागतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग, के संबंध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बंधन या शर्त के आधीन नही होगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खण्ड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

मूल कर्त्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह :

क. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

ख. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करें।

ग. भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।

घ. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।

ङ. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

च. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करें।

छ. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखें।

ज. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।

झ. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहें।

ण. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों से सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करें जिससे राष्ट्र निरतर बढते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता -

(1) राज्य, के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।

(2) राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म मूलवंश, जाति, लिग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो किसी राज्य या सघ शासित क्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले किसी वर्ग या वर्गो के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ शासित क्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नही करेगी।

(5) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।

अस्पृश्यता का अंत

"अस्पृश्यता" का अंतर किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

राज्य के नीति निदेशक तत्व

अनुच्छेद 39 (क)	राज्य को अपनी नीतियों को निदेशित करना चाहिए ताकि जीवन सभी नागरिकों, पुरुष तथा महिलाओं के लिये सुरक्षित हो और जीविका के अधिकार भी समान रूप से हों।
अनुच्छेद 39 (स)	राज्य को निर्देशित करता है कि समान कार्य के लिये समान वेतन को सुनिश्चित करें।
अनुच्छेद 42	राज्य को आदेशित करता है कि कार्य और प्रसूति सहायता की यथोचित तथा मानवोचितता को सुनिश्चित करे।
अनुच्छेद 44	नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता।
अनुच्छेद 45	संविधान के लागू होने के दस वर्षों के अन्दर सभी बच्चों को चौदह वर्ष की उम्र तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है।
अनुच्छेद 47 –	राज्य आगे इस बात के लिये वचनबद्ध है कि व्यक्तियों के पौष्टिक स्तर, स्वास्थ्य और रहने के स्तर को ऊंचा उठाये।

भारत में महिलाओं के लिये महत्वपूर्ण कानून

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 ने यह प्रावधान किया है कि समान कार्य के लिए महिला व पुरुष को समान वेतन दिया जाये। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 जिसे फिर 1976 में संशोधित किया गया लड़की के लिये यह अधिकार प्रदान करता है कि परिपक्वता के पहले बाल-विवाह को नकार सके चाहे वैवाहिक सहवास हुआ हो या ना हुआ हो। महिला को जायदाद पर उसका हक और पूर्ण अधिकार उसे उसके वारिस की अपनी जायदाद का हिस्सा देने की वसीयत बनाने के लिये हक देता है। अनैतिक अवैध व्यापार (निवारण) जिसे 1986 में सशोधित और नामीकृत किया गया। यह पुरुष या महिला के लैंगिक शोषण को एक अक्षम्य अपराध मानता है। दहेज अधिनियम 1961 को 1984 में संशोधित किया गया उसमें महिलाओं के प्रति अत्याचार को एक अक्षम्य अपराध माना है, 1986 में दूसरा संशोधन किया गया और यह कहा है कि यदि महिला अपने विवाह के 7 वर्षों के अंदर आत्महत्या करती हैं और यह साबित हो जाये कि उसके साथ अत्याचार हुये हैं तो उसके पति व सास, ससुर को सजा दी जाये "दहेज मृत्यु" के अपराध को भारतीय दंड संहिता में लिया गया है। 1948 का फैक्टरी अधिनियम (1976 में संशोधित) यह उपलब्ध कराता है कि जहां कहीं 30 महिलायें कार्यरत (अनियमित तथा ठेके के श्रमिक) हैं वहां झूलाघर स्थापित किया जाये। गर्भावस्था का चिकित्सकीय गर्भपात को मानवीय या चिकित्सीय आधार पर वैध मानता है। अपराध नियम कासंशोधन (1938) बलात्कार की आम घटना के लिये 7 वर्ष तथा कानूनी निगहबानी के दौरान बलात्कार घटनाओं के लिये 10 वर्ष की सजा का प्रावधान करता है। अधिक से अधिक सजा उम्र कैद की है। महिलाओं को अभद्र प्रस्तुति (निषेध) अधिनियम 1987 भी पारित हो गया है ताकि महिलाओं की मान मार्यादा को सुरक्षित किया जाये तथा उनके विरुद्ध हिंसा साथ ही साथ शोषण को रोका जा सके। संसद के अधिनियम के अंतर्गत एमीनियोसिंटेसिस द्वारा भ्रूण लिंग पता लगाने पर भी रोक लगाई गई है। 73 व 74 संसदीय संशोधन (1992) पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व और ग्रामीण क्षेत्रों कस्बों व शहरों में इन संस्थानों मे महिलाओं को 33 प्रतिशत स्थान सुरक्षित है।

भारत में बच्चों के हित में कुछ महत्वपूर्ण कानून

चौदह से कम उम्र के बच्चों को किसी जोखिम कार्यों में न लगाना : बालक रोज़गार अधिनियम 1938, फैक्टरी अधिनियम 1948 जिसे 1949, 1950, 1954 में संशोधित किया गया, बीड़ी और सिगरेट श्रमिक अधिनियम 1966, बच्चों का अधिनियम (श्रम प्रतिज्ञा) 1933, इस उद्देश्य को पूरा करते हैं कि माता-पिता द्वारा श्रम और अग्रिम पैसे के लिए मालिक या नौकरी देने वाले के पास कम उम्र के बच्चों से श्रम कराने या काम कराने के पाप को समूल खत्म कर दिया जाये। बाल-विवाह रोक अधिनियम 1929 जिसे 1976 में संशोधित किया गया यह बना कि शादी की उम्र लड़कियों की 15-18 वर्ष और लड़कों की 18-21 वर्ष तक बढ़ाई जा सके। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम को कई राज्यों द्वारा पारित कर दिया गया।)

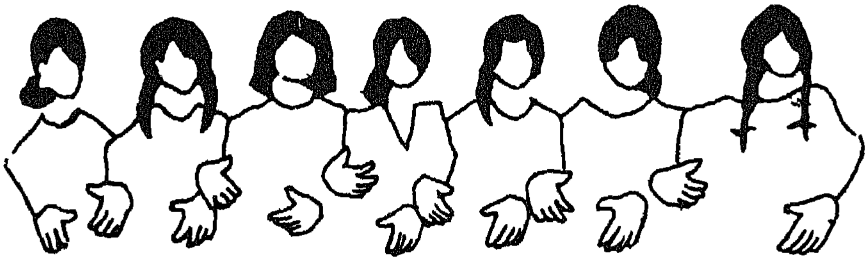
इसके अलावा भारत के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों व प्रतिज्ञापनों को स्वीकारा है। जैसेः

मानवाधिकारों का विश्वव्यापी घोषणा-पत्र (1948)
सीडो (1979) संयुक्तराष्ट्र संघ का बाल अधिकार घोषणा-पत्र (1959)
और बालाधिकार प्रतिज्ञापन (1989)

संयुक्तराष्ट्र की आम सभा ने महिलाओं के प्रति व्याप्त सब प्रकार के विभेदीकरण के उन्मूलन हेतु प्रतिज्ञापन 18 दिसम्बर, 1979 को अपनाया था। इस प्रतिज्ञा–पत्र में संयुक्तराष्ट्र के मानव के मूल अधिकारों में पूर्ण विश्वास और मानव मर्यादा के निर्वाहन पर पुनः जोर दिया गया है जिससे स्त्री-पुरुष अधिकारों को पुष्टीकरण होता है।

प्रतिज्ञा–पत्र समानता का अर्थ बताता है और सहयोगी राज्यों को ऐसी कार्य–सूची बनाने का आग्रह करता है जिससे राज्य वे सब उपयुक्त कदम उठा सके जिनमें कानून भी शामिल हों और जिनमें महिलाओं को पूर्ण विकास निहित हो और जिसका लक्ष्य हो कि वे मानव अधिकारों और मुख्य स्वतंत्रता से लैस हो सके तथा पुरुषों के समकक्ष हो जाएं।

भेदभाव का अर्थ बताया गया है - कोई भी अन्तर, विभेदीकरण या अवरोध जो लैंगिक आधार पर किया गया हो चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो - राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या अन्य कोई।



बच्चों के अधिकार

मानवाधिकारों की लोकव्यापी घोषणा (1948) में यह ऐलान हुआ कि बाल्यावस्था विशेष देखभाल और सहायता की हकदार है। बच्चों के अधिकारों की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा (1959) यह प्रतिपादित करती है कि प्रत्येक बच्चे को स्नेह, प्यार और सहानुभूति, पर्याप्त पोषण और चिकित्सा देखभाल, निःशुल्क शिक्षा, खेलने और मनोरंजन के लिए स्वतंत्र अवसर, एक नाम और राष्ट्रीयता तथा विकलांगों की विशिष्ट, किसी भी त्रासदी में, राहत में प्राथमिकता, समाज में उपयोगी सदस्य बनने हेतु शिक्षा, व्यक्तिगत क्षमताओं को विकास, शांति, सद्भावना, लोकव्यापी भाईचारे की भावना में लालन-पालन तथा प्रजाति, रंग, लिंग, राष्ट्रीयता और सामाजिक स्तर का लिहाज किये बिना अपने अधिकारों का अनुभव करना उपलब्ध कराया जाए।

बालक के अधिकारों के समझौते को 20 नवम्बर 1989 की संयुक्त राष्ट्र की आम सभा द्वारा अपनाया गया और 29-30 सितंबर 1990 में बालकों के विश्व शीर्ष सम्मेलन के बाद इसका कार्यान्वियन हुआ। विभेदीकरण न करना - मुख्य सिद्धांत -बच्चा अपने अधिकारों का अपने माता-पिता या कानूनी अभिभावक, प्रजाति, रंग, लिंग भाषा, धर्म राजनीति या उसके मत के लिहाज किये बिना उपभोग करे । राज्य

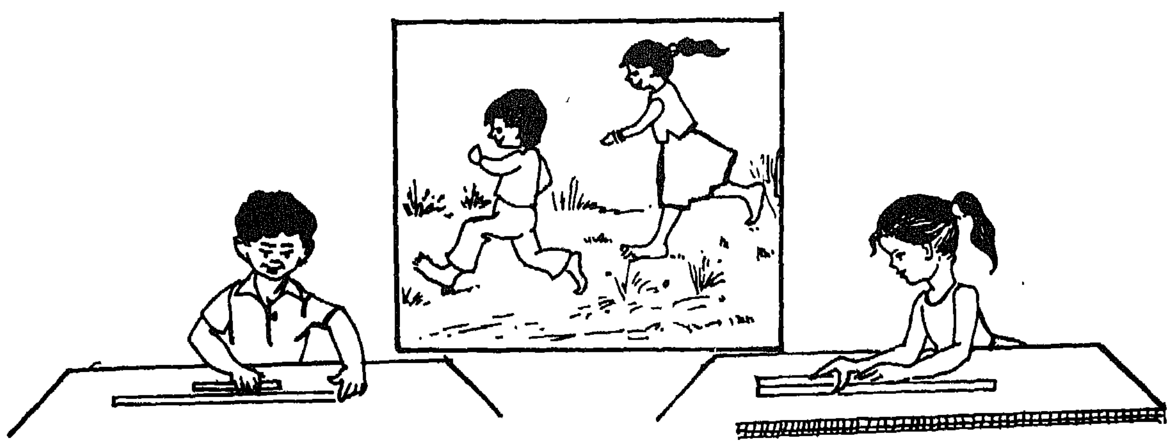
- यह माने कि प्रत्येक बच्चे को जीवन तथा अधिक से अधिक समय तक जीवित रहने और विकास का अधिकार है।(अनुच्छेद 6)
- यह स्वीकारे कि बच्चों को विचारों, विवेक, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो तथा सभी प्रकार की जानकारियों को पाने और देने का हक हो (अनुच्छेद 13 और 14) यह

देखें कि प्रत्येक बालक स्वास्थ्य के उच्च शिखर के मानव तक पहुंच सके उसकी बीमारी का उपचार और स्वास्थ्य की बहाली हो सके (अनुच्छेद 24)

- सब प्रकार के समान अवसर, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, विभिन्न प्रकार की सामान्य और व्यवसायिक शिक्षा (आवश्यकता अनुसार निःशुल्क), उच्च शिक्षा तक क्षमता और उपयुक्त साधनों की उपलब्धि कराए। सभी बच्चों को शैक्षिक और व्यवसायिक जानकारी उपलब्ध कराना और इस सबसे ज्यादा यह कि उनकी नियमित उपस्थिति को प्रोत्साहित करना और स्कूल न जाने को कम कराना राज्य का दायित्व हो।

- यह निश्चित करें कि शिक्षा बच्चे के व्यक्तित्व विकास, योग्यता और उच्च मानसिक व शारीरिक क्षमताओं के विकास के लिए संचालित हो, उनमे इस बात को विकसित करें कि वे मानवाधिकारो और मौलिक स्वतत्रता की कद्र करें, बच्चों को इस बात के लिए तैयार करें कि वे स्वतंत्र समाज में सहानुभूति, शांति, सहनशीलता, दोनों लिंगों में समानता की भावना के साथ एक जिम्मेदार जीवन बिताएं (अनुच्छेद 29) द्वारा यह देखा जाये कि बच्चों को अवकाश, खेल तथा मनोरंजन के अधिकार मिलें तथा उनकी सांस्कृतिक जीवन और कलाओं मे स्वतंत्रता से भाग लेने दिया जाये (अनुच्छेद 31)।

- यह निश्चित करवाए कि बालक के आर्थिक शोषण, जोखिम कार्यो, बच्चे की शिक्षा में हस्तक्षेप या ऐसी भी बात जो बालक के स्वास्थ्य या शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक या सामाजिक स्थिति मे हानिकर हो उससे मुक्त कराए।



समितियाँ, आयोग, नीतियाँ

महिलाओं की शिक्षा पर दुर्गाबाई देशमुख समिति की रिपोर्ट (1959) ने बोधगम्य सुझाव बनाये और एक नीति दस्तावेज बन गया जो कि पंचवर्षीय योजना के बनाने और लड़के-लड़कियों के लिये समरूप पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता के लिये निर्देशित करता है जो इस बात को प्रकाश में लाता है कि लड़कियों की शिक्षा को विशेष समस्या मानकर सुलझाया जाये।

- हंसा मेहता समिति द्वारा समरूप पाठ्यक्रम का समर्थन किया गया जो कि पाठ्यक्रम के भेदीकरण (1964) शिक्षा आयोग (1964-66) शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986), (1992 में संशोधित) और कार्य योजना में दृढ़ता से दोहराया गया।
- समानता की ओर महिलाओं के स्तर पर समिति की रिपोर्ट (1974) जनसंख्या में महिलाओं का गिरता अनुपात, अधिक महिला मृत्यु-दर, आर्थिक भागेदारी में अवनति और राजनैतिक क्रियाओं में महिलाओं की नगण्य प्रस्तुतिकरण को उजागर किया।
- संयुक्त राष्ट्र विकास दशक (1975-85) ने संस्थागत प्रक्रियाओं की वृद्धि को देखे। महिला व बालक विकास विभाग, महिलाओं के विकास संघ, मुख्यधारा में महिला एकीकरण, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला व बच्चों का विकास गरीबी हटाने के लिये महिलाओं के लिए लक्ष्य समूह माने, कौशल विकास (टी.आर.वाई.ई.एम.) (आई.सी.डी.एस.) "कल्याण" से विकास की ओर गए और अंततः आठवी योजना में "सशक्तिकरण" की ओर बढे।
- महिलाओं के लिये राष्ट्रीय संदर्भ योजना (1988-2000) ने शताब्दी के अंत तक ग्रामीण व अलाभान्वित महिलाओं को केन्द्र बिन्दु मानकर राष्ट्रीय जेन्डर कार्यक्रम बनाये हैं।
- श्रमशक्ति, अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं की समिति रिपोर्ट 94 प्रतिशत महिला कार्यकर्ताओं पर जो कि अनौपचारिक खण्डों में कार्यरत हैं संकट और घोर परिश्रम सम्बन्धी दस्तावेज है।
- रामामूर्ति सर्वेक्षण समिति जो कि प्रबुद्ध मानवोचित समाज की ओर से है उसने देखा कि उन लड़कियों के हक में शिक्षा के अवसर पर पुनः विचार हो जो कि ग्रामीण और अलाभान्वित वर्गों से आती हैं। उन्हें पर्याप्त सहायता सेवायें (पानी, चारा, ईंधन, बच्चों की देखभाल) और साथ ही शिक्षा के वित्तीय साधनों में 50 प्रतिशत हिस्सेदारी हो।
- 1980-1990 का प्रमाण चिह्न यह हुआ है कि महिलाओं की समस्याओं पर जानकारी उभरी और उसमें सक्रियावादी प्रयत्नों के व अनुसंधान सान्निध्य से महिला अध्ययन, विशेषण बढ़ा है जिसने सक्रिय समर्थक कार्यक्रम बढ़ाए हैं।

प्रमुख नीति विचलन

- वृहत्काय, संकलित, केंद्रित नियोजन के बजाय विसंकलित, विकेन्द्रित सूक्ष्मदर्शी जनसमुदाय के सहयोग से नियोजन।
- कल्याणकारी दृष्टिकोण की अपेक्षा विकासोन्मुख और अन्ततोगत्वा महिला सशक्तिकरण की ओर।
- बच्चे को लिगाधार शून्य में देखने की अपेक्षा (राष्ट्रीय बाल नीति 1974) लैंगिक भूमिका में न्यायसंगत दृष्टिकोण वाले परिवेश मे बच्चों को बालक, बालिका रूप मे समझना।
- महिला समस्याओं के अवलोकन से बालिका की समस्याओं पर दृष्टिपात, बालिका के सार्क वर्ष से बालिका का सार्क दशक 1991-2000 तक।
- बालिका शिक्षा को नैतिक प्रतिज्ञा के बजाय एक महत्वपूर्ण लागत के रूप में तौलना।

सार्क की पहल



इस प्रयास के फलस्वरूप वर्ष 1990 को सार्क का बालिका वर्ष घोषित किया गया। और ब्रालिका से संबंधित प्रश्नों के उत्साहित प्रत्युत्तरों को देखकर पूरे 90 के दशक को ही राज्यों के सरकारी मुख्याधिकारियों ने सार्क का बालिका दशक उद्घोषित कर दिया। इसका लक्ष्य यही था कि उस वेग और रफ्तार को कायम रखा जाए जो बालिका वर्ष में उगा था। 1991-2000 तक के लिए राष्ट्रीय कार्यान्वयन नीति के तीन लक्ष्य हैं — जीवन का अधिकार, सुरक्षा एवम् विकास विशेषतः मार्मिक वर्गो की बालिकाओं तथा सभी किशोरियों के लिए। बालिकाओं को सुन्दर भविष्य उपलब्ध कराने के लिए यंह योजना सरकारी और गैर–सरकारी सहयोग से क्रियान्वित की जाए ऐसा विचार निर्दिष्ट है। मौजूदा विषमताओं को दूर करके बालिका तथा किशोरी के विकास के लिए समान अवसर की आवश्यकता को अति महत्वपूर्ण माना गया है। इस समानता को हासिल करने के लिए यह जरूरी होगा कि निम्नांकित सुलभ कराया जाय :

- उसको जीने का अधिकार है;
- उसको गरीबी, भुखमरी, अज्ञान तथा शोषण में विमुक्त होने का अधिकार है;
- उसको समानता, प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता, अवसर, देखभाल, सरक्षण और विकास पाने का अधिकार है, और सर्वोपरि; और
- उपर्युक्त सब अधिकारों को प्रयुक्त करने का अधिकार है।

> हमारे सामूहिक उदारवादी मानवीय दृष्टिकोण के रहते नीतियां तो अनुरूपकता में उद्‌घोषित की जा सकती हैं किन्तु जब तक दिन-प्रतिदिन के जीवन में बालिका अपने परिवार प्रावधान तथा वातावरण मे इन स्थितियों को नहीं पाती तब तक यह सब अर्थहीन ही रहते हैं। इसीलिए एक वातावरण बनाना है जिनमें यह बालिका अपने अधिकार को निडर होकर प्रयुक्त कर सके उन सामाजिक व सांस्कृतिक बेड़ियों को, बदलने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी जो बालिका को बांधे हुए है और उसे परम्परागत जीवन निभाने को लगभग मजबूर किए हुए है । हर सभा और विचारधारा की इस मेहनत का कर्म-क्षेत्र समझा जाना चाहिए जिससे जागरूकता उत्पन्न हो सके और सक्रिय कदम उठाया जा सके। इसके साथ उन सब कानूनों का प्रतिपालन हो जो बालिका दशक को अवसर प्रदान करने के लिए मौजूद है जिससे उसके अधिकार सुरक्षित हो सके । (सार्क की बालिका दशक संबंधी राष्ट्रीय नीति कार्यान्वयन परियोजना 1991 - 2000 तक)

तो यह बात स्पष्ट है कि निर्देश है सामाजिक संघटन सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियो को बदले जिससे बालिका-विकास अवरुद्ध होता है । सामाजिक संघटन को आज की बालिका स्थिति आकनी पड़ेगी और ऐसी युद्ध नीति और हस्तक्षेप अपनाने के लिए यह भी देखना पड़ेगा कि आम सामाजिक संघटन क्या कुछ कर रहे है।

सामूहिक गतिशीलन

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्लेट फार्म से जो कानून और कानूनी संवैधानिक सुविधाएं हमारे बच्चों के हित में उद्‌घोषित हैं उनसे अब आप सुपरिचित हो चुके हैं।

पहला सोपान : अपने संदर्भ में व्याप्त और उस से संबंधित विभिन्न नीतियों, कानूनों और परियोजनाओं के सारांश की विवेचना कीजिए।

दूसरा सोपान : कुछ उन ठोस कदमों के बारे में सोचिए जो इन सब को लागू करने के लिए उठाए जा सकते हैं और जिसमें अभिभावक, समुदाय और पंचायत को भी शामिल किया जा सके ।

> नीति घोषणाएं संकल्प होते हैं, कानून उन्हें स्वरूप देते हैं किन्तु शिक्षकों को शिष्यों तथा समुदायों को उनका अनुसरण करने के लिए तैयार करना होता है बजाय इसके कि वह उनके प्रतिपालन आदेश का इन्तजार करें।

आज की स्थितिः भेदभाव परिपूर्ण आजीवन-चक्र

भारत की 846 मिलियन जनसख्या में 439 मिलियन पुरुषों के मुकाबले केवल 407 महिलाएं हैं। पुरुष 32 मिलियन ज्यादा हैं। (जनगणना 1991)

गिरता हुआ लिंगानुपात

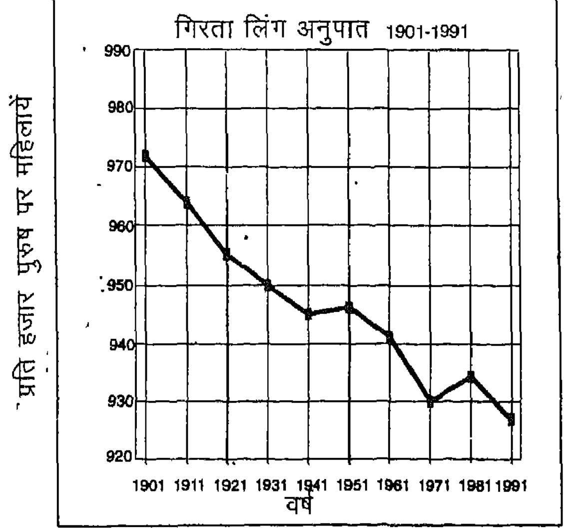
लिगांनुपात को प्रति एक हजार पुरुष के पीछे महिलाओं की संख्या के आंकलन से प्राप्त किया जाता है और यह महिलाओं की सम्यक स्थिति का एक सशक्त संकेत हैं। गैर–एशियाई देशों में महिलाओं की जनसंख्या पुरुषों से अधिक है। क्योंकि नर की अपेक्षा नारी जाति जीवविज्ञान के शोध के अनुसार अधिक मजबूत है इसी कारण प्रति 100 नवजात कन्या शिशुओं पर 102 से लेकर 107 बालक जन्म लेते हैं। भारत में लिग आधारित अनुपात महिलाओं के प्रतिकूल ही नहीं है बल्कि निरन्तर गिरता जा रहा है। वर्ष 1901 में यह 972 था और 1991 में सबसे कम यानी 927.1 प्रत्येक जनगणना दशक में करोड़ो महिलाएं गुम हो जाती हैं।

तालिका 1

लिंग अनुपात-भारत में (1901-1991)

जनगणना वर्ष	लिंग अनुपात
1991	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927

तालिका 1



इस समय की स्थिति में अधिक चौंकाने वाली बात यह है लिंगाधारित अनुपात यदि 1981-91 दशक में सम्पूर्ण जनसंख्या मे 8 बिन्दुओ से घटा तो 0-6 वर्ष की आयु वाली जनसख्या में यह बहुत तेजी से घटा और 962 से 945 रह गया यानी 17 बिन्दुओं से कम हुआ। वर्ष 1991 में 466 जिलों में दस जिले ऐसे हैं जहां 1000 बालिकाओ की तुलना में 1150 लडके हैं। सबसे समृद्ध राज्य हरियाणा और पंजाब में चार-चार जिले, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में एक-एक जिले ऐसे हैं जहां 1000 बालिकाओं के मुकाबले 1150 बालक हैं और 55 जिले ऐसे हैं जहां 6 वर्ष से कम आयु वाले बालकों में प्रति 1000 बालिकाओं के मुकाबले 1100-1500 बालक हैं। लिंग अनुपात का फैलाव हरियाणा मे 865 और केरल में 1040 तक है। 850 से कम वाले 44 जिलों में आधे केवल उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान एक निरापद आयात हैं और यहां का अनुपात 850 से कम ही है। 1000 से अधिक अनुपात वाले क्षेत्र हैं केरल, दक्षिण कन्नड, कर्नाटक, उत्तर के पहाड़ी क्षेत्र हमीरपुर, कांगड़ा, उना, मंडी और बिलासपुर हिमाचल प्रदेश में, सुगठित जनजातिय क्षेत्र मध्य प्रदेश में तथा उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के पाच दक्षिणी जिले।

महिलाओं में मृत्यु दर

34 वर्ष की आयु तक महिलाओं में जीवन ह्यस सब आयु वर्गों से अधिक होता है और उसके बाद यह क्रम पलट जाता है। विशेष आयु वर्ग आधारित मृत्युदर पाँच वर्ष से कम बालकों के लिए ग्रामीण क्षेत्र मे शहरों से दुगने हैं। जन्म से ही बालिका नारी पर होने वाली भ्रूण हत्या, नारी बाल हत्या, स्वास्थ्य और पोषाहार की सचेत अपेक्षा जो किशोर अवस्था में भी प्रजनन, स्वास्थ्य तथा विकास के प्रसाधनों का अपर्याप्त विकास, अशिक्षा इत्यादि वे कारक हैं जो समाजिक-सांस्कृतिक विभेदकारी मूल्यों और मनोवृत्तियों से प्रज्ज्वलित होकर महिला जीवन को ज्यादा जोखिम में डाल देते हैं। यह तथ्य ग्रामीण भारत में अधिकांश चरितार्थ होता है और गांवों में ही हमारी तीन चौथाई आबादी का आवास है। दो से पांच वर्ष वर्ग में महिला-शिशु की अधिक मृत्यु ही प्रमुख कारण है जिससे जिलों तथा क्षेत्रों में लिंग अनुपात इतना कम है।

जन्म से मृत्यु तक भेदभावपूर्ण जीवन चक्र

- प्रत्येक छः मादा शिशु मृतकों में से एक मृत्यु लिंगाधारित सामाजिक भेदभाव और भंयकर उपेक्षा के कारण होती है।

- गुरुत्व पुत्र-प्रश्रय के कारण मादा शिशु और उसकी माँ की उपेक्षा।

- मादा भ्रूण हत्या एक बढ़ती हुई आंधी है और यदि आज के दरों से बढ़ती रही तो जनसांख्यकिक संतुलन बहुत बिगड़ जाएगा। वर्ष 1984 में बम्बई में चालीस हजार मादा भ्रूण हत्या की गई जिनमें से 16,000 केवल एक निदरना गृह में हुई।

- एक विशेष हस्पताल में 8,000 गर्भपातों में से केवल एक स्थिति में नर भ्रूण हत्या हुई।

- अधिक संख्या में बालिकाआं को अल्पाहार पर रखा जाता है जिससे वे कम सशक्त और रोगी प्रकृति पकड़ लेती है।

अस्पतालों के ओ.पी.डी. रिकार्डो से पता चलता है कि इलाज के लिए बालिकाओं की अपेक्षा अधिक बालक दाखिल किए जाते हैं। लड़कियों को अस्पताल तब ले जाया जाता है जब बीमारी लाइलाज हो जाती है।

- बालिकाओं के बालपन में ही विवाह के कारण उनके कष्टों का आरम्भ हो जाता है। विवाहित बालिकाएं स्कूलों से रोक ली जाती हैं। लम्बी अवधि तक प्रजनन क्रम उनके स्वास्थ्य को तो प्रतिकूलित करता ही है और साथ ही कम वजन के बच्चों को जन्म भी देता है।

- बाल विवाह के साथ परिवार की आर्थिक दुर्बलता के दुष्परिणाम स्वरूप बालिका को स्कूल नहीं भेजा जाता। अन्य बालिकाएं स्थानीय निकाय में सुविधा न होने के कारण पढ़ाई से वंचित रह जाती हैं। चूंकि उनकी प्रारम्भिक शिक्षा ही नहीं हो पाती इसलिए व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा उनकी पहुंच से बाहर ही रहती है जिससे वे बेहुनर कम शुल्क वाले और अक्सर विलोम श्रम के कार्यों में लगी रहती है और इन कामों का महत्व भी कम ही होता है।

- यही कारण है जिनसे बालिकाओं में ऋणात्मक आत्म सम्मान उत्पन्न होता है। माताओं से बेटियों को यही विरासत में मिल जाता है।

- दबाई हुई लड़कियों व महिलाओं के पास स्वर नहीं होता। आत्म अनुभूति और आवागमन की स्वतंत्रता नहीं होती और उनके विषय में जो निर्णय लिए जाते हैं उनमें उनकी साझेदारी भी नहीं होती।

- इस प्रकार से पाली पोसी गई बालिकाएं राजनैतिक प्रक्रिया में भाग नहीं ले पाती। नेतृत्व व निर्णय पुरुषों के ही अधीन रहता है। राष्ट्रीय और राजकीय विधान संगठनों में महिलाएं प्रतिनिधि 6 - 10 प्रतिशत से कम ही होती हैं।



आप मुझे मौका तो दीजिए, मैं चमत्कार कर सकती हूँ

सामूहिक क्रिया कलाप

– ग्रामों के पटवारी से 1991 जनगणना की जानकारी लेने के बाद निम्नलिखित तालिका बनाइये :

आयु समूह	स्त्री संख्या	समूहपुरुष संख्या	योग
0 - 5			
6 -10			
11-14			
15 - 18			
18 +			
योग			

- जैसे हमने राष्ट्रीय स्तर पर देखा है कि क्या किसी आयु वर्ग की गणना में महिलाएं पुरुषों से कम हैं।
- यदि हैं तो इसके लिए कारणों की विवेचना कीजिए।
- अनेक क्षेत्र में लड़कियों और महिलाओं को अधिक मृत्यु के लिये संभावित कारणों की सूची बनाइये।

महिला साक्षरता

पूरी साक्षरता दर की तुलना में सामाजिक विकास के लिये ज्यादा सुग्राही सूचक हैं। ऋणात्मक रूप से महिला साक्षरता, जनन क्षमता दर, जनसख्या दर, शिशु व बाल मृत्यु दर, से संबंधित है और घनात्मक रूप से उम्र के समय स्त्री की आयु, जीवन संभावना, आर्थिकता के नये भागों में भागेदारी और सबके ऊपर महिला पंजीयन के साथ जुडा है।

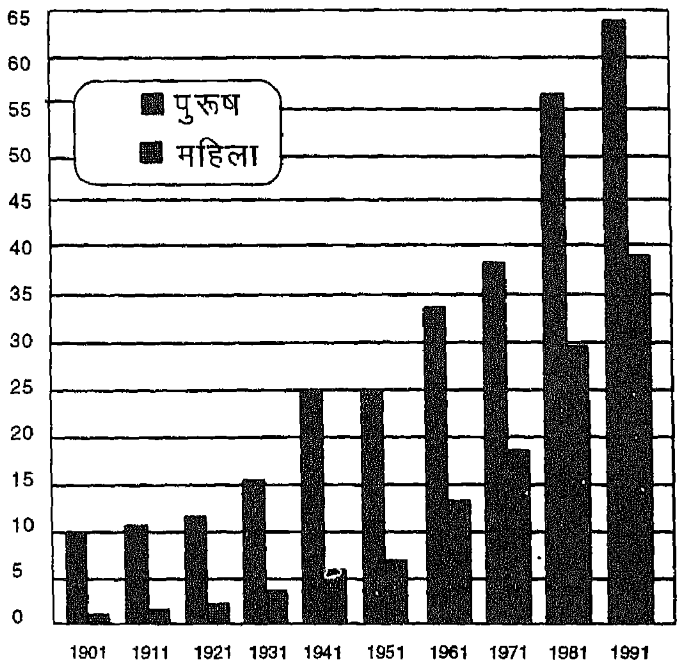
तालिका 2. साक्षरता दर			
वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
1951	18.33	27.16	8.86
1961	28.31	40.40	5.34
1971	34.45	42.95	21.97
1981	43.67	56.50	29.85
1991	52.19	64.20	39.19

नायर 1994 अ.

साधनः भारत की जनगणना

अंतिम जनसंख्या योग, 1991

साक्षरता अतराल साक्षरता दर
1951-1991



1901- 1971 सभी आयु समूह, जबकि 1981- 1991 सात साल व उससे ऊपर

ग्रामीण-शहरी अन्तराल

ग्रामीण शहरी अन्तराल स्वयं महिलाओं के बीच ही बहुत ज्यादा है। शहरी महिलायें स्त्री साक्षरता से दुगुनी से ज्यादा अच्छी अवस्था में हैं। पूरे समूह में आदिम जाति व जनजाति स्त्रियां सबसे नीचे हैं (तालिका 3 देखें)

27 जिलों में ग्रामीण स्त्री साक्षरता 10 प्रतिशत से कम है, 107 जिलों में 10-20 प्रतिशत के बीच तथा 99 जिलों में 20-30 प्रतिशत के बीच है।

तालिका 3 *साक्षरता दरों में असमानता 1991*	
शहरी पुरुष	81.09%
शहरी महिलाएं	64.05%
ग्रामीण पुरुष	57.87%
ग्रामीण महिलाएं	30.62%
आदिम जाति पुरुष	48.91%
आदिम जाति महिलाएं	23.76%
आदिम जनजाति पुरुष	40.65%
आदिम जनजाति महिलाएं	18.19%

जम्मू और कश्मीर को छोड़कर

प्राथमिक शिक्षा का सार्वलौकीकरण

चौदह वर्ष की आयु तक के बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा संविधान के लागू होने के दस वर्षों में उपलब्ध कराना एक संवैधानिक प्रतिबद्धता (अनुच्छेद 45) आज भी अपूर्ण है। इसका विशेष दायित्व उस तंत्र पर है जो बालिकाओं को प्रवेश दिलाने तथा फिर स्कूल में चलने को काबू में नहीं कर पाया। विद्यालीय प्रवेश अनुपात लड़कों के लिए 116.61 प्रतिशत हो गया है जबकि बालिकाओं के लिए केवल 88.09 प्रतिशत है । उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाएं केवल 47.4 प्रतिशत हैं जबकि बालक 74.19 प्रतिशत है। (1991-92 विभागीय आंकड़े)

स्कूली स्तर ग्रामीण-नगरीय अन्तराल बालिकाओं के लिए बहुत विषम है और उच्च शिक्षा तो उनके लिए केवल शहरों तक ही सीमित है। गिनी-चुनी ग्रामीण बालिकाएं ही माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच जाती हैं।

बालिका नामांकन का विकास

शिक्षा के सब ही सोपानो मे नामांकन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। तुलनात्मक ढंग से प्राथमिक स्तर पर नामांकन पाँचगुणा बढा जबकि ऊपरी सोपानों में बहुत अधिक है जैसे उच्च प्रारम्भिक का ग्यारह गुना, माध्यमिक शिक्षा में पन्द्रह गुना और उच्च शिक्षा में बीस गुना।

1950-51 में जो बालिका नामांकन 5.4 मिलियन था वह 1991-92 में 42.36 मिलियन हो गया। तदनुरूप उच्च प्राथमिक स्तर पर ०.५ मिलियन से बढकर १३.०० मिलियन हो गया। यद्यपि बालिकाओं का नामांकन बालकों की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ा है किन्तु बालिकाएं फिर भी पिछडी हुई हैं। क्योंकि प्रत्येक बढ़ते हुए स्तर पर उनका नामांकन अनुपात कम होता जाता रहा है।

माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त शिक्षा में बालिकाओं की संख्या 1991-92 में 21.20 मिलियन हो गई जो 1950-51 में 1.5 मिलियन थी।

तालिका 4

भारत में 1950-51 और 1990-91 में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर महिला नामांकन में विकास (मिलियन में)

स्तर	1950-51			1990-91		
	कुल	बालिका	बालिका प्रतिशत कुल में	कुल	बालिका	बालिका प्रतिशत कुल में
प्राथमिक	19.2	5.4	28.13	101.58	42.36	41.70
उच्च प्राथमिक माध्यमिक	3.1	0.5	16.13	34.45	13.00	37.73

नायर, 1994 (अ)

स्रोतः शिक्षा विभाग, चुनिंदा शैक्षिक आंकडे 1980-81, मानव ससाधन विकास मंत्रालय, 1993

स्थूल नामांकन अनुपात

स्थूल नामांकन अनुपातिक दृष्टिकोण से (जिसका मतलब होता है एक आयु वर्ग का प्रतिशत) 6-11 वर्ष की आयु वाली केवल 88 प्रतिशत बालिकाएं विद्यालयों में नामांकित हैं जबकि 117 प्रतिशत बालक प्रवेश पाए हुए हैं। 11-14 वर्ष आयु वाली 42 प्रतिशत बालिकाएं और 74 प्रतिशत बालक उच्च प्राथमिक स्तर पर प्रवेश पा चुके हैं।

तालिका 5

प्राथमिक स्तर पर स्थूल नामांकन अनुपात

	1950 - 51			*1991 - 92*		
	लडके	*लड़कियां*	*कुल*	*लडके*	*लड़कियां*	*कुल*
प्राथमिक कक्षा 1 - 5 (6 - 11वर्ष)	60.8	24.8	42.6	116.61	88.09	102.74
उच्च प्राथमिक कक्षाये 5 - 8 (11 - 14 वर्ष)	20.28	4.3	12.9	74.19	47.40	61.15

नायर, 1994 (क)

स्रोतः चुनिदा शैक्षिक आंकडे, एम.एच.आर.डी. 1993 और पिछली जिल्दे।

स्थूल नामांकन अनुपात में 25-30 प्रतिशत अधिक और कम आयु वाले बालक शामिल हो जाते हैं इसलिए वास्तविक 100 में से 6-14 वर्षीय अनुपात निकालना लम्बा काम हो जाएगा। तो भी केरल में आंकडे वास्तविकता के अधिक निकट हैं। क्योंकि वहां और अधिक आयु वाले बालकों की सख्या 6 वर्ष से लगभग सब ही बालकों के प्रवेश के कारण समाप्त हो गई है साथ ही प्रारम्भिक स्तर पर यहां छीज दर भी कम है।

अन्तरार्जकीय विषमताएं बहुत वृहत् हैं। केवल केन्द्र प्रशासित चण्डीगढ़ को छोड़कर सभी उच्च महिला साक्षरता वाले राज्यो में (50 प्रतिशत से अधिक) प्रारम्भिक शिक्षा में प्रवेश सर्वव्यापी हो चुका है। केरल, गोआ, पाण्डिचेरी और लक्षद्वीप में उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन पर्याप्त संतोषजनक है। दिल्ली, चण्डीगढ़ मिजोरम और मेघालय तक में लिंगाधारित अन्तराल कमतर ही है।

महिला साक्षरता जहां 40-50 प्रतिशत है उन दूसरे दर्जे के राज्यों में बालिकाओं का प्राथमिक स्तर पर नामांकन दर संतोषप्रद है किन्तु उच्च प्राथमिक स्तर पर यह दर एक दम कम हो जाता है। इन राज्यो में लैंगिक आधार पर सामाजिक खाई भी गहरी है।

तीसरे वर्ग के राज्यों में (जहां महिला साक्षरता दर 20-40 प्रतिशत) बालिकाओं के प्राथमिक स्तर पर नामांकन की विकट स्थिति है विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और जम्मू कश्मीर में। यहां यह कहना उपयुक्त ही होगा कि यह राज्य भारत की जनसंख्या के

आधे भाग के लिए उत्तरदायी हैं (जिसमें 40 प्रतिशत जनसंख्या उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में निवास करती है) तालिका 6 देखें।

तालिका 6

प्राथमिक स्तर पर लडकियो का राज्यो/केन्द्रप्रशासित प्रदेशो द्वारा नामाकन अनुपात जिसे महिला साक्षरता दर प्रतिशत द्वारा 1991 मे श्रेणीबद्ध किया गया

श्रेणी	*राज्य/के.प्र.*	*साक्षरता दर 1991*		*जैण्डर समानता की सूची*	*नामाकन दर अनुपात 1991–92*			
					प्राथमिक		*उच्च प्राथमिक*	
		महिला	*पुरुष*		*लडके*	*लडकिया*	*लड़के*	*लडकिया*
समूह अ राज्य (50 प्रतिशत व ऊपर)								
1	केरल	87	94	96	100	98	106	104
2.	मिजोरम	78	84	93	140	133	76	73
3.	चण्डीगढ़	74	83	94	91	59	57	57
4	लक्षद्वीप	71	87	93	157	135	118	97
5.	गोआ	68	86	89	106	97	112	96
6.	दिल्ली	66	80	89	100	85	88	76
7.	अदमान/निकोबार	66	84	88	148	136	135	117
8	पाण्डीचेरी	61	86	83				
9	दमन व द्वीप	56	66	96	114	104	70	68
10.	नागालैण्ड	52	75	83	125	109	125	96
11.	हिमाचल प्रदेश	52	75	82	142	128	109	86
12	तमिलनाडु	51	75	80	132	119	92	67
13.	महाराष्ट्र	51	75	80	132	119	92	67
14.	त्रिपुरा	50	70	83	144	122	90	71
15.	पंजाब	50	64	87	102	95	79	66
समूह ब राज्य (40–50 प्रतिशत)								
16.	मणिपुर	49	73	80	117	104	67	59
17.	गुजरात	49	73	80	142	111	85	59
18.	पश्चिमी बंगाल	47	67	82	140	108	74	56
19	सिक्किम	47	64	84	127	113	49	48
20.	मेघालय	45	52	93	67	63	64	54
21.	कर्नाटक	44	67	79	115	107	66	47
22.	असम	44	62	82	117	109	69	55
23.	हरियाणा	41	68	74	94	79	75	51
समूह स राज्य (40 प्रतिशत से नीचे)								
24.	उड़ीसा	34	62	71	120	87	65	38
25.	आध्रप्रदेश	34	56	71	123	95	71	43
26.	अरुणाचल प्रदेश	29	51	71	128	91	57	37
27.	मध्य प्रदेश	28	57	65	119	89	74	36
28.	दादरा एवं नगर हवेली	26	52	65	116	87	56	35
29.	उत्तर प्रदेश	26	55	63	105	67	68	33
30.	बिहार	23	53	60	105	56	53	21
31.	राजस्थान	21	55	54	107	50	66	23
32.	जम्मू कश्मीर	-	-	-	102	71	76	47

द्वारा . ऊषा नायजर, भारत मे ग्रामीण लडकियो को प्राथमिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण, एन सी ई.आर टी, नई दिल्ली, 1994

1 प्रौढ़ शिक्षा के साक्षरता राष्ट्रीय संस्थान के लिये साख्यकीय आकडो से साक्षरता आकडे लिये गये, नई दिल्ली, 1992

2 नामांकन आकडो की चुनी हुई सांख्यकीय शिक्षा, 1990-91, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, नई दिल्ली, 1993 से लिया गया

अन्त जिला अन्तराल

साक्षरता दर में अन्तर है। केरल के कोट्टयम जिले में 96 प्रतिशत साक्षरता है जबकि मध्य प्रदेश के झंबुआ जिले में कवेल 19 प्रतिशत है। कोट्टयम के शहरी पुरुषों की साक्षरता सबसे अधिक और राजस्थान के बाड़मेर जिले की महिलाए सबसे कम यानी 4.2 प्रतिशत साक्षरता थी।

तालिका 7

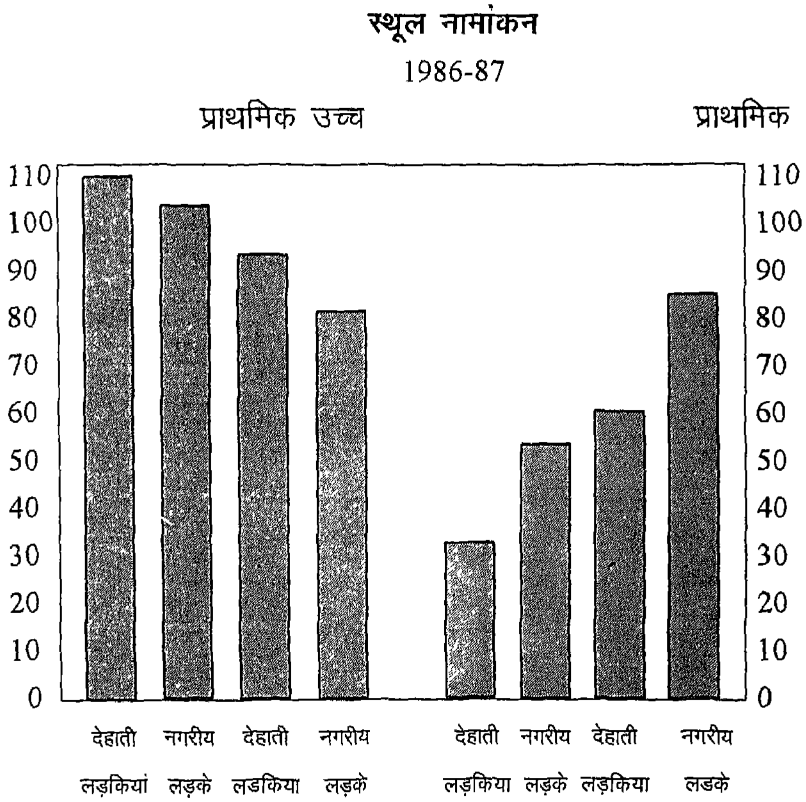
महिला साक्षरता दर आधारित जिलों का वितरण		
महिला साक्षरता दर	*जिलों की संख्या*	
	योग	*ग्रामीण*
0 - 10	2	27
10 - 20	71	107
20 - 30	104	99
30 - 40	92	82
40 - 50	74	74
50 - 60	56	28
60 - 70	27	11
70 - 80	12	7
80 के ऊपर	14	11
योग	452	446

स्रोतः साक्षरता की सांख्यकीय परिधिः जिल्द 2

महिला साक्षरता 73 जिलों में 20 प्रतिशत से कम है जिसमें दो जिले राजस्थान के ऐसे हैं जहां 10 प्रतिशत से भी कम महिलाएं साक्षर हैं। इनमें से 66 जिले मध्य प्रदेश (10), बिहार (18), राजस्थान (19), और उत्तर प्रदेश (19) में स्थित हैं।

ग्रामीण महिला साक्षरता 27 जिलों में सबसे नीचे है यानी 10 प्रतिशत से कम। 15 राजस्थान में और 7 उत्तर प्रदेश में, बिहार और उड़ीसा में एक-एक जिले इस हालत में हैं।

भारत के सब जिलों के 30 प्रतिशत यानी 134 जिले ऐसे हैं जहाँ ग्रामीण महिला साक्षरता दर 20 प्रतिशत से कम है।



तालिका 8

1986-87 में बालिकाओं का शैक्षिक स्तर और देहाती-नगरीय निवास आधार पर शिक्षा में भागीदारी

स्तर	देहाती		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
प्राथमिक	25.98 (40)	74.1	9.08 (45)	25.9	35.06 (41)	100.00
माध्यमिक	5.64 (32)	58.6	3.99 (37)	41.4	9.63 (32)	100.00
सेकेन्डरी	1.77 (27)	48.5	1.88 (37)	51.5	3.65 (32)	100.00
हायर सेकेन्डरी	0.32 (24)	29.6	0.76 (35)	70.4	4.08 (31)	100.00
उच्च शिक्षा	–	–	– (31)	–	1.13	100.00

स्रोत : नायर 1991

नोटः- 1. लघु कोष्ठक के आंकड़े पूरी संख्या में लडकियो का प्रतिशत दर्शाती हैं।
2. उच्च शिक्षा केवल शहरो मे है इसलिए नगर और देहात में वितरित शैक्षिक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

आठवीं तालिका दर्शाती है कि

1. बालिकाओं की संख्या बालकों से हर स्तर पर कम है। लड़कियो का अनुपात हर स्तर पर कम होता जाता है किन्तु हायर सैकेन्डरी के उच्च शिक्षा तक ठहराव है।

2. नगरों में बालिका और बालकों के बीच का अन्तराल कम हो रहा है किन्तु देहातों में बहुत काफी है।

3. देहाती बालिकाएं बहुत अधिक पिछड़ी हुई हैं। कुल छात्राओं की 71 प्रतिशत प्राथमिक स्तर की साझेदारी सैकेण्डरी स्तर तक आते-आते 30 प्रतिशत रह जाती है। यह ध्यान में रखते हुए कि 74 प्रतिशत संख्या ग्रामीण है नगरीय बालिकाओं को अनुपात से अधिक प्राथमिक स्तर तक पढ़ाई का अवसर मिला हुआ है।

तालिका 9

स्तर-वार नामांकन 1991-92
अखिल भारतीय आंकड़े (000 में)

क्रम सं.	स्तर	कुल	लड़कियां	कुल नामांकन बालिकाओं को प्रतिशत
1.	पूर्व प्राथमिक/पूर्व बेसिक	1436	639	44.52
2.	प्राथमिक/जूनियर बेसिक 1-5	101577	42359	41.70
3.	माध्यमिक/सीनियर बेसिक 6-8	34446	12997	37.73
4.	उच्चतर सैकेण्डरी/इंटर 9-10	15028	5050	33.60
5.	हायर सैकेन्डरी/इंटर 11-12	62	1944	32.16
6.	तकनीकी-औद्योगिक-कला तथा क्राफ्ट	431	86	19.91
7.	पौलीटेक्नीक संस्थागत	280	34	11.99
8.	शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय	125	62	49.26
9.	एम.बी.सी.एस.	83	29	34.75
10.	बीएड/बी.टी.	97	44	453.33
11.	बी.ई./बी.एस.सी./बी.आरचीटैक्ट	280	20	8.68
12.	बी.काम/बी.काम/(आनर्स)	1079	278	25.77
13.	बी.एस.सी./बी.एस.सी./ (आनर्स)	742	231	31.13
14.	बी.ए./बी.ए./(आनर्स)	1693	675	39.87
15.	एम. काम.	89	17	19.29
16.	एम.एस.सी.	78	26	33.47
17.	एम.ए.	214	80	37.52
18.	पी.एच.डी./डीफिल	31	10	33.09
	भारत	163859	6631	39.44

नायर, 1994 क

स्रोत : शिक्षा विभाग के चुनिंदा आंकड़े एम.एच.आर.डी., नई दिल्ली, 1993 ख

शिक्षा के सभी स्तरों पर बालिकाओं की साझेदारी बहुत अधिक बढ़ी है। डिप्लोमा स्तर पर तकनीकी, औद्योगिक व कला हस्तकला की शिक्षा में 20 प्रतिशत और पोलीटेक्नीक में केवल 12 प्रतिशत है। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण में बालिकाएं लगभग आधी हैं । कला की उच्च शिक्षा में महिलाएं लगभग 40 प्रतिशत हैं। विज्ञान में एक तिहाई और डाक्टोरल विद्यार्थी में भी एक तिहाई। कामर्स शिक्षा में भी महिलाएं अधिक भाग ले रही हैं और स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में एक चौथाई साझेदार है। तीन प्रमुख व्यावसायिक कोर्स में पहली डिग्री में 45 प्रतिशत महिलायें बी.एड., बी.कॉम हैं, 35 प्रतिशत एम.बी.बी.एस. किन्तु बी.एस.सी. इन्जीनियरिंग और बी. आरचीटैक्ट मे केवल 9 प्रतिशत महिलायें ही हैं (तालिका 9)।

विद्यालय छोड़ना

अन्य विकासशील देशो की तरह भारत में भी प्राथमिक स्तर पूरा करने से पहले स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में अधिकांश बालिकाएं ही हैं। इन बालिकाओं में भी अनुसूचित जातियों की बालिकाओं को और अनुसूचित जनजातियों की बालिकाओं का अपेक्षाकृत बड़ा भाग है। क्योंकि वे आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ेपन में हमारी आबादी में सबसे ज्यादा उत्पीड़ित भी हैं।

तालिका 10

ड्रॉप आउट रेट-अखिल भारत 1988-89

	कक्षा 1–5		*कक्षा 6–8*	
	लड़के	*लड़कियां*	*लड़के*	*लडकियां*
कुल	47	50	61	69
एस.सी.	47	55	65	74
एस.टी.	64	70	79	85

स्रोत : शिक्षा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 1993-94 एम.एच.आर.डी., 1994

शिक्षा में ठहराव का एक सरल मापक है बालिकाओं का एक निश्चित समय पर कक्षा 1

में नामाकंन का 5, 8, 10, और 12 कक्षा में नामांकन प्रतिशत जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है कि 100 देहाती लड़कियों में से केवल 40 ही कक्षा 5 तक पहुंच पाती है। कक्षा 12 सामान्य और तकनीकी शिक्षा का प्रवेश द्वार है जिसमें शिक्षण प्रशिक्षण भी शामिल है और इसलिए देहातों में महिला शिक्षकों की सतत् कमी रहती है।

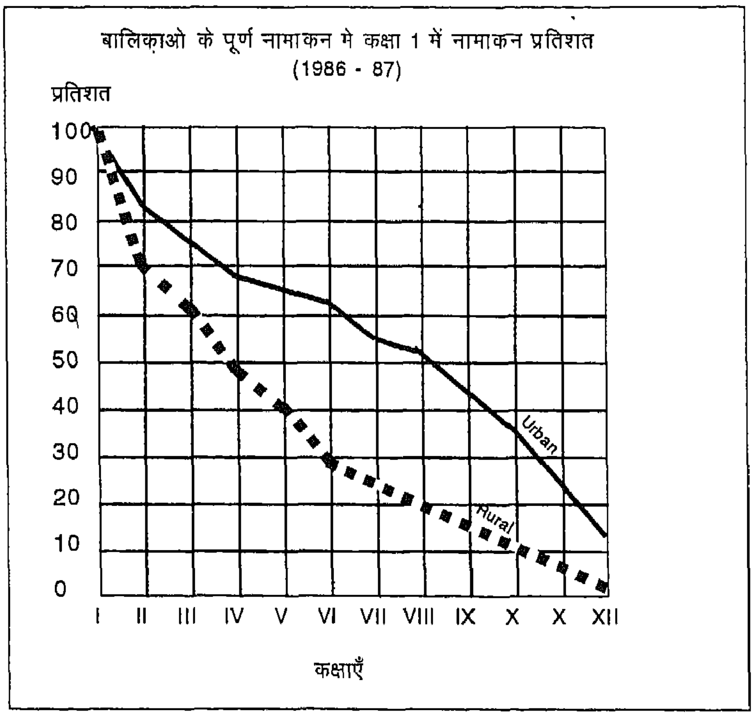
तालिका 11

बालिकाओं के पूर्ण नामांकन में कक्षा 1 से चुनिंदा कक्षाओं में नामांकन प्रतिशत 1986-87

कक्षा		देहाती	नगर	कुल
कक्षा	1	100.00	100.00	100.00
कक्षा	2	70.19	82.55	72.94
कक्षा	5	39.56	62.24	45.06
कक्षा	8	17.77	51.82	25.35
कक्षा	10	9.33	35.85	15.24
कक्षा	12	1.44	14.04	4.24

नायर 1991 क

स्रोत : पाँचवी अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी. (1989)



सामूहिक क्रियाकलाप

(1) परिशिष्ट में सभी जिलों के लिये साक्षरता आंकड़े हैं। आप अपना जिला इसमें से खोजें।

(2) अपने क्षेत्र में लिंग आधार पर साक्षर, निरक्षर व्यक्तियों की संख्या को निकालें और निम्नलिखित तालिका बनाये।

आयु	पुरुषों की संख्या	स्त्रियों की संख्या
7 वर्ष +		

(3) कुछ संस्थाओं जैसे महिला मंडल, पंचायतों की मदद से अपने समुदाय/ग्राम को साक्षर बनाने के रास्तों व तरीकों को खोजने के लिये विचार–विमर्श करें।

बालिकाओं में नामांकन न होने और अधिकतर स्कूल छोड़ने के कारण।

पूर्वकालीन अध्ययन जिनमें शामिल है, प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओ की निरन्तरता हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्र की लड़कियों तथा वंचित वर्गों के छात्र-छात्राओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु एक अग्रगामी परियोजना, जिला प्रारम्भिक शिक्षा प्रोग्राम (डी.पी.ई.पी.) लिंगाधारित भूमिका अध्ययनः यह दर्शाते हैं कि परिवार में निहित कुछ ऐसी बाते होती हैं जो बालिका को स्कूल से निकाल लेती हैं न की स्कूल से संबंधित। अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि सामान्यतः बालिकाएं स्कूल वातावरण पसन्द करती है, अपने शिक्षकों को भी चाहती हैं, पढ़ना चालू रखना चाहती हैं और अवसर मिलने पर फिर से पढ़ाई शुरू करना भी चाहती हैं।

माता-पिता, समुदाय स्वयं बालिकाएं और शिक्षाकर्मी निम्नांकित को बालिकाओं के स्कूल छोड़ने के प्रमुख कारण बताते हैं

- घरेलू काम-धन्धे
- भाई-बहिनों की देखभाल
- माता-पिता की निरक्षरता
- बाल-विवाह
- मां-बाप के घरेलू काम/धंधे में हाथ बटाना
- सामाजिक निषेध

- प्रेरणा की कमी।
- मां-बाप की फीस इतर व्यय न कर सकने की स्थिति।

बालिकाओं का नामांकन न होने के प्रमुख कारण:

- शैक्षिक सुविधाओं की अपर्याप्त और उपलब्धि तक पहुंचने में कमी।
- बाल देख-रेख, स्वास्थ्य तथा औषधि सेवा में पर्याप्त सहायता पहुंचाने वाली समर्थक सेवाओं की कमी।
- नारी जीवन का अवमूल्यन और बालिका के लिए भोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण।
- गरीबी।
- मां-बाप की निरक्षरता तथा उनमें शिक्षा के प्रति प्रेरणा में कमी।

महिला शिक्षक

1991-92 में प्राथमिक स्तर पर 29.47 प्रतिशत, मध्य स्तर पर 33 प्रतिशत सेकेण्डरी स्तर पर 33.77 प्रतिशत और उच्च सैकेण्डरी पर 31.20 प्रतिशत शिक्षक महिलाएं थीं। देहाती क्षेत्रों में आज भी महिला शिक्षकों की विकट कमी है।

1. देहाती क्षेत्रों में प्रारम्भिक स्तर पर महिला शिक्षकों का अनुपात केवल 21 प्रतिशत है। जबकि नगरों में 56 प्रतिशत महिलाएं इस स्तर पर कार्यरत हैं।

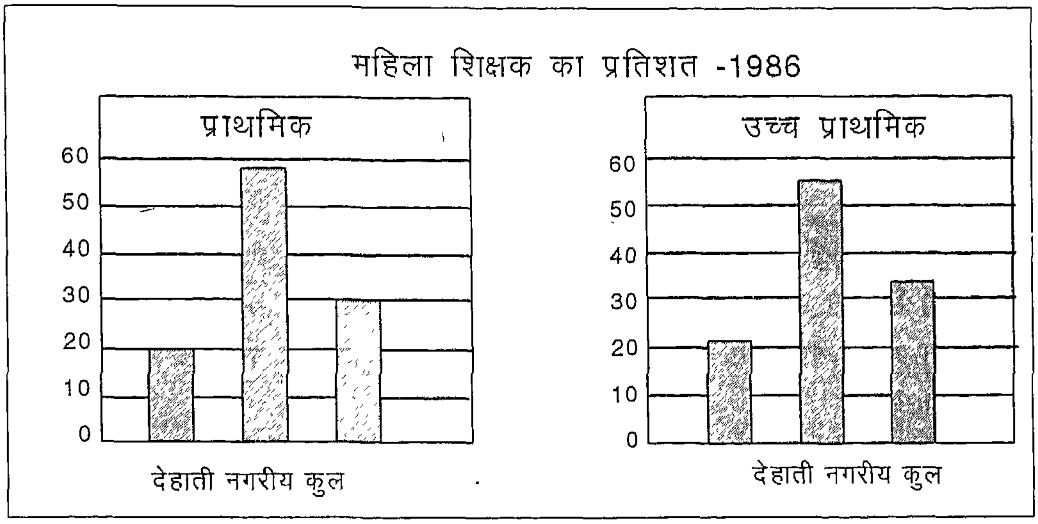
2. उच्च प्रारम्भिक स्तर पर महिला शिक्षक देहाती क्षेत्र में केवल 23 प्रतिशत और नगरों में 57 प्रतिशत।

तालिका 12

1986-87 में महिला शिक्षक-प्रतिशत				
क्षेत्र	*प्राथमिक*	*उच्च प्राथमिक*	*सैकेण्डरी*	*हायर सेकेण्डरी*
देहाती	20.84	23.40	22.42	12.92
नगरीय	55.62	56.62	47.62	30.89
कुल	28.20	32.80	31.27	27.79

स्रोतः पाँचवी अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण, 1989

चित्र 6



3. यह स्मरणीय है कि जिन राज्यों मे महिला शिक्षकों का अनुपात कम है वहां महिला साक्षरता की दर भी कम है, और महिला नामांकन भी कम है। सामान्यतः देहाती क्षेत्रों के पिछड़ेपन और विशेषतः शैक्षिक अविकास के कारण बालिकाएं यहां से यदा-कदा सीनियर सैकेण्डरी स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण तक पहुचं पाती है। देहाती बालिका विषमता के इसी चक्र में फंसी हुई हैं।
4. अध्ययनों से पता चलता है कि देहाती इलाकों मे महिला शिक्षक की उपलब्धि माता-पिता के लिए विशेष प्रेरक होगी जिससे वे अपनी बेटी को स्कूल भेज सकेंगे। यह स्थिति मैदानी क्षेत्र में सर्वत्र व्याप्त है और यहाँ पर लैंगिक आधारगत विषमता भी अत्यधिक है।

महिलाएं और अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था में महिला योगदान की अप्रत्यक्षता

1. मानव जाति के सृजन (प्रजनन) और प्रतिपालन तथा संरक्षण में महिलाओं का योगदान दूगना होता है। वह कामकाजी शक्ति की एक तिहाई मात्रा प्रदान करती है किन्तु उनका यह योगदान प्रकट नहीं होता।
2. भारत की अधिकांश महिलाएं पारिवारिक या घरेलू काम में लगी रहती है। यह बहुत महत्वपूर्ण किन्तु काफी अवमूल्यित क्रियाकलाप रह जाता है। भारतीय सेन्सस की परिभाषा में घरेलू काम-धन्धे को उत्पादक मान नही माना जाता। काम-काजी महिलाएं वे हैं जो घरेलू काम-धंधे के साथ-साथ दूसरे काम भी करती हैं।

3. काम मे महिलाओ की साझेदारी-सरकारी आंकडो में महिलाओं के काम की साझेदारी बुरी तरह से अप्रतिबिम्बित रहती है। फिर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में उनका योगदान परिवारों को होता है। उसमे पारिवारिक आय अंकन मे उनका योगदान अपर्याप्त रूप में गिना जाता है। पारिवारिक आय बढाने के बहुत से कामों में महिलाएं लगी रहती हैं किन्तु बाजार की अर्थव्यवस्था में उनकी भागेदारी पूरी तौर से नहीं के बराबर ही रहती है। इसके अलावा अधिकांश महिलाए व बालिकाएं पारिश्रमिक रहित घरेलू काम-काज करती है जैसे ईधन बटोरना, चारा और पानी लाना, बालकों और पशुओं की देख-भाल करना, फल सब्जी का बगीचा संजोना, खाद्य सामग्री बनाना, सिलाई और बुनाई करना इत्यादि।

महिला कर्मियों की विशेषताएं

1. अनेकों सामाजिक व सांस्कृतिक कारणों से महिलाए काम-काजी दुनिया में केवल पार्श्व भूमिका में रह गई हैं।

2. अधिकांश महिला केवल पार्श्व कर्मी होती हैं (उन्होंने 12 महीनों में केवल 183 दिन से कम काम किया होता है)। 1991 की जनगणना के अंनुसार 86 प्रतिशत महिला पार्श्व कर्मी मात्र है। महिला पार्श्व कर्मी अनुपात पुरुषों से कई गुना है।

3. ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र में निवास करने वाली महिलाओं के काम-काज के जीवन की साझेदारी में बहुत बड़ा अन्तराल है।

4. महिलाएं अधिकतर कम आय वाले प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत होती हैं। महिला कर्मियों के पास चुनने के लिए सीमित धन्धें होते हैं। लगभग 80 प्रतिशत महिला कर्मी कृषि उत्पादन मे लगी है, विशेषकर श्रमिक भूमिका में।

5. द्वितीय और तृतीय क्षेत्र में केवल 8.9 प्रतिशत और 9.5 प्रतिशत महिला कर्मियों की भागीदारी है। इन दोनों क्षेत्रों में यह पारिवारिक गृह उद्योग में लगी रहती है जहां इनको बहुत कम पारिश्रमिक मिलता है तथा यह परम्परागत अपूर्ण कौशल वाले कार्य करने में ही फंसी रहती है।

6. नई तकनीकी के श्रीगणेश होने के कारण महिलाओं को काम-काजी दुनिया में साझेदारी बराबर घटती जा रही है।

कामकाजी दुनिया में महिला शोषण

1. विकास प्रक्रिया ने महिलाओं को पार्श्व स्थिति में पहुंचा दिया है।
2. निश्चित कार्य अवधि में कहीं अधिक घन्टों तक महिलाओं को कार्य करना पड़ता है।
3. लिंगाधारित उत्पीड़न।
4. महिलाएं अनियमित मजदूरी और अन्तर्विराम के दुष्परिणाम भी झेलती हैं।
5. बाल महिला श्रमिकों की संख्या बढ़ी है। इनकी बढ़ी संख्या जवाहरात पर चमक लाने, बीड़ी बनाने, और अनेकों जोखिम वाले कार्यो में लगी हुई है।

अप्रत्यक्ष बालिका श्रम

चौदह वर्ष से कम आयु के बालकों को जोखिम वाले काम पर (जैसे फैक्ट्रियों या खदानों में) पाबन्दी लगाने वाले कानून की अवहेलना में कार्यरत किया जाता है। भारत में बाल श्रमिकों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

1981 की जनगणना के अनुसार 23.59 मिलियन बाल श्रमिक आंके गए थे। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण को 17.36 मिलियन बाल श्रमिक मिले। दूसरे अंकन के हिसाब से ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप (बड़ोदरा) ने अनुमान लगाया है कि 44 मिलियन बाल श्रमिक भारतीय देहाती और नगरीय निर्धन वर्ग के ही हैं। बालिका का श्रम तो दिखाई नहीं पड़ता वह परिवार के धंधे समेटती रहती है और स्कूल से वंचित रह जाती है। नगरीय क्षेत्र में बालक-बालिकाओं की अपेक्षा अधिक परिवार इतर कार्यों में लगे हुए हैं। महिला बाल-श्रमिकों में से लगभग आधे श्रमिक नगरों के कुटीर धंधे में लगी हुई है।

बालिका का शोषण महिला का शोषण का ही परिणाम हैं। जबकि बालिकाएं पूरे समय ही धनोपार्जन के कामों मे लगी रहती हैं और देहाती इलाकों में वे प्रमुख कर्मियों की संख्या की आधा होती हैं बालिकाएं अक्सर छुटपुट काम करती है जिसका पारिश्रमिक वयस्क महिलाओं को मिलता है। बाल श्रमिकों के लिए निषेधक कानून बिल्कुल प्रभावहीन हैं। इन कानूनों को लागू करने की प्रक्रिया बहुत ढीली है। सामाजिक-आर्थिक विषमताएं जो बाल श्रमिक को घेरे हैं, विशेषकर बालिका श्रमिक को, और वह भी देहाती क्षेत्रों में अधिक घ्यान और अभिलेखों की दरकार करते हैं।

देहाती बालिका कर्मी का योगदान दिखाई ही नहीं देता इसलिए उसका अंकन भी कम होता है। अधिकांश देहाती बालिकाएं छोटे भाई-बहनों की देखभाल जैसे कार्यों में लगी रहती हैं अलावा इसके कि वे अपने परिवारों की बोआई, तराई, कटाई, आरोपन और सामग्री को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने जैसे कार्यों में मदद करती हैं। महिलाओं के कृषि संबंधी कार्यों की 20 प्रतिशत भागीदारी बालिकाओं की होती है। परिवार में ऊर्जा का 50 प्रतिशत महिलाओं व बालिकाओं की देन है। एक अध्ययन से प्राप्त अनुमान है कि जब तक बालिका अपना बचपन पार करती है तब तक वह आर्थिक रूप में अपने परिवार को 39,600 रू. का योगदान दे चुकी होती है।



अनेकों राज्यों में बड़ी संख्या में बालिकाएं बीड़ी बनाने जैसे जोखिम वाले धंधों में लगी है। पत्थर पालिश, चूड़ी बनाना, कपड़े सीना, कपास और मूंगफली छीलना, हाथ से कढ़ाई, अनाज साफ करना, लाल मिर्च पीसना जैसे कार्य भी बालिकाओं द्वारा किए जाते हैं। चूंकि बालिकाएं फैक्ट्री और बड़े फॉर्मो में काम नही करती और अधिकतर परिवारों में ही जुटी रहती है इसलिए उनका कार्य न तो दिखाई पड़ता है आर न आंका जाता है। जब तक ग्रामीण परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर नहीं उठाया जाएगा तब तक बालिकाओं वाला आर्थिक रूप ही अधिक जन्मदर और बड़े परिवारों को प्रोत्साहित करता है। परिवारों की आय बढ़ाने की योजनाएं अवश्य जन्मदर कम करने और उन्नत नामांकन तथा स्कूलों से सतत् पढ़ने में सहायक होगी। पारिश्रमिक वाला या बिना उसके किया गया काम ही बालिकाओं को स्कूल और खेल से अलग रखकर उन्हें कोल्हू का बैल बना देता है। अगर इन श्रम में लगी बालिकाओं को स्कूल में लाना है तो उन्हें यह विश्वास दिलाना होगा कि शिक्षा व्यक्तिगत रूप में उन्हे अधिक धनोपार्जन की कार्यक्षमता सिखाएगी और इस प्रकार उज्जवल भविष्य बनाएगी। इसके लिए जागरूकता की आवश्यकता है जिससे उन्हें सावधानीपूर्वक हस्तकौशल पनपने वाले कार्यक्रम संजोए और सिखाए जाएं जिससे बालिकाएं अपने मूल्य की शक्ल पहचान सकें। पाठ्यक्रम निर्माण भी अत्यावश्यक है। शिक्षा के विशेष प्रोत्साहन, विशेषकर देहाती क्षेत्रों में, शिशु देखभाल सुविधा का

सार्वलौककरण, स्कूल पूर्व शिक्षा का प्रावधान और व्यस्क महिलाओं के लिए उपयुक्त रोजगारों की व्यवस्था ही ग्रामीण बालिका को स्कूल तक पहुंचा सकेगी।

राजनैतिक क्षेत्र

1. महिलाओं को वोट देने का अधिकार है और वह किसी भी राजनैतिक पद के लिए निर्वाचन में भाग ले सकती हैं।

2. संसद के पंचायत राज कानून के पारित करने के पश्चात् सब स्थानीय निकायों जैसे पंचायत; म्युनिसपेलिटी/कॉरपोरेशन की एक तिहाई सदस्याएं महिला ही होंगी। साथ ही इन संस्थानों में से एक तिहाई संस्थाओं की अध्यक्ष भी महिलाएं होंगी।

3. विश्व के इतिहास में यह पहिला अवसर है जब कि सवा दो लाख पंचायतों में एक तिहाई सदस्य महिलायें होंगी और 75000 सरपंच महिलाएं होंगी। जनपदों और जिला परिषदों में ऐसा ही होगा।

विश्लेषण

1. बड़ी संख्या में महिलाएं मतदान कर रही है किन्तु उच्चतम राजनैतिक पदों पर आसीन नहीं है।

2. लोकसभा में कभी भी उनकी भागीदारी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं रही है, आठवीं लोकसभा में सबसे अधिक थी यानी 8 प्रतिशत इस समय केवल 7 प्रतिशत ही है।

3. राज्य सभा में स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है, 1971 में 10 प्रतिशत से कुछ अधिक 1985 और आज इस सदन के 250 सदस्यों में से 15 प्रतिशत (38) महिला सदस्य है। किन्तु राज्य विधानसभाओं में महिला सदस्यता नगण्य है।

4. राजनैतिक दल महिलाओं को निर्वाचन के लिए मनोनीत नहीं करते । महिलाओं के पास पर्याप्त धन और पाश्विक बल की कमी होती है इसलिए वे चुनाव लड़ने में संकुचित हो जाती हैं।

5. सामान्य महिलाओं और पंचायत की निर्वाचित महिला सदस्याओं में हर्ष और उल्लास है।

परिचर्चा के लिए विचार बिन्दु

1. संसद और राज्य विधानसभाओं में महिला साझेदारी इतनी कम क्यों है।

संकेत

पुरुष राजनैतिक नेता जानबूझकर महिलाओं को राजनैतिक दलबन्दी से अलग रख रहे हैं। इस समय केवल एक राज्य मुख्यमंत्री है कोई महिला गवर्नर नहीं।

2. स्कूलों में बालिकाओं को राजनैतिक क्रियाकलापों में साझेदारी के लिए किस प्रकार तैयार किया जा सकता है यदि महिला साझेदारी को गांव से जिला, राज्य और राष्ट्र तक पहुंचना है।

संकेत

1. एक राजनैतिक नेता के अधिकारों और जिम्मेदारी की सूची बनाएं, देखें कि वहां कौन सी दक्षता की आवश्यकता पड़ती है। जैसे निर्णायक भूमिका बातचीत करने की क्षमता।
2. कक्षागत गतिविधियों को निर्मित करें जिनसे जागृति, लोकतांत्रिक प्रक्रिया इत्यादि पनप सके जो बालक और बालिका को नेतृत्व के लिए तैयार कर सकें।



इकाई
3

लिंगाधारित समानता: पाठ्यक्रम के माध्यम से

परिचय

भारत में नीति बालक-बालिकाओं के लिए समरूपक पाठ्यक्रम कब से निर्धारित किए हुए है किन्तु पाठ्यक्रम के विषय मे पूर्वाग्रह, पक्षपात और रूढ़िवादी छिपे पांव पठन सामग्री, कक्षा में और खेल के मैदानों में उन लोगों द्वारा प्रवेश कर लेते हैं जिन पर इनकी प्रयुक्त करने का दायित्व लिए रहते हैं। इससे बालिकाओं में व्याप्त उनके असमान आत्म प्रतिबिम्बन और निम्न आत्म सम्मान का पुष्टीकरण हो जाता है। इस एकक में शिक्षकों तथा प्रशासकों में लिंगाधारित भूमिका में पूर्वाग्रहों को दूर करके समानता और सकारात्मक आत्म संकल्पना का पाठ्यक्रम द्वारा प्रयास कर सकने की क्षमता बढ़ाने का उपक्रम किया गया है।

अपेक्षित उपलब्धि

इस एकक के अंत में आप जान जाएंगे कि कैसे मौजूदा पाठ्यक्रम, स्कूल कार्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और पठन सामग्री में लिगांधारित भूमिका गत पूर्वाग्रह आ जाते हैं और आप निम्नांकित दक्षता प्राप्त कर लेंगे :

- बालिकाओं और बालकों को लिंगाधारित भूमिकाओं में वांछनीय परिवर्तनों को ढूंढा जाए जिससे वह अनुरूप साथी बन कर साथ-साथ चल सकें।
- ''बालिका हितैषी स्कूल'' कैसे संकलित किया जाए, उसकी गतिविधियां क्या हो जिससे बालक-बालिकाओं में समानता और सकारात्मक आत्म सम्मान उत्पन्न हो सकें।
- समुदाय की भागीदारी बढाई जाये।

प्रारम्भिक स्कूल

प्राथमिक शाला चाहे औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक कुछ महत्वपूर्ण दायित्व निभाती है :

(क) बालकों में बोध जन्य योग्यता उत्पन्न करने के लिए उन्हें भाषा, गणित, वातावरण अध्ययन, कार्य अनुभव, शारीरिक शिक्षा, कला और कौशल का ज्ञान कराती है,

(ख) उन्हें समानता, मानवीय प्रतिष्ठा, सामाजिक चेतना और संवेदनशीलता जैसे सार्वलौकिक मानव मूल्यों से परिचित कराती है, और

(ग) इन नन्हें-मुन्हों को परिवर्तन में भागीदार होना सिखाती है।

एक विद्यालय का पाठ्यक्रम तीन स्थितियों का समावेश होता है : नियोजित पठन पाठन प्रोग्राम, सहगामी क्रियाकलाप और जो बालक स्कूल के वातावरण से ग्रहण करता है जिसे "परोक्ष पाठ्क्रम" भी कहते हैं।

अनुकरणीय व्यवहार, पाठ्यक्रम निदान और कक्षा में बात-चीत द्वारा शिक्षक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि शिक्षकों के व्यवहार का विद्यार्थियों के आत्म सम्मान बढ़ाने में विशेष योगदान रहता है। प्रत्येक स्कूल के प्रधान को उन सब व्यक्तियों, वित्तीय प्रसाधनों और सामुदायिक संगठन की सहायता को जुटाना पड़ता है जिससे शिक्षक अपने कर्तव्य पूरे कर सकें ।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रमणी ढांचा (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986)

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का सारभाग बालक-बालिकाओं के लिए समरूपक तो है ही साथ ही उसमें कुछ सार मूल्यों का विनियोग भी है जैसे अन्तः लिंग समानता, महिलाओं के लिए बर्ती जाने वाली अनादरपूर्ण व्यवहारित सामाजिक कुरीतियो का विरोध, लोकतंत्र धर्मनिर्पेक्षता, राष्ट्रीय एकता, वातावरण का संरक्षण इत्यादि। राष्ट्रीय शिक्षा नीति और कार्यान्वयन प्रोग्राम ने बालिका के सामाजिक, आहारिक रख रखाव पर ध्यान दिया है साथ ही साथ उन सहायक तथ्यों को भी मजबूत करने को कहा है जिससे सार्वलौकिक प्रारम्भिक शिक्षा सम्पन्न हो सके जैसे पीने के पानी की व्यवस्था, चारा, ईधन और शिशु कल्याण का प्रबन्ध। कार्यान्वयन नीति ने पाठ्यपुस्तकों के पुनर्वलोकन पर भी बल दिया है जिससे उन्हें लिंग भूमिका पूर्वाग्रहों से मुक्त किया जा सके और सारे शिक्षा कर्मियों को लिंगाधारित भूमिका के प्रति संवेदनशील, पारदर्शी पाठ्यक्रम का विक्रय करना आ सके।

सारे शिक्षकों और अनुदेशकों को महिला सशक्तिकरण का कर्ता बनने का प्रशिक्षण दिया जाएगा। एन.सी.ई.आर.टी., नीपा, डी.ए.ई., एस.आर.एस., डाइट, एस.सी.ई.आर.टी. और विश्वविद्यालय ढांचा प्रशिक्षण कार्यक्रम संगठित करेंगे। अग्रगामी प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्मित किए जाएंगे जिनमें महिला समूहों और अन्य संबंधित संगठनों की मदद की जाएगी" (पी.ओ.ए. 1992)

अभ्यास

अपने आप से प्रश्न कीजिए :

1. क्या हम लड़के–लड़कियों के लिए अलग–अलग तरह के क्रियाकलाप संयोजित करते हैं।
2. एक ही क्रियाकलाप में क्या हम लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग भूमिकाएं संयोजित करते हैं।
3. पढ़ाते और बातचीत करते समय क्या हम अधिकतर पुरुषों का ही उदाहरण देते हैं।
4. क्या हम वाक्य बनाते समय लड़कियों की अपेक्षा लड़को के नाम अधिक प्रयुक्त करते हैं।
5. क्या हमारी लड़के-लडकियों से अलग-अलग व्यवहार की अपेक्षा होती है।
6. क्या हम लड़के-लड़कियों के प्रति अलग-अलग तरह से स्नेह और रोष प्रकट करते हैं।
7. क्या हम लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग तरह की सजा तजवीज करते हैं।
8. क्या हम लडके-लड़कियों को अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग तरह से प्रोत्साहित करते हैं।
9. क्या हम लड़के-लड़कियों से बराबर प्रश्न करते हैं।
10. क्या हम लड़के-लड़कियों को माने हुए लिंगोचित संकेत देते हैं जैसे :
    - लड़कों को यह करना चाहिए या नहीं
    - बड़े लड़के ऐसे नहीं करते-वैसे नहीं करते
    - अच्छी लड़कियां ऐसे नहीं करती।
11. क्या हम लड़के-लड़कियों दोनों को बराबरी से प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

12. क्या हम लड़के-लड़कियों में कार्य विभाजन और जिम्मेदारी बराबरी से बांटते है।

अपने उत्तरों पर विचार कीजिए और अपने साथियों से खुलकर विवेचन कीजिए। सम्भवतः हमें अपने व्यवहार को बदलने की आवश्यकता महसूस हो क्योंकि हमारी अवधारणाएं हमारे बचपन से उपजी हैं जहां कि न केवल लड़के-लड़कियों, महिला-पुरुष के आपस में मिलने जुलने पर पाबंदी थी। अपितु नारी सदस्याओं को कुछ कमतर माना जाता था।

इकाई 1 और 2 में हमने यह समंझने की कोशिश की है कि लिंगाधारित भेदभाव नारी वर्ग पर किस प्रकार हावी हो जाता है और फिर आगे चलकर लड़की के आत्मबोध को कुंठित कर देता है। आइए अब मिलकर सोंचे कि अब हम ऐसे कौन से कार्य कलाप संयोजित करें जिससे बालिका के प्रगति के रास्ते के पत्थर हम हटा पाये।

(क) उसके जीने के हक को महफूज रखें

(ख) उसको हर प्रकार की शारीरिक और मानसिक प्रताडना से बचा कर रखें।

(ग) उसको किस प्रकार स्वतंत्र राष्ट्र के स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में विकिसत करें जिससे वह पूर्ण मानवीय विकास प्राप्त कर सकें।

यह शायद हमारे जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है कि हम ऐसा क्या करें कि लडकियां स्कूल जाएं, विद्या ग्रहण करें और आगे चलकर सुनियोजित व्यक्ति बने जिनमें आत्मविश्वास हो जो सकारात्मक बोध सम्पन्न हों और जो देश और सम्पूर्ण मानव जाति के विकास में अपना योगदान दे सके। लेकिन हां बालिकाए ऐसे विकास के फल की भी पूर्णाधिकारी हैं।

अगले पृष्ठों में आपको कुछ ऐसे सुझाव देंगे क्योंकि हमें पूरा विश्वास है कि आप स्वतः क्रियात्मक और सम्भव हल ढूंढ लेंगे जो कि आपके देश और कालानुसार उपयुक्त होंगे और आपकी रोजाना की जिंदगी से जुडे होंगे क्योकि एक बालिका की स्थिति उसकी समूहगत महिला स्थिति को प्रतिबिम्बित करती है। और यह भी उतना ही आवश्यक है कि परम्परागत स्थिति में लडकों का आत्मबोध कैसा है उसे भी देखें और यदि आवश्यकता समझें तो समानता और परम्परिक मर्यादा के संदर्भ में उनके आत्मबोध को परिवर्तित करें। क्योंकि नारी सुलभ और

पुरुष सुलभ भूमिकाएं और आचार व्यवहार सामाजिक कृतियां हैं।

शिक्षक का प्रबंधक स्वरूप

बालिकाओं के प्रवेश, नामांकन, सतत् परिचलन और शैक्षिक उपलब्धि हेतु

प्राथमिक स्तर के शिक्षक अक्सर मुख्य अध्यापक भी होते हैं और इसलिए शिक्षा प्रशासक भी होते हैं। प्रशासक की भूमिका में वे निम्नलिखित कृत्य निभाते हैं :

- ब्लाक जिला अधिकारियों से संपर्क करना ताकि औपचारिक तथा अनौपचारिक स्थितियों में अधिक सुविधाएं प्रदान करते हुए विशेषकर बालिकाओं के लिए प्रसाधन सुविधा, और सब ही बालकों के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध करके अधिक संख्या में पढ़ाई की सुविधा जमा करना।
- बालक व बालिकाओं को यथा समय प्रोत्साहन सामग्री जैसे पुस्तकें, वर्दी और उपस्थिति-छात्रवृत्ति जुटा कर देना।
- यह सुनिश्चित करना कि स्कूल के पास आंगनवाडी, शिशुसदन की सुविधा है और यदि नहीं तो अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र को आंगनवाडी के पास स्थापित करवाना।
- माता-पिता से सम्पर्क करके बालिका शिक्षा की उपयोगिता को प्रसारित करना।
- महिला मंडल, ग्रामपंचायत और गैर-सरकारी संगठनों के सहयोग से बालिका के हित में अभियान चलाना।
- महिला मंडल, ग्राम्यशिक्षा समिति और युवा संगठन के सहयोग से बालिकाओं के लिए विशेष प्रयास चालू करना।
- बालिकाओं को नामाकन और विद्यालय अवरोधन तथा शिक्षा प्राप्ति की उपलब्धता पर बालिकाओ का ध्यान आकर्षित करना उनके माता-पिता से बातचीत करके प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त शिक्षा विभाग की सहायता से मुक्त विद्यालीय शिक्षा अथवा अनौपचारिक शिक्षा का प्रबंध करवाना।
- उच्च अधिकारियों से माध्यमिक कक्षाएं चालू करने के लिए विचार विमर्श करना चाहे वे औपचारिक हों अथवा अनौपचारिक क्योंकि अन्वेषणों से पता चला है कि संयुक्त स्कूलों के कारण बालिकाएं शिक्षा में शामिल रहती हैं।

- अगर आवश्यक हो तो आने जाने की सुविधा उपलब्ध करायें जिससे नजदीक के गांवों से बालिकाएं आ जा सके – बस द्वारा या साईकलों पर।
- बालिकाएं जो पढ़ाई छोडने के आस-पास हैं अवश्य ढूंढी जाएं। वे बालिकाएं जो नियमित रूप से स्कूल नहीं आती, देर से आती है, जिनका पढ़ना-लिखना कमजोर है, अवश्य ऋणात्मक आत्म छवि वाली होती हैं, भाई-बहनों की देखभाल, धनोपार्जन वाले कार्यों में सहायता या माता-पिता की अस्वस्थता भी वह कारण है जिनसे बालिकाएं स्कूल में पढ़ना छोड़ देती हैं। इनका पता पाने पर आवश्यक कदम उठाना।
- कम दक्षता वाली बालिकाओं को उनकी शैक्षिक कठिनाइयों में मदद देना।
- अधिक अच्छी पढ़ने वाली बालिकाओं को पढ़ाई जारी रखने के लिए उत्साहित करना और उनके लिए आधुनिक धन्धो के दरवाजे खोलना।
- लघु नाटिका, नाटक, वाद-विवाद प्रतियोगिता, इश्तहार द्वारा जागरूकता उत्पन्न करने के लिए स्कूल प्रिंसिपल, शिक्षकों, कलाकारों की एक कमेटी बनाना जो स्कूल का इस दिशा का कार्यक्रम निर्धारित व चालू कर सके।
- माता-पिता और बालकों में सकारात्मक विचार और अभिवृत्तियों को बनाने में अभिभावक शिक्षक समितियां बहुत बड़ी भूमिका निभाती है इसलिए विद्यालयी स्तर पर उनका विन्यास करना।

पाठ्यक्रम सम्पादन के लिए सामान्य सुझाव

1. बालकों को प्रभावशाली चित्र और उदाहरण के निरूपण से वह तथ्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे वह नारी की मातृत्व भूमिका के साथ-साथ यह देख सके कि वह नारी शिक्षक, डाक्टर, प्रोफेसर, इन्जीनियर, प्रशासक, राजनीतिक, कूटनीतिज्ञ जलकपोत का कप्तान, वायुयान चालक, समाज सुधारक, मदर टेरेसा की तरह की समाज सेवक, स्वतंत्रता संग्रामी जंगली पशुओं की प्रेमी भूमिका में भी देखी जा सकती है। उक्त वर्णित स्थितियों में महिलाओं को पाठ्य पुस्तकों तथा कक्षा की दीवारों पर दिखाया जाना चाहिए।
2. शिक्षक बालकों को सब प्रकार के उपकरणों जैसे कठपुतलियों द्वारा महिलाओं का कठिन श्रम प्रदर्शित करें। वे कैसे पुरुषों के समकक्ष अस्पतालों में, फैक्ट्रियों में कार्यरत होती हैं साथ ही कैसे खतरनाक उपक्रमों में वह लगी रहती है जबकि कितना ही समय वह कुएं से पानी भरने, ईंधन चीरने, परिवार में पुरुष सान्निध्य में अन्य काम करने में जैसे कपड़े धोने इत्यादि पर खर्च करती है।
3. महिला लेखक, कलाकर, संगीतज्ञ और कुशल महिला व्यक्तियों को समय-समय पर बुलाकर प्रदर्शन करवाना चाहिए। जिससे उनकी क्षमता का पता चले।

4. पाठ्यपुस्तकों की पंक्तियों में झांकने वाले पूर्वाग्रहों को शिक्षक कुचल डाले।

शिक्षक और कक्षा

1. बालक-बालिकाओं को प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर अलग-अलग न करें।
2. हर कक्षा में दो मौनीटर हों, एक लड़का और एक लड़की।
3. सामूहिक क्रियाकलाप व खेल के लिए मिले जुले समूह बनायें।
4. बालकों और बालिकाओं दोनों को ही पढने, सुनाने और बोलने का समान अवसर दें जिससे वे आप बीती उन्मुक्त ढंग से बोल सके।
5. शर्मीली बालिकाओं तथा बालकों से अवश्य प्रश्न पूछें।
6. विद्यालय में आने से पहले ही जो लिंगाधारित भूमिका बालक-बालिकाएं स्वतः ही ग्रहण कर लेते हैं उसमें परिवर्तनकारी तथ्य मिलाकर भेदभाव दूर करने का प्रयत्न करें।
7. बालिकाओं को आवश्यकता से अधिक संरक्षित न किया जाए क्योंकि उससे लडकों में आक्रोश और लड़कियों में आश्रितता पनपती है।
8. इस तरह के वाक्यों का प्रयोग न करें जैसे "अबे तू क्या लड़की है जो रोता है"।



9. बालकों के साथ-साथ बालिकाओं में भी नेतृत्व की सकत पनपाई जाए जिससे वे निर्णय ले सके और दोनो एक दूसरे को बराबरी के स्तर पर देख सके।

पाठ्य-पुस्तकें

राज्य और राष्ट्रीय एजेन्सी पाठ्य–पुस्तकें निर्मित करते है। लिंगाधारित समानता को शामिल करते हुए पहिचाने हुए मार्मिक मूल्यों को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करने का प्रयास जारी हैं। कुछ राज्यों में ऐसी पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास पुस्तकें बना ली हैं जो लिंगाधारित भेदभाव से मुक्त तो है ही साथ ही लड़के-लड़कियों, महिला-पुरुष को साझेदारी से काम करते दर्शाती है। यह सामग्री महिलाओ को गैर परम्परागत कार्यो में संलग्न दिखाती है और उसमें उनका योगदान सुर्खो से बताती है। तो भी अधिकांश शिक्षकों को अभी भी उन पुस्तकों का प्रयोग ही करना पडेगा जिसमें बालिका का कमजोर और रूढ़िवादी स्थिति में ही नर-नारी का चित्रण किया गया है। और महिला ऋणात्मक स्थिति मे ही है। आजकल पाठ्यपुस्तकों में निम्नांकित दुर्बलताएं हैं :

1. पुरुषपात्र और पुरुष लेखकों का बाहुल्य।
2. पुरुष प्रमुख भूमिका में और कुछ महिलाएं जिनका जिक्र भी होता है वे परिचारिका की भूमिका में ही होते हैं जिनसे भृत्योचित या सहायक का कार्य ही अपेक्षित होता है।
3. निडर, हिम्मत, बहादुरी, आगुआई, उपायकुशलता, पुरुषों को सुशोभित करती बताई जाती है और महिलाओं को निश्चेष्ट भीरू, असंगठित, कमजोर और मूर्ख दर्शाया जाता है।
4. पुरुषो की कर्मशीलता, शिक्षक, नेता, डाक्टर, किसान के रूप में दिखाई जाती है और महिलाओं को गृहणी, मा, परिचारिका और यदा-कदा कृषक, फैक्ट्री कार्मिक, डाक्टर, वायुयान चालक और दफतरों में कार्यरत भूमिका में दर्शाया जाता है।

इस समय जो पाठ्य पुस्तकें काम में आ रही है उनके उदाहरण लें और देखें तथा सोचे कि ऊपर दिए गए विश्लेषण कहां तक सही है और वस्तुस्थिति को किस प्रकार मोड़ दिया जा सकता है जिससे लिंगाधारित भूमिका में समानता और बालिकाओं की आत्म परिकल्पना जड़ पकड़ सके।

उदाहरण : 1
परी

बालिकाओं और महिलाओं को परी रूप में प्रस्तुत करना। अस्वाभाविक होने से साथ-साथ यह नर-नारी समानता के सिद्धान्त का खंडन करता है। हम पुरुष को "सुपरमैन" के रूप में तो प्रदर्शित नहीं करते क्योंकि यह गप्प है। तब फिर महिलाओं और बालिकाओं को क्यों । एक बालिका भी तो वह सब कर सकती है जैसे –– "सरला बाजार में खरीदारी करने गई"।

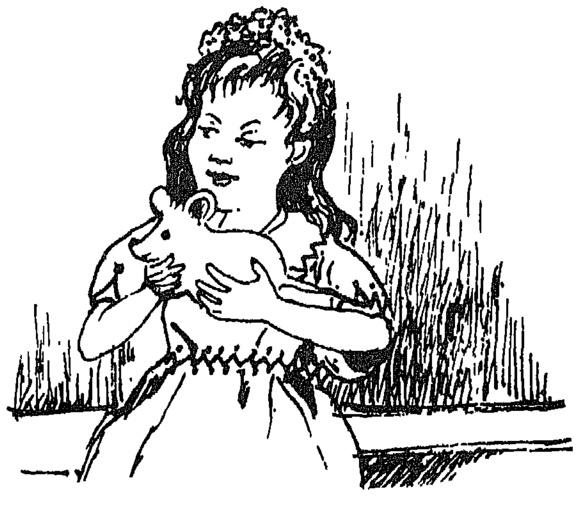
जब वह खरीदारी करने जाती है तो
सबसे पहले मछली खरीदती है;
और उसे थोड़ी देर घर पर
पानी के लोटे में रखकर
निहारती है और फिर
झरने में धीरे से छोड़ देती है।





उसके बाद वह एक रंग-बिरंगी चिडिया
उसके पिंजड़े के साथ खरीदती है
उसे घर लाकर पहले तो
उसका मधुर गाना सुनती है;
और फिर पिंजड़े का द्वार खोलकर
उसे उड़ जाने देती है।

तत्पश्चात् वह एक
प्यारी चुहिया खरीदती है।
यह चुहिया तमाम दिन नीचे से ऊपर
उसके छोटे से घर में घूमती है
जिससे परी हर्षित होती है
फिर परी उसे पुचकारती है और भाग जाने देती है।

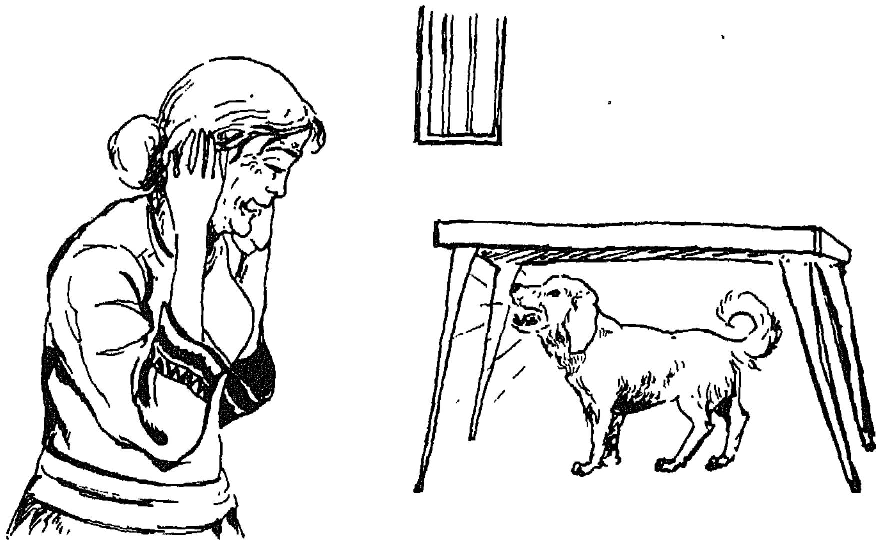


इन तीनों स्थितियों में वह संवेदनशील दर्शाई गई है। मछली को जीवन दान दिया और चिड़िया और चुहिया को उनकी आजादी लौटा दी। यह एक नेक परी की कहानी है परन्तु यह एक आम लड़की की भी हो सकती है। यदि लडकी की होगी तो हर पाठक बालिका अपने आप को पात्र के साथ जोड़ सकेगी।

उदाहरण : 2

बेवकूफ महिला

आइए जरा इस पाठ्यपुस्तक में से टीनी-वीनी की कहानी सुनें।



टीनी-वीनी को एक पांच रुपये का नोट मिला। उसने चट एक कुत्ता खरीदा और उसे घर लाकर मेज़ के नीचे बांध दिया। कुत्ते ने भौं-भौं करके उनके कान खा लिए। परेशान होकर टीनी-वीनी उसे दो रुपये में बेच आई और काली बिल्ली खरीद लाई। जब बिल्ली ने बहुत म्याऊं-म्याऊं की तो टीनी-वीनी ने उसे एक रुपये में बेच दिया और एक चिडिया खरीद लाई। चिड़िया कुछ देर उनके हाथ पर बैठी गाती रही और फिर फुर्र से उड गई बस रह गई टीनी-वीनी हाथ मलती, फिर से झाडू उठा कर बुहारने लगीं।

उदाहरण : 3

आलसी लापरवाह लड़का

कहानी में लड़का मां की आवाज के प्रति लापरवाह है और पलंग पर सुस्ती करे पड़ा रहता है और अन्त में उसके सपने में अण्डों की वह टोकरी गिर जाती है जिसे उसे बेचना था।

बहिन जाग रही है और दैनिक क्रियाओं में संलग्न है। बहिन और मां दोनों ही नबूम को जगाने की कोशिश करते हैं। पर वह है कि उठकर ही नहीं देता।



प्रस्तुत पाठ लड़के व लड़कियां दोनों ही पढ़ेंगे। इसको कहीं लड़के रोल माडेल ही ना बना बैठें और यह समझ बैठें कि सोना, आराम करना, सपने देखना और मां तथा बहिन की बात को अनसुनी कर देना उनका अधिकार है।

उदाहरण : 4

पुरुष और लड़के बहादुरी के बाने में और महिलाएं भीरू और डरपोक

बहुत से पाठ पुरुष को बहादुर और महिलाओ को भीरू प्रदर्शित करते हैं शिक्षक को बहादुरी के उन इनामों को चर्चा करनी चाहिए जो गणतंत्र दिवस पर महिलाओं और पुरुषों को दिए जाते हैं। आगे दी गई उत्तर-पूर्व की एक बालिका की कहानी सुनाई जा सकती है तथा इसी प्रकार की अन्य सच्ची कहानियाँ भी।

1. प्रस्तुत पाठ में एक बालिका यना यह कहती पाई गई कि पुरूष लंबे, ऊँचे और मजबूत होते हैं और पहाड़ पर चढ़ सकते हैं किंतु मैं बेचारी नही कर सकती। बच्चों के मन में यह धारणा पुष्ट हो जाएगी कि उनकी तुलना में. पुरुष विशालकाय और शक्तिमान होते हैं और लडकियां या स्त्री वर्ग कमजोर और असमर्थ ही है।



2. अब वहीं देखिए। इन दोनों बालकों नबूम और यना, के माता पिता जब रात को शयन कक्ष में जाते हैं तो उनकी मां चमगादड से भयभीत हो जाती है और पिता उसे भगा देते हैं।

यह पाठ महिलाओं को डरपोक और पुरुषों को बहादुर दर्शाता है।



उदाहरण : 5

बच्चों को बहादुर और मजबूत बनाने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें नीचे दी गई तथा अन्य भूतों की कहानियाँ बिल्कुल न सुनाई जाएं। वास्तव में शिक्षक को बिल्कुल नकारना पडेगा की भूत जैसी कोई चीज नहीं जैसे कि परियाँ और जादूगरनियाँ।

प्रस्तुत पाठ मे यह दिखाया गया है कि एक घर में मस्ताना नामक एक भूत रहता है। यह

भूत घर में रात को निकलता है और लडकियों की सीढियों व दरवाजों पर खट-खट, चूं-चूं की आवाज़ें होती हैं।

हमें यह समझना कठिन है कि सिवाय बच्चों के दिमाग में भूत का डर डालने के इस कहानी ने और क्या बताने का प्रयास किया।





उदाहरण : 6

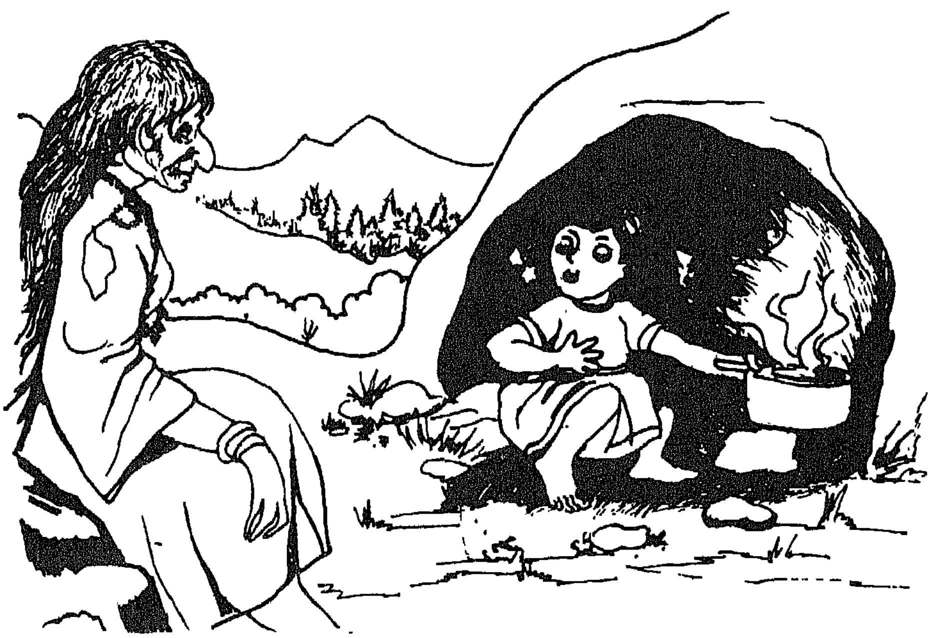
जादूगरनी महिला : महिला का जादूगरनी रूप में प्रस्तुतीकरण।

संविधान के अनुच्छेद 51 (ए) (ई) में प्रत्येक नागरिक को यह कर्तव्य सौंपा गया है कि उन सब बातों को बहिष्कृत करें जो महिलाओं को अप्रतिष्ठित करती हैं। सूचना यह है कि बिहार के आदिवासी क्षेत्रों में लगभग 100 महिलाएं प्रतिवर्ष जादूगरनी घोषित कर दी जाती है और दंड स्वरूप.जिंदा जला दी जाती हैं, बहुतों को मारा-पीटा जाता है और बेइज्जत करके गांव से निकाल दिया जाता है। उनकी जमीन, सम्पत्ति और कुटिया समुदाय द्वारा हड़प ली जाती है। राज्य में इस दुष्प्रथा के विरोध में बनाएं चल-चित्र को पुरष्कृत करके इस प्रथा के विरूद्ध अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

शिक्षक इस पाठ को पढाते समय इसके दुष्प्रभाव को यह कह कर दूर कर सकते हैं कि जादूगरनी का बात करना असंवैधानिक है। यह भी बात है कि अन्त में यनी नामक बालिका कहती है "मैं कभी भी घर से रात में नही जाऊंगी" इससे छोटी बालिकाओं के मन में डर बैठ जाता है। साथ में बच्चे यह विश्वास करने लगते हैं कि जादूगरनी सच में होती है और वह प्रथा जिसमें उन्हें अन्त में जीवित जला दिया जाता है ठीक ही तो है।

पहाड़ कभी नहीं गाएगा

प्रस्तुत कहानी "पहाड़ कभी नहीं गाएगा" मुख्यतः एक महिला जादूगरनी की पहाड़ की गुफा में



रहते हुए दर्शाती है। यह बूढी डायन सोचती है कि वह अकेली रहती है क्यों ना एक बालिका को ले आए जो उससे बातचीत भी करे तथा कभी बाहर खेले भी।

वह फुसला कर यनी नाम की एक बालिका को ले आती है। किंतु बालिका कुत्ता और मेंढक से मित्रता स्थापित कर बच निकलती है और तीनों मित्र पहाड पर चढ कर आते हैं और फिर बालिका अपने माता-पिता के पास पहुच कर रात को घर से अकेले कभी न निकलने का निर्णय कर लेती है।

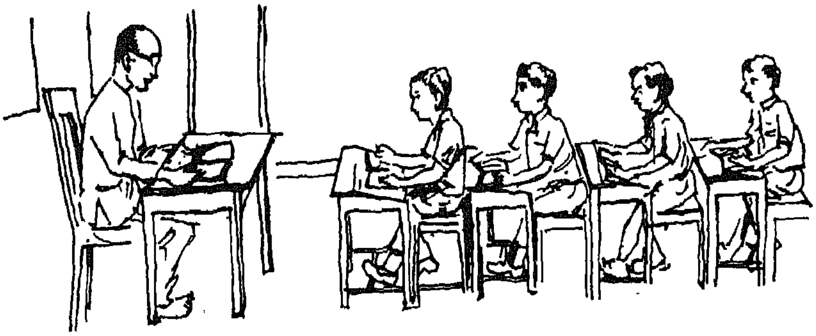


डर तो उसके मन में बैठता ही है साथ अन्य पाठकों को भी डर लगने लगेगा ऐसा निश्चित है। बढ़ते हुए अत्याचारों के युग मे बालक-बालिकाओं में डर नहीं साहस पनपाना ही श्रेयकर है।

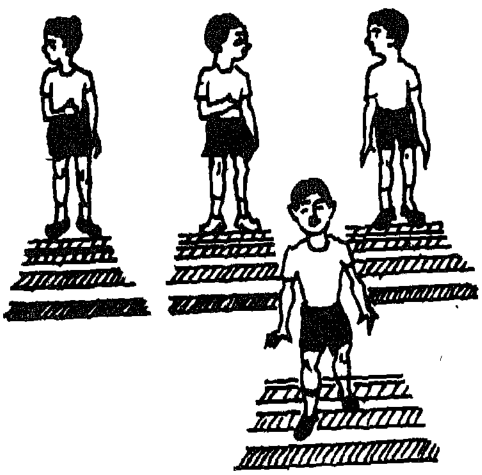
उदाहरण : 7

वे दृष्टांत जिनमें केवल पुरुष और बालक काम करते और खेलते दिखाए जाते है। शिक्षकों को

यह बताना पडेगा कि यह सत्य नहीं, और अगर ऐसा होता भी है तो उसे बदलना पड़ेगा जिससे लडके-लड़कियां, स्त्री-पुरुष सब काम साझेदारी में कर सकें।





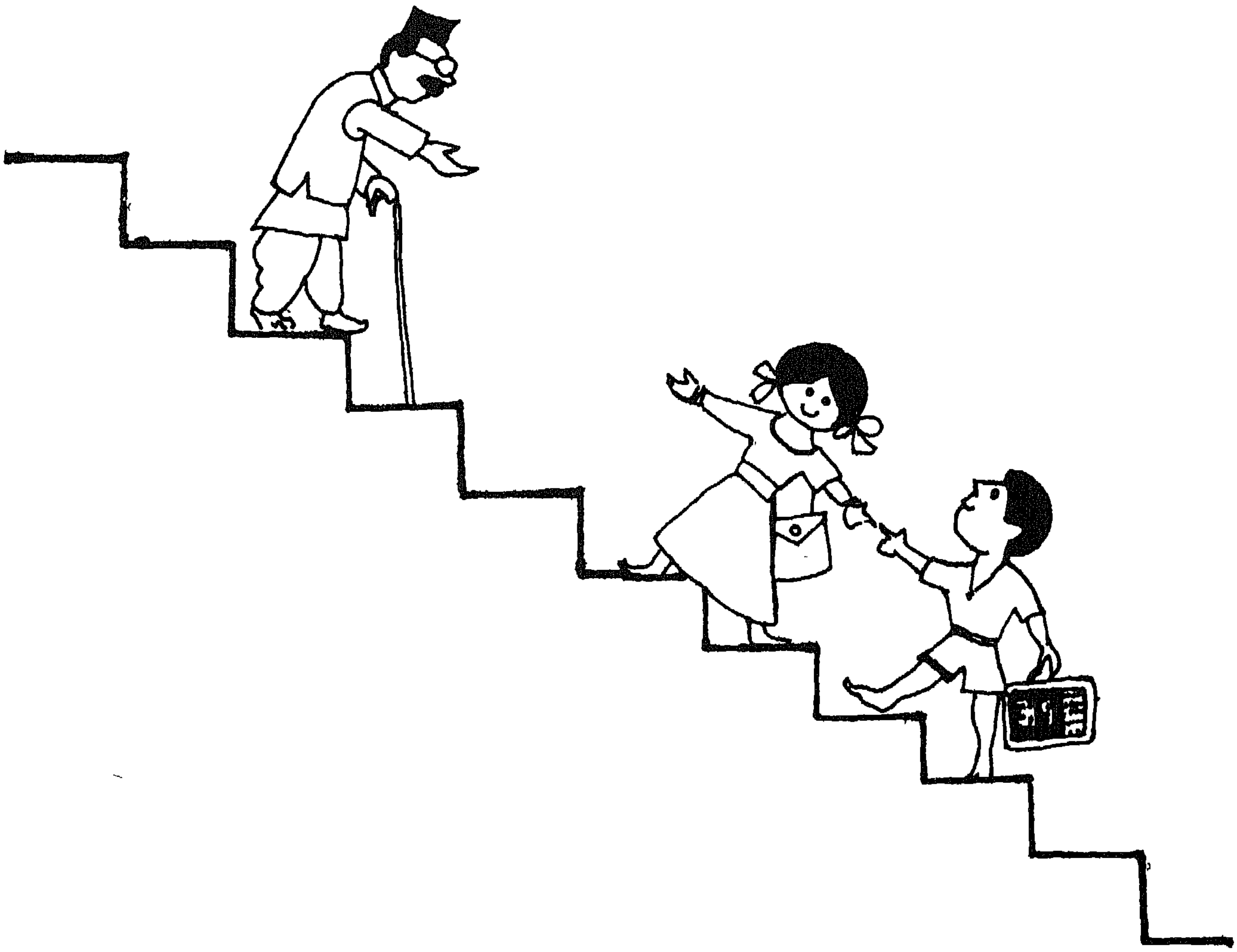




उदाहरण : 8

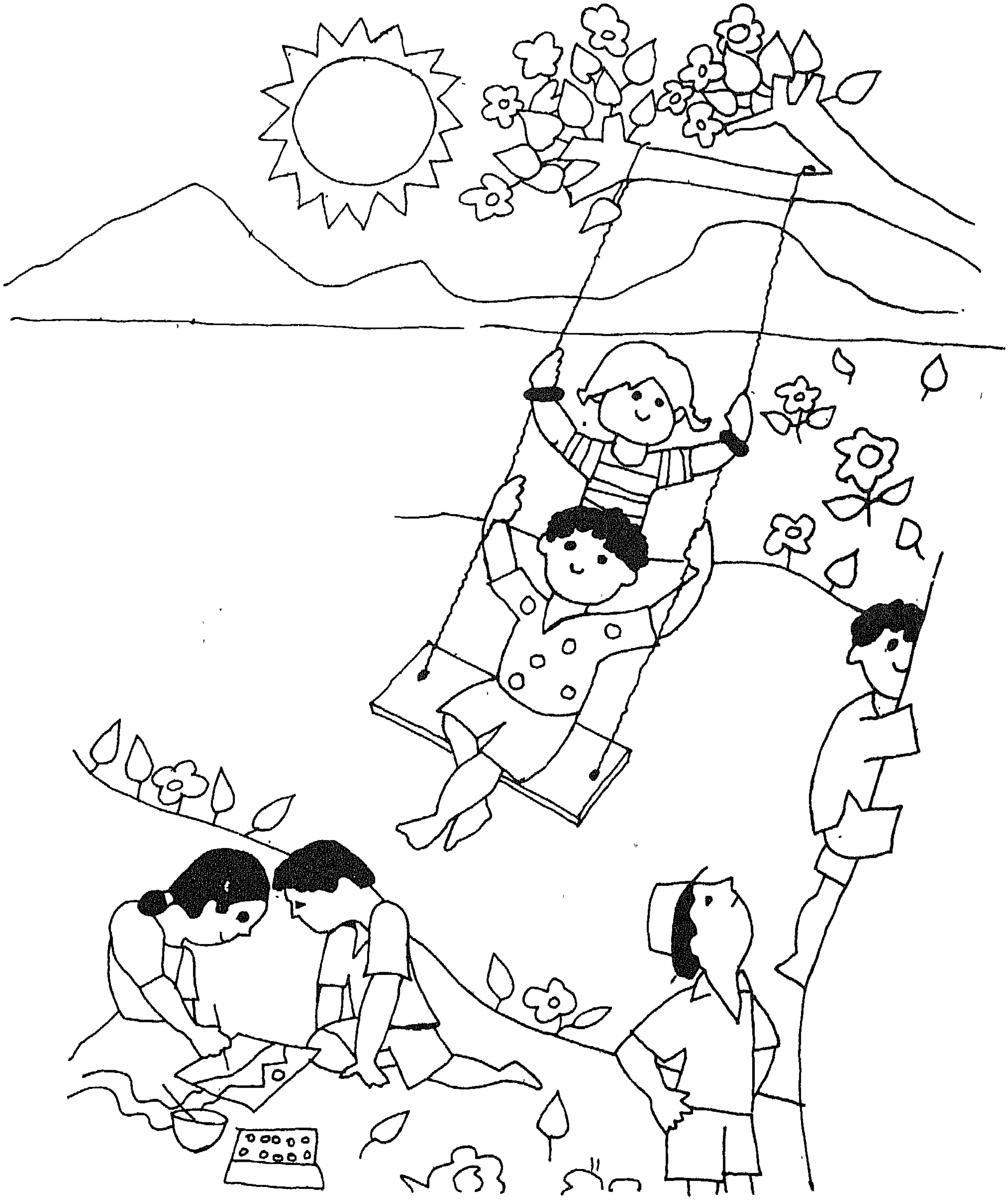
समानता की ओर

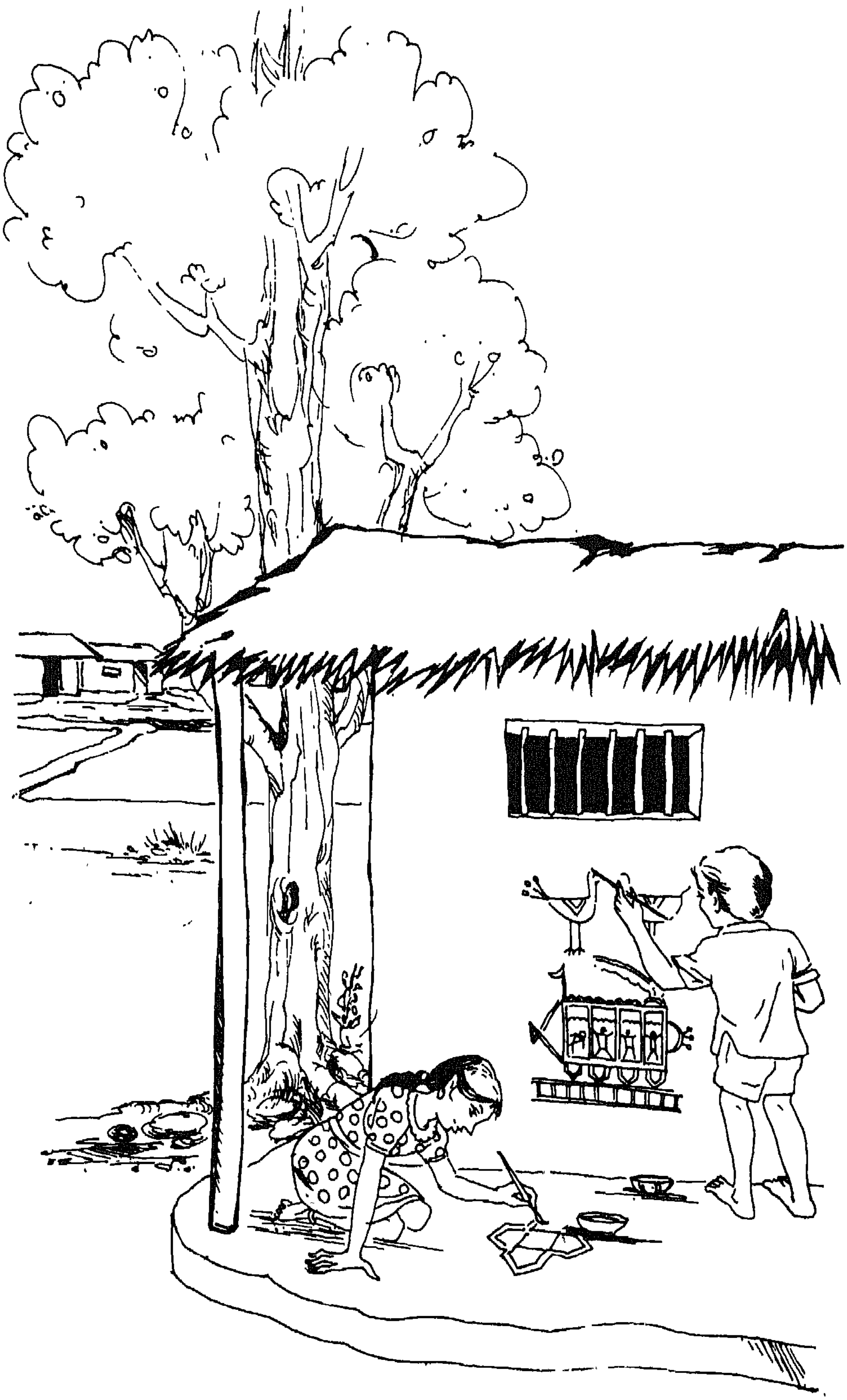
नवीन पाठ्यपुस्तकों व सहायक सामग्री मे दृष्टात











पाठ्यचर्या गत सम्पादन

भाषा (कक्षा 1 – 5)



प्राथमिक स्तर पर "भाषा" पाठयक्रम एक प्रमुख भूमिका निभाता है। भाषा अधिगम द्वारा जिन मूलभूत कौशलों की दक्षता प्राप्त की जाती है वे अन्य क्षेत्रों की संकल्पनाओं के अधिगम को सरल बनाते हैं। साथ ही बच्चे के व्यक्तित्व के विकास तथा दैनिक जीवन की क्रियाकलापों में उसके आचरण को प्रभावी बनाने में भाषा प्रयोग तथा शब्दावली-नियंत्रण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राथमिक कक्षाओ में भाषा अधिगम निम्नांकित दक्षताओं की अपेक्षा करता है :

- भाषा को समझते हुए सुनना।
- औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही स्थितियों में प्रभावपूर्ण ढंग से बोलना।
- समझते हुए पढ़ना तथा विभिन्न प्रकार की शैक्षिक सामग्री का आनन्द लेना।
- तार्किक तथा मौलिकता के साथ सुन्दर एवं स्पष्ट लिखना।
- सुनकर तथा पढ़कर विचारों को ग्रहण करना।
- विभिन्न प्रकार के संदर्भो में व्याकरण का उचित प्रयोग करना।

भाषा के चार महत्वपूर्ण कौशल, सुनना, बोलना, पढ़ना तथा लिखना है। किसी भी प्रभावी भाषा अधिगम के संदर्भ में इनकी दक्षता प्राप्त करना अनिवार्य होता है। इस रूप में यह चारों मूलभूत कौशल एक-दूसरे से संबद्ध है।

शिक्षकों के लिए सुझाव

1. लगी हुई पाठ्यपुस्तकों को प्रयुक्त करते समय शिक्षकों को सचेत विषय वस्तु तथा उदाहरणों को इस प्रकार संशोधित या परिवर्तित करना पड़ेगा जिससे (क) जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं का योगदान उभर सके। और (ख) परिवार बाजार तथा निर्णय लेने में और सरकार बनाने में पारस्परिक मान और निर्भरता स्त्री-पुरुष चरित्रों के बीच में प्रदर्शित की जाए।

2. शिक्षक लिंगाधारित ऐसी भाषा का उपयोग नहीं करेंगे। जिससे स्त्री या पुरुष की मर्यादा का अपहरण होता है।

3. शिक्षक भाषा का प्रयोग करेंगे जिससे पारस्परिक सम्मान, प्रतिष्ठा सहयोग और साझेदारी की परिस्थितियां उत्पन्न हो सकें।

4. शिक्षक ऐसी उन क्रियाकलापों को बढ़ावा देंगे जिसमें लड़के-लड़कियां स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार स्पष्ट कर सकें।

वार्तालाप

1. बालक-बालिकाओं को उनके अपने अनुभव बताने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। यह अनुभव उनके पारिवारिक और स्कूली क्रियाकलापों पर आधारित हो।

2. उपयुक्त उदाहरणों से शिक्षक घर के काम में हाथ बंटाने के मूल्य और साथ-साथ खेलने और काम करने की उपयोगिता पर बल दें।

3. बालिकाओं को प्रोत्साहित करने के लिए और बालकों की इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभावान महिलाओं के चित्र दिखाए जाएं।

4. बालिकाओं को बोलने और अन्य क्रियाओं मे भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करें जिससे आत्म संकोच दूर हो सके।

5. बालक-बालिकाओं को आपस में बातचीत करने को प्रेरित किया जाए और एक दूसरे के प्रति विनम्र व्यवहार को पनपाया जाए।

कहानी सुनाना

शिक्षक, बहादुर, विख्यात और प्रवीण महिलाओं की जीवंत कथाएं समाचार पत्रों, जीवनियों और संस्मरणों से सुनाएं और महिलाओ की ऋणात्मक स्थिति जिसमें उन्हें मूर्ख, भीरू या निकृष्ट दिखाया जाता है उसे नकारें।

मौखिक पठन

बालक-बालिकाओं को शुद्ध उच्चारण और व्यायाम के साथ उच्च स्तर में शुद्ध पाठ सिखाया जाना चाहिए जिससे भाषा का स्वर सामंजस्य के साथ उचित प्रयोग करना आ सके।

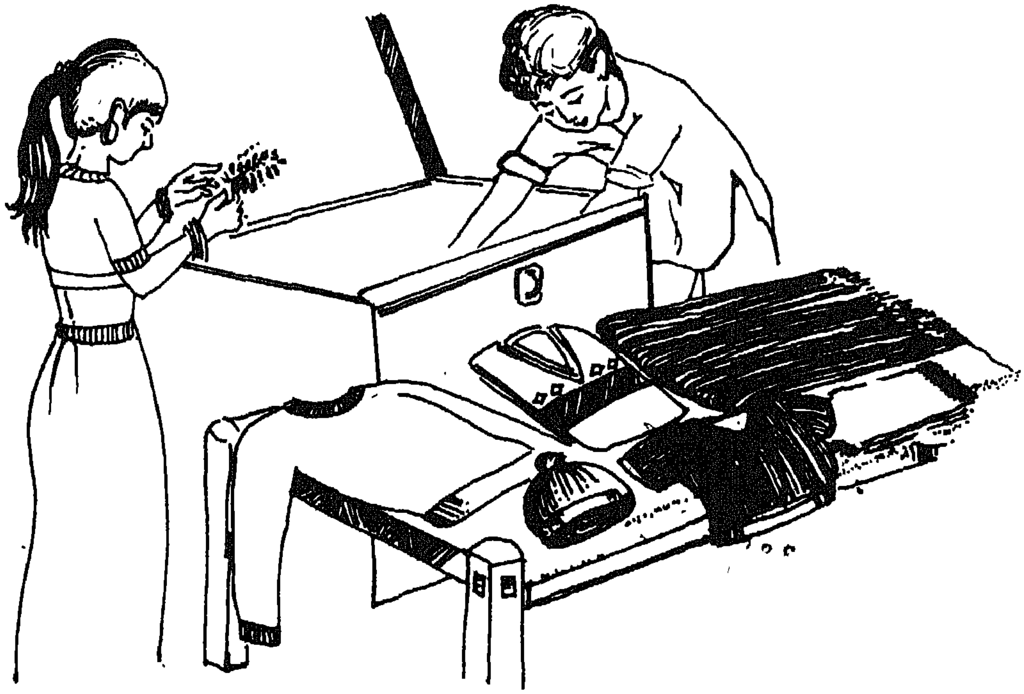
बोध परीक्षण

1. शिक्षक बालक और बालिकाओं दोनों से ही प्रश्न करेंगे और बालिकाओं से कठिन प्रश्न करना नहीं टालेंगे।
2. शिक्षक बालिकाओं को प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करें।
3. शिक्षक इस बात पर विशेष ध्यान देंगे कि सब ही छात्र कुछ न कुछ बोले और अपनी अपनी बारी से बोलें।

भूमिका नाट्य

1. इस समय जिस प्रकार श्रम विभाजन परिवार में चल रहा है उसे नाट्य प्रक्रिया में बालकों को पुरुष और बालिकाओं को महिला भूमिका निभाने को कहा जाये और फिर पूछा जाये कि घर के काम का अधिकतर बोझ किस पर आता है और क्या यह सही है कि महिलायें व लड़कियां ही इस काम में जुटी रहें या फिर बालक और पुरुष भी हाथ बटायें।

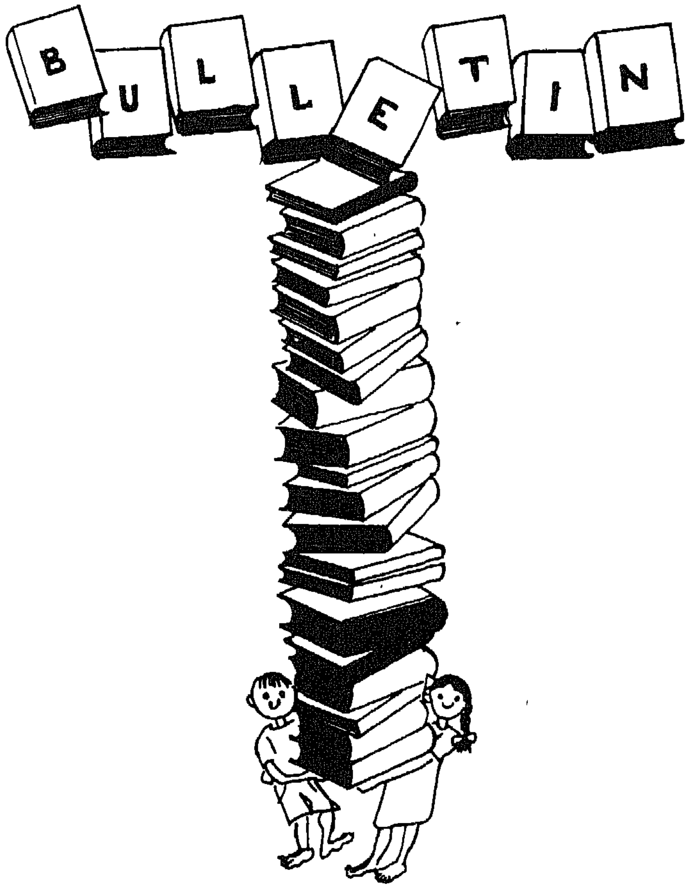
2. बालक-बालिकाओं से कुछ काल्पनिक स्थितियों में सक्रिय भूमिका निभाने की नाटिका कराई जाए जैसे कोई प्राकृतिक अथवा रेल/सडक दुर्घटना, डकैती, छूत की बीमारी या अन्य संकट की स्थिति में, वह क्या-क्या कर सकते हैं।



पढ़ने की आदत

शिक्षक बच्चों को अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें और नेशनल बुक ट्रस्ट की "रीडर्स क्लब" और एन.सी.ई.आर.टी. की एक रूपये वाली सीरीज आदि बाल साहित्य से उनको परिचित करायें। शिक्षक हास्य-व्यंग साहित्य और प्रसार माध्यम के दुष्प्रभाव को नकारे जिनके द्वारा पुरुष आक्रामक, शक्तिशाली, उन्नत (सुपरमैन) छवि में और लड़कियों को इसके विपरीत मूर्ख, बेमतलब हंसने वाली और हास्यप्रद और पुरुषों की मैली छाया की तरह बेकार स्वरूप में दर्शाया जाता है और बच्चों में संवेदनशीलता, सक्रियता और निष्ठा को पनपायें।

पढने का क्लब



जनवरी 1994

नोट : यह जानकारी प्राप्त करने के लिए कि रीडर्स क्लब कैसे शुरू किया जाएं, और.वह भी अपने स्थानीय आवास में शिक्षक नेशलन बुक ट्रस्ट, ग्रीन पाक्र, नई दिल्ली से सम्पर्क करें।

कविता पाठ व सम्मिलित स्वरों से गायन

शिक्षक कविता और गायन जैसी विधाओं का अपनी-अपनी दक्षतानुसार उपयोग कर सकते हैं। बालिका शिक्षा और महिला समानता के विषयों पे कविता गीत आदि रच सकते हैं जैसे नीचे दिया गया गीत जो राजस्थान के एक लोकप्रिय गीत की धुन पर रचा गया। वह लोक गीत है पल्लू लटके, गौरी का पल्लू लटके।

बिटिया बोले

चली पढने ओ मैं तो चली पढने
ओ अम्मा ले दे कॉपी किताब
मैं तो चली पढ़ने, ले दे कलम दवात
मैं तो चली पढने, तो मैं तो चली पढने
लाडो चली पढ़ने।

जो मै पढ लूं और कुछ बन लूं
अपने पांव पे चल लू, सही कदम लूं
आगे बढ़ लूं, अपनी राह बदल लूं
धारी सेवा करूंगी दिन रात
मैं तो चली पढ़ने, ओ अम्मा, ओ बापू
चली पढ़ने, मैं तो चली पढ़ने
लाडो चली पढ़ने।

कायदे और कानून मैं पढ लूं
लेबर सर्विस रूल मैं पढ लूं
सब सखियों संग हिल-मिल बैठूं
सोचू और समझ लूं
फिर तो पूछूंगी सौ-सौ सवाल
मैं तो चली पढने, लाड़ो चली पढ़ने।

भईया मेले मौज मनाये और बापू सग जाये
मेरे हिस्से झाड़ू बूंहारी और यह चार दिवारी
मै भी साईकल लूंगी इस बार सुना जी
चली पढ़ने, मैं तो चली पढ़ने,
लाड़ो चली पढ़ने ।

भईया बन गये खेल-खिलाडी, मै खिड़की से झांकू
उसके हाथ में बैट-बॉल और मैं तो बिट-बिट तांकू
अब तो लेदो मुझे भी फुटबाल, मैं चली पढ़ने
लो मैं तो चली पढ़ने, लाडो चली पढ़ने।

भईया पाते दूध मलाई और मक्खन का पेढा
थारी जाई अब हक मांगे, यह सवाल है टेढ़ा
अब न सिर्फ पियूंगी मैं छाछ, मैं चली पढने
लो मैं तो चली पढ़ने, लाड़ो चली पढ़ने।।

पक्षी-पत्ते, चाँद-सितारे, सब है मेरे साथी
आसमान पे उड़ना है, बस यही है मन में ठानी
मुझे करने हैं पर्वत पार, औ अम्मा ले दे कॉपी किताब
मैं तो चली पढ़ने, लाडो चली पढ़ने।।

-: ऊषा नैय्यर:-

क्यूं-क्यूं छोरी



"पर क्यूं?"

छोटी-सी लड़की थी वह, करीब दस साल की। एक बड़े से सांप को पीछा कर रही थी। मैं उसके पीछे भागी, उसकी चोटियां पकड़ घसीट कर लायी, उस पर चिल्लायी, "ना, मोइना, ना!"

"क्यूं?" उसने पूछा।

"वो कोई धामन–वामन नहीं है, नाग है, नाग!"

"तो नाग को क्यूं न पकडूं?"

"क्यूं पकड़ो?"

"पता है, हम सांप खाते हैं। मुंडी काट दो, चमड़ा बेच दो, मांस पका लो।"

"नहीं, इस बार नहीं।"

"हां, हां करूंगी।"

"पर क्यूं?"

मैं उसे समिति के आफिस तक घसीट कर लायी। वहां उसकी मां खीरी एक टोकरी बुन रही थी।

"चलो थोड़ा आराम कर लो," मैंने कहा।

"क्यों"

"क्यों नहीं? थकी नहीं हो क्या?"

मोइना ने सिर हिलाया। "बाबू की बकरियां कौन घर लायेगा? और लकड़ी लाना, पानी लाना, चिड़िया पकडने का फंदा लगाना, ये कौन करेगा?"

खीरी ने कहा, "बाबू ने जो चावल भेजा है, उसके लिये उसे धन्यवाद देना न भूलना।"

"क्यूं? क्यूं दूं धन्यवाद उसे? उसकी गोशाला धोती हूं, हजारों काम करती हूं उसके लिये। कभी धन्यवाद देता है मुझे? मैं क्यूं उसे धन्यवाद दूं?"

मोइना अपने काम पर भाग गयी। खीरी सिर हिलाती रह गयी। "ऐसा बच्चा नहीं देखा कभी। बस कहती रहती है "क्यूं? क्यूं?" – गांव के पोस्टमास्टर ने तो उसे 'क्यूं-क्यूं छोरी' का नाम दे रखा है।"

"मुझे तो अच्छी लगती है मोइना।" "इतनी जिद्दी है कि एक बात पकड़ ले तो उससे हटती नहीं।"

मोइना आदिवासी लड़की थी, शबर जाति की। शबर लोग गरीब और भूमिहीन थे। पर

बाकी शबर लोग कभी शिकायत करते सुनाई नहीं देते थे, सिर्फ मोइना ही थी जो सवाल पर सवाल करे जाती।

"क्यूं मुझे मीलों चलना पडता है नदी से पानी लाने के लिए? क्यू रहते हैं हम पत्तों की झोपड़ी में? हम दिन में दो बार चावल क्यों नहीं खा सकते?"

मोइना गांव के बाबुओं की बकरियां चराने का काम करती, पर न तो वह अपने आप को दीन-हीन समझती, न ही मालिकों का अहसान मानती। वह अपना काम करती, घर आ जाती, और बुदबुदाती रहती, "क्यों उनका बचा-खुचा खाऊं मैं?" मैं तो बढ़िया खाना बनाऊंगी शाम को – हरे पत्ते और चावल और केंकडे और मिर्ची वाला – और सारे घर वालों के साथ बैठ कर खाऊंगी।"

वैसे शबर लोग आम तौर पर अपनी लड़कियों को काम पर नहीं भेजते हैं। पर मोइना की मां एक पैर से लंगडाती थी। वह ज्यादा चल फिर नहीं सकती थी। उसके पिता जमशेदपुर काम की तलाश में गये हुए थे और उसका भाई गोरो जलाऊ लकड़ी लाने जंगल जाता था। सो मोइना को भी काम पर जाना पड़ता था।

उस अक्तूबर मैं समिति के वहां पूरा एक माह रूकी। एक सुबह मोइना ने घोषणा की कि वह समिति वाली झोपड़ी में मेरे साथ रहेगी।

"बिल्कुल नहीं," खीरी ने कहा।

"क्यों नहीं, इतनी बडी झोपड़ी है। एक बुढ़िया को कितनी जगह चाहिये?

"तुम्हारे काम का क्या होगा?"

"काम के बाद आया करूंगी।"

"और वह एक जोड़ी कपडे और एक नेवले का बच्चा लिये आ पहुंची। "ये बस जरा सा खाना खाता है और बुरे सांपों को दूर भगा आता है," उसने कहा। "अच्छे वाले सांपों को मैं पकड़ कर मां को दे देती हूं। क्या बढ़िया तरी वाला सांप बनाती है मां। तुम्हारे लिये भी थोड़ा लाऊंगी।"

हमारी समिति की शिक्षिका मालती बोनाल ने मुझ से कहा, "आप तो तंग आ जायेंगी इसकी क्यूं-क्यूं सुनते हुए।" और वाकई, वह अक्तूबर ऐसा बीता कि पूछो मत! क्यों मुझे बाबू की बकरियां चरानी पड़ती हैं? उसके लड़के खुद ही कर सकते हैं। मछलियां बोल क्यों नहीं पातीं? अगर कई सारे तारे सूरज से भी बड़े हैं तो वो इतने छोटे क्यों नजर आते हैं?"

"और हर रात को : "तुम सोने के पहले किताबें क्यों पढ़ती हो?"

"क्योंकि किताबों में तुम्हारी क्यूं-क्यूं के जवाब मिलते हैं।"

इस एक बार मोइना चुप रही। उसने कमरा ठीक-ठाक किया, रंगन के फूलों वाले झाड़

को पानी दिया, नेवले को मछली दी। फिर उसने कहा, "मै पढना सीखूंगी और अपने सारे सवालों के जवाब ढूंढ निकालूंगी।"

जो-जो वह मुझसे सीखती, वह बकरियां चराते समय दूसरे बच्चों को बताती। "कई तारे तो सूरज से भी बडे हैं। सूरज पास है इसलिए बडा दिखता है... मछलियां हमारी तरह बातें नहीं करतीं। मछलियों की अपनी भाषा है जो सुनाई नहीं देती ... तुम्हें पता है, पृथ्वी गोल है।"

एक साल बाद जब मैं उस गांव में दुबारा पहुंची, तो सबसे पहले सुनाई दी मोइना की आवाज। "स्कूल क्यों बंद है?" समिति के स्कूल के अंदर एक मिमियाती बकरी को अपने साथ घसीटते हुए उसने मालती को ललकारा।

"क्या मतलब है तुम्हारा 'क्यो बंद है'?"

"मैं भी क्यूं न पढ़ूं।"

"तो तुम्हें रोक कौन रहा है?"

"पर कोई कक्षा ही नहीं लगी।"

"स्कूल पूरा जो हो चुका।"

"क्यूं?"

"तुम जानती हो मोइना, मैं सुबह नौ से ग्यारह बजे तक कक्षा लगाती हैं।"

मोइना ने पांव पटक कर कहा, "तुम समय बदल क्यों नहीं सकती? मुझे बाबू की बकरियां चरानी होती हैं सुबह! मैं तो सिर्फ ग्यारह बजे के बाद ही आ सकती हूं। तुम पढाओगी नहीं तो मैं सीखूंगी कहां से? मैं बूढ़ी मां को बता दूगी कि बकरी चराने वाले या गाय चराने वाले, हम में से कोई भी नहीं आ सकेगा अगर स्कूल का समय नहीं बदला तो।

तभी उसने मुझे देखा और बकरी ले भाग खडी हुई।

शाम को मैं मोइना की झोपडी पर गई। चौके की अंगार के पास मजे से बैठी मोइना अपनी छोटी बहन और बड़े भाई को बता रही थी, "एक पेड़ काटो तो दो पेड़ और लगाओ। खाने के पहले हाथ धो, जानते हो क्यों? पेट दर्द हो जायेगा अगर नहीं धोओगे तो। तुम कुछ नहीं जानते -- जानते हो क्यों? क्योंकि तुम समिति की कक्षा में नहीं जाते।"

तुम्हें क्या लगता है, गांव में जब प्राइमरी स्कूल खुला तो उसमें दाखिल होने वाली पहली

लड़की कौन थी?

मोइना।

मोइना अब अठारह साल की है। वह समिति के स्कूल में पढ़ाती है। अगर तुम उसके स्कूल के पास से गुजरो तो निश्चित ही तुम्हें उसकी बेचैन आवाज सुनाई देगी।

"आलस मत करो। सवाल करो मुझसे। पूछो, क्यों मच्छरों को खत्म करना चाहिये ... क्यों ध्रुव तारा हमेशा उत्तरी आकाश में ही रहता है।"

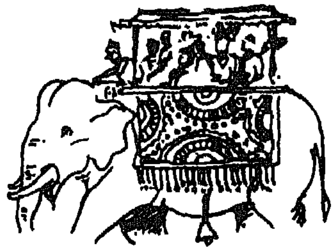
और दूसरे बच्चे भी अब सीख रहे हैं पूछना – "क्यों?"

वैसे मोइना को पता नहीं है कि मैं उसकी कहानी लिख रही हूं। अगर उसे बताया जाये तो कहेगी, "क्यूं? मेरे बारे में? क्यूं?"

- महाश्वेता देवी



साहसी लड़की



कुछ बच्चे हाथी पर बैठे जा रहे थे। हाथी सजा-धजा था। वह झूम-झूम कर चल रहा था। मैने भैया से कहा-- भैया मैं हाथी पर बैठूँगी।
भैया बोले-- छुटकी, तुझे पता है, ये साहसी बच्चे हैं। इन्हें इनके साहस के लिए पुरस्कार मिला है।

इतने छोटे-छोटे बच्चे! इन्होंने ऐसा कौन-सा साहस का कार्य किया होगा? मैंने भैया से पूछा।

वे बताने लगे-देखो उधर, वह दुबली-सी लडकी है, साँवलें रंग की। उसका नाम सयाल है। गुजरात में एक गाँव है – बरहाटा। सयाल उसी गाँव की रहने वाली है। बहुत मेहनती लड़की है। अपने माँ-बाप की प्यारी बेटी है। वह उनके हर काम में मदद करती है।

एक दिन सयाल ढोर चराने जंगल में गई। पेड़ के नीचे बैठी थी। अनजान जगह थी। तभी उसने एक जोर की चीख सुनी। कोई चिल्ला रहा था- बचाओ-बचाओ। वे लम्बे-लम्बे डग भरती उधर ही दौड़ पड़ी।



उसने देखा- अरे! यह तो मेरी सहेली निर्मला है। इसे तो अजगर लपेट रहा है। इतना मोटा अजगर। निर्मला की तो हड्डी-पसली ही टूट जाएगी। सयाल काँप उठी।

तभी अजगर गुस्से से फुफकारा। वह इसे अनदेखी नहीं कर सकी। सयाल डरी नही। उसने एक ज़ोर की लाठी अजगर पर दे मारी। अजगर फिर जोर से फुफकारा। सयाल ने फुर्ती से अजगर का मुंह पकड लिया। वह उसका जबड़ा खोलने लगी।

अरे, यह तुझे डस लेगा, सयाल डर से कॉंपते हुए निर्मला बोली।

यह कुछ नहीं कर सकता निर्मला। इसका तो मैं जबड़ा फाड़ कर ही रहूंगी। सयाल ने दाँत भींचे और जोर लगाया। उसके हाथों से खून बहने लगा। माथे पर पसीना आ गया। आखिर उसने अजगर के जबड़े फाड ही दिए। अजगर की कुण्डली ढीली पड़ गई।

सयाल चिल्लाई झटका दे, निर्मला। निर्मला ने वैसा ही किया। वह कुण्डली से दूर जा गिरी।

भाग जा निर्मला....भाग जा। सयाल बोली। तभी अजगर ने सयाल पर हमला कर दिया। सयाल औंधे मुँह गिर पडी। अजगर ने सयाल को कुण्डली में लपेट लिया। निर्मला ने सोचा-कहीं अनहोनी न हो जाए। वह चिल्लाई-सयाल....सयाल।

भाग जा निर्मला....भाग जा – अजगर की कुण्डली में लिपटी सयाल बोली।

लेकिन निर्मला भागी नहीं। उसने सयाल की लाठी उठा ली। उसे अजगर पर पूरी शक्ति से दे मारा। अजगर चोट खाकर ढीला पड़ा। इससे सयाल को अवसर मिल गया। उसने अजगर को पूरी शक्ति से झटका दिया। घायल अजगर की पकड़ ढीली तो थी ही। सयाल अजगर की कुण्डली से छूट गई। वह दूर जा खड़ी हुई।

निर्मला ने सयाल का हाथ पकड़ा। दोनों घर की ओर दौड़ पडीं। घर पहुंचकर ही उन्होंने दम लिया।

लोगों ने सयाल की बहुत प्रशंसा की। वही सयाल आज हाथी पर बैठी है।

सब लोग ताली बजा रहे थे। मैंने देखा साहसी बच्चों को पुरस्कार दिए जा रहे हैं। सयाल का नाम भी पुकारा गया। मैंने सोचा - मैं भी साहसी बनूंगी सयाल की तरह साहसी।

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में महिलाओं के योगदान पर आधारित कहानियाँ और समाचार-पत्र संवाद

समाचार-पत्र संवाद

1. पूना शहर के नानापेठ क्षेत्र में शकुन्तला परदेसी एक ऐसी कार्यशाला चलाती है जहां लोहा जोड़ने व अन्य मशीनों के मरम्मत का काम होता है। वह बालपन से ही मशीनों की मरम्मत में रुचि लेती रही है। लघु उद्योगों में उनके प्रशिक्षित नौसीखिये की भारी मांग है क्योंकि वे ऊँचे स्तर की आवश्यक दक्षताएं उन्हें सिखाती है।

2. आकाश से गोता लगाना साहसी कार्य है। महाराष्ट्र की रविबाला काकातिकर उच्च कोटि की आकाश-गोताखोर हैं। वह हवाई छतरी से छलाग भी लगा सकती हैं।

3. भारतीय एयर लाइन्स ने अपनी कलकत्ता-सिल्चर चीन यात्रा पूरी तौर से सौदामनी देशमुख और निवेदिता भसीन महिला यान चालकों को सौंप दी हैं। दोनों ही पिछले कई वर्षों से हवाई जहाज़ उड़ा रही हैं। उनसे पूर्व कप्तान श्रीमती बनर्जी को उच्च कोटि का चालक माना जाता था । यह महिलाएं अब बडे यानों की चालक बनने की उत्सुक हैं।

4. 1984 में नवयौवना बछेन्द्री पाल ने एवरेस्ट पर्वत पर चढ़ाई की। उनसे पूर्व केवल तीन महिलाओं ने यह श्रेय प्राप्त किया था। बछेन्द्री संस्कृत में एम. ए. पास है। पहाड़ पर चढ़ना उनका मनोरंजन है। उनके एवरेस्ट अभियानं में सब महिलाएं ही थीं।

5. भारत के अधिकांश अभियानो में 1983 से अदितिपंत समुद्र वैज्ञानिक एक सदस्य रही है। अदिति ने जीवविज्ञान में पूना विश्वविद्यालय से स्नातक और उत्तर स्नातक व डाक्टरेट की उपाधि लंदन विश्वविद्यालय से प्राप्त की । वह राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान की एक शोध कर्मी हैं। यह अंटार्कटिका को उनका तीसरा अभियान था।

सच्ची कहानियां

1. सरोजिनी नायडू महात्मा गाँधी की अनुयायी थीं। उन्होने लगभग 30 वर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। स्वतंत्रता संग्राम में उन्हें जेल भोगना पड़ा। सरोजनी नायडू एक विख्यात थीं। बंगाली, अंग्रेजी, उर्दू और फ़ारसी पर उन्हें प्रवीणता प्राप्त थी। उनकी लिखी कविताएं अंग्रेजी साहित्य की विशेष देने मानी जाती हैं। वह उत्कृष्ट

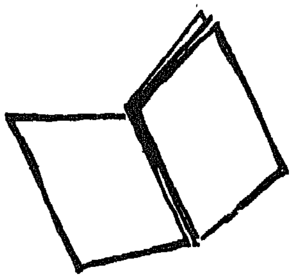
प्रवक्ता भी थीं। वह बहुत धनाढ्य परिवार की सदस्या थीं, किन्तु देश की आजादी के संग्राम में उन्होंने सब कुछ तज दिया और देश सेवा में जुट गईं।

2. मुगलकाल में आजादी के लिए महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज ने संघर्ष किया। कूटनीति में उनकी माँ जीजाबाई ने उन्हें प्रशिक्षित किया। उन्होंने शिवाजी को अच्छा प्रशासक और शासक होना भी सिखाया।

3. रानी लक्ष्मी बाई ने अंग्रेजो से चोट ली और भारत की आजादी की मशाल को रोशन किया। वह झांसी नामक राज्य की महारानी थी। उन्होने अपनी सेना के लिए महिलाओं की एक टुकड़ी संगठित की। यह टुकड़ी पुरुषों के सेना दल से अधिक बहादुर और निष्ठावान थी। झांसी की रानी की वीरता की कहानियां पूरे देश में व्याप्त हैं।

4. आज के बहुत पहले सावित्री बाई फूले पूणे में पहली महिला शिक्षक बनी। रुढ़िवादी लोगों की भयंकर आलोचना के बावजूद उन्होंने बालिकाओं के लिए स्कूल प्रारम्भ किए। इसका विरोध करने वालों ने उन्हें तंग किया उन पर पत्थर बरसाये और हद तो यह कि उनको मारा-पीटा। किन्तु उन्होंने अपना प्रयास जारी रखा और महाराष्ट्र में बालिका शिक्षा की नींव डाली। आज भी उनका नाम घर-घर में लिया जाता है।





मुझे पढ़ना है

बाप - बेटी से : पढ़ना है! पढ़ना है! क्यों पढ़ना है?
पढ़ने को बेटे काफी है, तुम्हें क्यों पढ़ना है?

बेटी - बाप से : जब पूछा ही है तो सुनो
मुझे क्यों पढ़ना है!
क्योंकि मैं लड़की हूँ
मुझे पढ़ना है!
सपनों ने ली अंगडाई है सो पढ़ना है!
कुछ करने की मन में आई है सो पढ़ना है!
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है!
मुझे दर-दर नहीं भटकना है सो पढ़ना है!
मुझे अपने पॉवों चलना है सो पढ़ना है!
मुझे अपने डर से लडना है सो पढ़ना है!
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है!
कई ज़ोर जुल्म से बचना है सो पढ़ना है!
कई कानूनों को परखना है पढ़ना है!
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है!
मीरा का गीत, गाना है सो पढना है!
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है!



(दिल्ली साक्षरता समिति का गीत)

गणित

प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि बालकों में सही रूप से गणनीय क्षमता उत्पन्न हो सके जिससे वह परिवार व समुदाय के दैनिक क्रियाकलापों में भागीदार हो सके। चूंकि गणित सीखने से बालक तत्कालिक स्थितियों से उत्पन्न संकल्पनाओं को समझ सकते हैं। इसलिए उन्हें पुरुष और महिलाओं की बराबरी की हिस्सेदारी प्रत्येक जीवन क्षेत्र में समझाई जा सकती है जिससे श्रम और संसाधन में भागीदारी की समरूपकता वाली अभिवृत्ति का सूत्रपात हो सकता है।

शिक्षकों के लिए सुझाव

शिक्षक गणित प्रशिक्षण करते समय निम्नांकित विचारों को समविष्ट करेंगे:

1. घरेलू काम काज उतने ही उत्पादक कृत्य हैं जितने कि बाहर वाले और वे परिवार के सभी सदस्यों की साझेदारी में जिम्मेवारी है।
2. जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किए गए हर काम की गरिमा को समय, श्रम शक्ति के आंकलन द्वारा सिखाया जाना चाहिए।
3. जीवन के हर क्षेत्र में बढ़ता हुआ महिलाओं का योगदान स्पष्ट किया जाना चाहिए साथ ही यह भी सिखाया जाना चाहिए कि यदि यह योगदान नहीं होगा तो श्रम का ह्रास होगा।
4. गणित शिक्षा से तार्किक शक्ति को बढ़ावा मिलना चाहिए जिससे शिक्षार्थी दहेज प्रथा व वधुधन की बुराइयों को तोल सकें और परिवार कल्याण के दृष्टिकोण से छोटे परिवार के मूल्य को समझ सकें।

अंक सिखाना

इस क्रिया कलाप का मतलब यह होता है कि पहली कक्षा में छात्रों को 1 से 10 तक के अंकों को सिखाना।



5. गणित शिक्षण के द्वारा लड़के और लड़कियों में निर्णय लेने की क्षमता बराबर-बराबर सिखाई जाए।

6. बराबर अवसर के संदर्भ में आंकड़ों द्वारा इस बात को सुझाया जाए कि महिलाएं बराबरी से जिम्मेदारियां उठा सकती हैं।

7. दहेज, मृत्यु संस्कार जैसी सामाजिक कुरीतियों से निग्रह पाने के लिए इन कामों पर किए गए अपव्यय को अंक गणित के माध्यम से सुझाना ।

8. सोने, चांदी तथा अन्य कीमती वस्तुओं के प्रति प्रलोभन की भावना को बहुत कम करना था इस प्रकार के व्यवहार को बढ़ावा देना जहां बैंक में अल्पराशि बचत योजना अपनाई जाए।

9. इस स्थिति को समझना जिसमें प्रत्येक जनगणना में महिलाओं की जनसंख्या पुरुषों की संख्या से घटती जाती रही है। प्रारम्भिक स्तर के बालक इस तथ्य को साधारण 'अंकगणित' द्वारा समझ लेंगे।

कक्षा 2

जोड़, घटा, गुणा, भाग :

1. निम्नांकित प्रकार की प्रश्नावली से शिक्षक इस बिन्दु को उभार सकते हैं कि यदि परिवार में सब लोग काम में हाथ नहीं बंटाते तो एक व्यक्ति पर कितना बोझ पड़ता है। जैसे—

   (क) अरुणा आठ घण्टे दफतर में काम करती है। सारे दिन में वे तीन घण्टे खाना बनाने पर व्यय करती है। वह एक दिन में कितने घंटे काम करती है?

(ख) अंशुला के माता-पिता एक घंटा पैंतालीस मिनट मिलजुल कर घर में काम करते हैं। उनमें अंशुला पैंतालीस मिनट अपने सवाल हल करना सीखती हैं। उसे माता-पिता को कितना समय घर पर काम करने में खर्च करना पड़ता है?

2. जिम्मेवारियों को बांटने से किस प्रकार पारिवारिक संसाधन बढ़ जाते हैं। बालकों को इसका विवेचन किया जा सकता है, कैसे? जैसे –

(क) रशीदा की माँ रु० 80/- प्रति माह झाडू पोचे के लिए मौसमी को देती है। और फिर उसी को रु. 20/- प्रतिमाह कपडों पर स्त्री करने के देती है। रशीदा रु० 20/- महीना बचाना चाहती है। वह क्या करे?

(ख) एक तालिका बनाइये जिसमें बताइये कि प्रतिदिन परिवार का प्रत्येक सदस्य क्या काम करता है और कितने समय तक करता है। फिर पता कीजिए कि कौन ज्यादा काम करता है और कितना अधिक।

3. शिक्षक महिलाओं का जीवन के सब क्षेत्रों में बढ़ता हुआ योगदान निम्नाकित प्रश्नों के द्वारा सुझा सकते है।

(क) फ़िरोज एक विक्रेता है। उनकी बेटी सुषमा ने सोमवार को उनकी मदद की और आमदनी रु० 982/- हुई। सुषमा के भाई यतीन ने उनकी बुध को सहायता की और आमदनी रु० 879/- हुई। बच्चों की सहायता से उनकी इन दो दिनों में कितनी आय हुई।

(ख) एक गाड़ियों की वर्कशाप में 80 पुरुष और 31 महिला कार्य-कर्मी हैं। यदि मैनेजर एक महिला और एक पुरुष की टीम बनाना चाहे तो कितने पुरूष टीम बनाने से रह जायेंगे?

(ग) रामू और बिमला की एक बिसाती की दुकान है। बिमला 90037 मोती खरीदती है और उनमें से रामू 90 मोती वाली मालाएं बनाता है। हर माला में एक पैन्डेन्ट होगा। कितने पैन्डेन्ट खरीदने होंगे रामू के पास कितने मोती बचेंगे?

(घ) पुष्पा ने स्कूल से रिटायर होने पर अपने दोनों बेटों और बेटी को बराबर-बराबर 9325/- रु० दिये। 5000/- रुपये उन्होंने निश्चित समय के लिए अपने नाम से जमा कर दिए। पुष्पा को रिटायर होने के समय कुछ कितने रूपये मिले थे?

कक्षा 3

जीवन के हर क्षेत्र में लड़कियों की बढ़ती हुई साझेदारी को शिक्षक निम्नलिखित प्रकार के उदाहरणों से उजागर कर सकते हैं :

(क) स्कूल में लडकों ने रु० 2,800/-- और लड़कियों ने रु. 3,210/-- "संचायिका" (लघु बचत) के लिए जमा किए। लड़कियों के योगदान के बराबर पहुंचने के लिए लड़कों को कितनी राशि और जमा करना है।

(ख) रमेश और कैथरीन अपनी मां की मदद पर प्रतिदिन ढाई घण्टे खर्च करते हैं। यदि महीना 28 दिन का हो तो दोनों ने मिलकर कितने घण्टे मां की मदद की?

(ग) कक्षा में 12 बालिकाएं और 24 बालक हैं शिक्षक कुल 9 खिलाड़ियों की कबड्डी टीम बनाना चाहते हैं जिनमें पांच लडकें और चार लड़कियां हों। कितनी टीम बनेगी, कितने विद्यार्थी बच जाएंगे?

(घ) अल्पना ने 12/- के भाव से सूरजकुण्ड मेले से पांच खिलौने हाथी खरीदे। वह प्रत्येक को रु० 23 और 50 पैसे में बेचती है। वह कितना लाभ प्राप्त करती है?

कक्षा 4

मुद्रा, मौटर के माप, पूर्णांक :

5. महिलाओं की गृहस्थी प्रबन्धक भूमिका को उजागर करने के लिए और संकट उन्मूलन में उनके योगदान को समझाने के लिए शिक्षक बालकों के साथ वास्तविकता की रचना करे फिर निराकारी स्थितियों के प्रश्न हल कराएं। भारतीय मुद्रा मीटर माप और पूर्णांक का प्रयोग पाठ्यक्रम के अनुसार चलेगा। कुछ उदाहरणार्थ प्रश्नावली नीचे दी गई है :

(क) नीलम को प्रति माह हाथ खर्च के लिए रु. 2000/- मिलते हैं। रेखा (10 वर्ष) और टिंकू (5 वर्ष) उसके दो बच्चे हैं। वह रू. 1200/- खाने पर व्यय करती है तो कपडों और शिक्षा और अन्य खर्चों के लिए क्या बचता है।

(ख) दीपिका ने माह के आरम्भ में 2 किलो और 500 ग्राम घी खरीदा। महीने के अंत में उसके पास 125 ग्राम बचा। महीने में उसने कितना खर्च किया।

(ग) 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की महिलाओं की संख्या 318,244,919 थी जिसमें से केवल 78,942,915 साक्षर थीं। वर्ष 1981 में निरक्षर महिलाओं की संख्या बताइये?

कक्षा 5

अंक तथा अंकीय व्यवस्था :

बालिका की आत्मछवि के विकास पर महिला निरक्षरता का बहुत बुरा प्रभाव पडता है। स्कूल में पढ़ने वाले बालकों को यह अनुमान लगाना कठिन होता है कि माताओं के निरक्षर होने से बालक-बालिकाओं का विकास कितना अवरुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार परिवार की आर्थिक व्यवस्था पर जल्दी विवाह, दहेज और मृत्यु पर विघटनकारी अपव्यय का भी असर पड़ता हैं। नीचे बनी जैसी तालिकाएं समस्याओं को उजागर करने में सहायक होती है। इन समस्याओं को सुलझाने के समाधान खोज-बीन वाले प्रश्नों की सहायता से ढुंढवाए जाएं जिससे वस्तुस्थिति से निर्गुण तथ्यों की तरफ, मस्तिष्क विकसित हो सके और वह भी इस परिस्थिति में जिसमें परिवर्तन के लिए साझेदारी हो जिसमें सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन संभव हो।

(अ) निम्नांकित तालिका में 15-24 आयु वर्ग के 1961 और 1971 के साक्षर पुरुष और महिला संख्या का निरूपण है।

	1961		1971	
क्षेत्र	साक्षर लोगों की संख्या		साक्षर लोगों की संख्या	
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
देहाती	12515727	4142795	19492761	8316906
शहरी	6221799	3451150	9585889	6255373
कुल	18737526	7593945	29078650	14572279

1. 1961 मे पूरे साक्षर पुरुषों की सख्या
2. 1961 में पूरे साक्षर महिला की संख्या
3. 1971 में पूरे साक्षर पुरुषों की संख्या
4. 1971 में पूरे साक्षर महिलाओं की संख्या
5. 1961 में भारत में कुल साक्षरों की संख्या
6. 1971 में भारत में कुल साक्षरों की संख्या
7. 1971 में 1961 की अपेक्षा कितने अधिक देहाती साक्षर थे
8. 1971 में 1961 की अपेक्षा कितने अधिक शहरी साक्षर थे
9. 1961 में महिलाओं की अपेक्षा कितने पुरुष साक्षर थे
10. 1971 में महिलाओं की अपेक्षा कितने अधिक पुरुष साक्षर थे
11. 1971 में 1961 की अपेक्षा कुल कितने महिला-पुरुष साक्षर थे

(ब) 1991 में कुल महिला जनसख्या 406518417 थी जिसमें से केवल 131767519 महिलायें साक्षर थीं। निरक्षर महिलाओं की संख्या बताइये?

(स) यदि लक्ष्मी एक घंटा शाम को और 1/2 घंटा सुबह पढ़ाई में गृह कार्य करती है तो बताओं कि एक सप्ताह में वह कितना समय घर पर पढ़ती है?

(द) एक कक्षा की पिकनिक में 10 लड़कियां और 12 लडके थे। हर छात्र को 50 ग्राम मिठाइयां दी गईं। बताइये कुल कितनी मिठाई बांटी गई?

(क) रेशमा के माता-पिता 2,550 रु. प्रतिमाह कमाते हैं और अलग-अलग मदों पर निम्नांकित ब्यौरे से खर्चते हैं :

शिक्षा	————	10%	————	रू.
कपड़े	————	15%	————	रू.
भोजन	————	30%	————	रू.
घर कर किराया	————	12%	————	रू.
अन्य	————	16%	————	रू.

(1) प्रतिमाह बचत प्रतिशत बताइये

(2) प्रत्येक मद का प्रतिशत निकालिये

(ख) सुषमा 10 महीने में रु. 750/- की सिलाई मशीन खरीदना चाहती है। उसकी मासिक आय केवल रु. 100/- है। इसकी आय का कितना प्रतिशत वह बचाएं कि अपनी अभिलाषा पूरी कर सके।

(ग) स्पोर्टस डे के लिए प्रत्येक बालिका को 0.75 मीटर रिबन चाहिए। 45 लड़कियों को कुल कितना रिबन चाहिए?

(घ) आशा ने एक छोटी वर्कशॉप स्थापित करने के लिए रू. 5,000/-उधार लिए। उसको प्रति वर्ष 9 पतिशत ब्याज देना था। यदि वह सारा पैसा पाँच वर्ष में वापस करने का निर्णय करे तो उसको कितना नकद धन चाहिए?

7. शिक्षकों को मालूम है कि महिलाओं का काम करने का समय पुरुषों के काम से अधिक होता है क्योंकि वह प्रत्येक दिन सबसे पहले ही से काम शुरू कर देती हैं और रात को जब सब परिवार आराम करने लगता है तब देर तक काम करती हैं। इस मेहनती जीवन के प्रति निष्ठा जगाने के लिए "समय-बजट" विधि अपनाई जाती है। शिक्षक विद्यार्थियों से एक दिन का कार्यक्रम निम्नांकित विधि से बनवा सकते हैं।

(क)

दिन समय	क्रियाकलाप	व्यय किया गया समय	कौन करता है	दूसरे लोग क्यों नहीं करते

विद्यार्थियों की सूची बनाकर प्रश्न किए जा सकते हैं।

(ख) सरोजनी ने 19500 ईंटे खरीदीं। एक कमरा बनवाने में उसने 6375 ईंटें लगाई कितनी बची? उनका वह क्या करे?

(ग) प्रेमलता ने अपनी दो बेटियों और एक बेटे के लिए रु. 48,000/- छोड़े। सबको बराबर बांटा जाएगा तो प्रत्येक का हिस्सा कितना होगा? यदि प्रेमलता को बेटा न होता तो दोनों बेटियों का हिस्सा क्या होता

(घ) घरेलू अपव्यय को समाप्त करके सुमन की मां रु. 75/- प्रति माह बचाती है। उन्होंने 9 महीने में कितना बचाया? अल्प बचत का महत्व बताए। जो माताओं का चमत्कार है। यह तथ्य शिक्षक बालकों को समझा सकते हैं।

(ङ.) पारिवारिक कार्यों में हाथ बंटाने की कुछ ऐसी स्थितियां बनाइये जिसमें घटाना पड़े। इस तरह की प्रश्नावली जुटाने से बालकों में सृजनात्मक बुद्धि का विकास होता है विशेषकर जब जब वह दिन-प्रति-दिन के जीवन क्रम से संबद्ध हो।

(च) एक ऐसी तालिका बनाइये जिसमें प्रतिदिन आपके परिवार का प्रत्येक सदस्य कितने घण्टे काम करता है अंकित हो। फिर पता कीजिए कि कौन अधिक काम करता है और कितने घण्टे अधिक ?

कोई तालिका का प्रतिरूप न दें। बालक ग्रुप में बैठकर अपने-अपने प्रकार से तालिकाएं निर्मित करें।

8. समिधा और कृतिका एक पैट्रोल पम्प पर काम करती हैं। एक घण्टे में उनकी बिक्री :

खरीदार 1 = 10 लिटर
खरीदार 2 = 12 लिटर
खरीदार 3 = 15 लिटर
खरीदार 4 = 23 लिटर

यदि पैट्रोल रु. 15.60 पैसे प्रति लिटर बिक रहा है तो कुल बिक्री कितने रुपये की हुई ?

पर्यावरण अध्ययन

पर्यावरण के आमतौर पर दो मुख्य पक्ष हैं – प्रकृति और मानव। यह वर्गीकरण पर्यावरण के अध्ययन के पाठ्यक्रम के सामाजिक अध्ययन तथा विज्ञान की समन्वित इकाई के रूप में परिलक्षित होता है। पर्यावरण अध्यन का प्रमुख उद्देश्य यह है कि बच्चे सम्पूर्ण पर्यावरण को एक समन्वित इकाई के रूप में देखें। वे इसे मानव के परस्पर संबंध के कार्य की उपलब्धि, प्राकृतिक पर्यावरण तथा सामाजिक वस्तु के रूप में समझें। वे यह भी समझ सकें कि इसके विकास में उनकी साझेदारी आवश्यक भी है और एक कर्त्तव्य भी। बच्चों को समझाना है उनके शरीर की बनावट, वैयक्तिक स्वास्थ्य रक्षा, परिवार, उसका स्वभाव व आकृति और बालक के प्रति कर्तव्य, पालतू जानवरों के प्रति प्रेम, स्कूल, गांव, पंचायत, पौधे और जीव जन्तु, शरीर, आहार-स्वास्थ्य और सफाई, धरती, मिट्टी, पानी, वायु, उर्जा के स्रोत – ईंधन, गोबर और गैस। इसलिए शिक्षक को यह प्रयास करना होगा कि लड़के-लड़कियां अपने शारीरिक और सामाजिक कल्याण के प्रति सचेत हों जैसे जीवित रहने का अधिकार, विचार प्रकट करने का अधिकार, पारस्परिक संपर्क रखने की आजादी और एक दूसरे की मर्यादा निभाने का अधिकार।

हमारा शरीर

1. शारीरिक गुण तथा असमानताएं उत्कृष्टता तथा निकृष्टता की ओर इंगित नहीं करतीं।
2. आकार और वजन में असमानताएं वैयक्तित्व होती हैं और उनके कारक है आयु, लिंग,

वातावरण और अनुवंशिता। रंग व्यक्ति-व्यक्ति मे अलग-अलग होता है और उसे वातावरण बदलता है। यह लक्षण किसी को ऊंचा और नीचा नहीं बनाता इन विभिन्नताओं से वैयक्तिकता प्रकट होती है। इससे अलग-अलग कार्य अलग-अलग क्षमता और कार्यक्षमता को अलग-अलग व्यक्तियों की ताकत पर आधारित होते बताएं।

3 लडके और लड़कियों में मांसपेशियों और हड्डियों के ढाचे में अंतर होता है इससे केवल अलग-अलग कामों को करने की विशेष क्षमता मिलती है। एक घर को चलाने के लिए सामूहिक क्षमता की जरूरत होती है न कि वैयक्तिक। एक अंतर के कारण वे कोई विशेष काम अधिक कुशलतापूर्वक कर सकते है। लेकिन सब ही काम बराबर महत्वपूर्ण होते हैं।

4. किन्तु दोनों की लिंग के व्यक्तियों के आवश्यक तंत्रो मे एक समरूपता होती है जैसे श्वास प्रक्रिया, आहार, रुधिर संचालन, स्नायुतंत्र इत्यादि।

हमारा शरीर–आहार और स्वास्थ्य

1. हड्डियों और मांसपेशियो के ढांचों में महिला और पुरुषों में एकता होती है। इसलिए आवश्यक आहार की दरकार भी एक सी ही होती है जिससे नर और नारी शरीर का विकास होता है।
2. लड़कियों और लडकों को एक से खेल खेलने के बराबर अवसर मिलने चाहिए।
3. परिवार के सदस्यों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप भोजन मिलना चाहिए।
4. उपलब्ध आहार सदस्यों की वैयक्तिक आवश्यकता के अनुसार बांटा जाना चाहिए। महिलाओं को अपने हिस्से के भोजन से वंचित बालिकाओं, बढ़वार वाले बालक, बीमारो का आहार उपलब्ध सामग्री में से विशेष होने चाहिए।

भूरक्षण कैसे रोकें

1. अधिक चरवाहों को अवसर देना और बिना समझे पेडों को काट गिराना जैसी स्थितियों से उत्पन्न खतरे को उजागर करना चाहिए। ऐसे कामों के लिए पुरुष और महिलाओं को इस खतरे से परिचित होना चाहिए और वातावरण को सुरक्षित करने के उपाय दोनों

को ही सोचने चाहिए।

2. बालकों को एक साझे भूतल पर पौध उगाने और पशु पालने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

3. बालकों को कागज बनाने की विधि से सचेत होना चाहिए जिससे वे उसकी बर्बादी न होने दें।

परिवार (ढांचा और सदस्यों के कार्य)

1. प्रमुख कार्यों में नर-नारी में एक सी ही स्थिति होती है।

2. मिला-जुला दायित्व और बराबरी भागीदारी से एक सुखी परिवार का निर्माण होता है।

3. एक परिवार को एक इकाई के रूप में प्रदर्शित किया जाना चाहिए जिसमें तरह तरह के काम अलग-अलग लोग करते रहते हैं।

4. पुरुषों और महिलाओं की बराबरी की कार्य-कुशलता को उजागर करना चाहिए।

5. यह बात स्पष्टीकरण चाहती है कि ऊपर के कार्य विभाजन की प्रक्रिया कभी उलट पलट भी जाती है और पुरुष घर पर काम करते हैं और महिलाएं हाट-बाजार, खेत पर, फैक्ट्री और दफ्तर में काम। माँ तथा बहिने जो काम घर पर करती हैं उसके बराबर महत्त्व दिया जाना चाहिए उसी प्रकार जैसे उन कामों को जो पिता और बेटे बाहर करते हैं। भूमिकाएं आवश्यकता पड़ने पर बदलती रहती हैं। महिलाओं को अपने को कम महत्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए क्योंकि वे घर का काम करती हैं। पुरुषों और लड़कों को घर में काम करना मर्यादा इतर नहीं लगना चाहिए।

6. यह समझते हुए कि घर एक सामूहिक जिम्मेदारी है यह भी सोचना चाहिए कि सब काम जो किए जाते हैं बराबर महत्त्व के काम हैं।

7. कपड़े धोना, बर्तन साफ करना लड़के-लड़कियों को मिलकर करना चाहिए। सफाई करना सिर्फ महिलाओं का काम नहीं। सफाई के काम घर पर महिलाएं करती हैं परन्तु रेस्तरां, सडकों, बगीचों में और सार्वजनिक स्थलों पर पुरुष सफाई करते हैं। भूमिकाएं अवसर के अनुसार बदल जाती हैं।

8. पुरुष और महिलाओं दोनो को ही बराबरी से बगीचे और पशुओं की देखभाल करनी चाहिए।

9. परिवार और समुदाय में सबकी यह जिम्मेदारी है कि छूत की बीमारियों का नियंत्रण हो और उनके बढ़ने पर रोक लगाई जाए।

10. अक्सर पुरुष और महिलाएं छूत की बीमारियों के बारे में कुछ अंधविश्वास कर लेते हैं। वैज्ञानिक तथ्यों को समझा कर इस मूर्खता को दूर करना चाहिए। माता–पिता को उड़लगनी बीमारियों के अभिशाप को समझना चाहिए।

11. शिक्षक तस्वीरों और फिल्मों की सहायता से पुरुष और महिलाओं को एक ही प्रकार के काम करते दिखा सकते हैं।

12. शिक्षक बालकों से प्रश्न कर सकते हैं कि परिवार के सदस्य क्या-क्या करते हैं। शिक्षक छोटे एकल परिवार और बड़े संयुक्त परिवारों से उदाहरण लेकर परिवार के सदस्यों द्वारा किए गए कामों पर प्रकाश डाल सकते हैं।

13. बालक-बालिकाओं को जीवन के हर क्षेत्र में बराबर अवसर मिलना चाहिए और स्कूल में दोनों को सब काम करने के लिए लिंगाधारित पूर्वाग्रह से मुक्त करना चाहिए ठीक वैसे ही जैसे पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को।

14. कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि लड़कियों को खेलकूद में भाग न देकर संगीत और नृत्य के कार्यक्रमों में हिस्सा दिया जाता है। कभी-कभी लड़कियां भी कुछ प्रकार के खेलों और व्यायामों में भाग लेने से हिचकिचाती है। इस प्रकार के पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए बालिकाओं को विशेष प्रकार से आकर्षित किया जाना चाहिए। खेल के मैदान में लड़के-लड़कियों की मिली हुई टीम को बुलाना चाहिए। कक्षा में लड़के-लड़कियों को मिलाकर बैठाना चाहिए। स्टोव, गैस, बिजली के यंत्र और अन्य घरेलू यन्त्रों को बर्तन में सावधानी का पाठ सब बालकों को शिक्षकों द्वारा दिया जाना चाहिए।

15. शिक्षकों को चाहिए कि वे सब काम सबसे करवाएं जैसे पानी का गिलास लाना या कक्षा को साफ रखना।

स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा

स्वास्थ्य हर मनुष्य के जीवन की मूलभूत सम्पत्ति है। प्रत्येक बालक को स्वस्थ जीवन का अधिकार है। स्कूल में प्रायः यह देखा जाता है कि बालिकाओं को खेल-कूद में भाग लेने को तनिक भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता। ऊपर से घर के क्रियाकलापों की साझेदारी बालिका में गलत मुद्रा की आदत डाल देती है जिससे अस्वस्थ ढांचा पनपता है। स्वस्थ होने का मतलब केवल यह नहीं कि हम बीमारी से दूर हों, बल्कि तात्पर्य यह है कि बालक-बालिकाएं शारीरिक शिक्षा द्वारा बच्चे का शरीर, उसके कार्यों, भोजन की आवश्यकता, आराम, व्यायाम, निद्रा, उचित आसन, व्यक्तिगत तथा परिवेश की स्वच्छता एवं पोषक भोजन के अभाव में होने वाले दुष्परिणामों के विषय में सचेत हों। यह सब तथ्य शिक्षकों को बालकों द्वारा माता-पिता तक पहुंचाना एक प्रक्रिया के रूप में अपनाना होगा। तब ही न परिवार का वातावरण सुधरेगा, विशेषकर बालिका के लाभार्थ।

स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा संबंधी क्रियाकलापों को संयोजित करते समय बच्चों में यह भाव उत्पन्न करना आवश्यक है कि पुरुष तथा नारी एक दूसरे के पूरक हैं और इस ओर उत्कृष्टता या निष्कृष्टता के विचार गलत वह व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट होता है तथा उसमें कुछ खास गुण होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता का पूरा उपयोग करना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा सिर्फ मजबूत शरीर बनाने की विधि ही नहीं बताती बल्कि साथ-साथ होड़ करना, मिलजुल कर काम करना, बर्दाश्त की सकत होना, कठिन मेहनत करना, खिलाड़ी, प्रवृत्ति को भी उभारती है। बालिकाओं में स्वस्थ आत्म छवि उभारने के लिए भी खेलों में भागीदारी आवश्यक है। यह बात बताना आवश्यक है कि लड़के-लड़कियों में कोई ऐसा अन्तर नही होता जिससे उनमें एक सी योग्यता और दक्षता उत्पन्न न की जा सके। शिक्षकों के लाभार्थ कुछ बिन्दु नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

1. जहां तक सम्भव हो सब लड़के-लड़कियों को खेलों और शारीरिक व्यायाम में साथ-साथ भाग लेने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

2. शिक्षक सामान्य खेल जैसे खो–खो, कबड्डी और नन्हें मुन्नों के लिए निम्नांकित क्रियाकलापों के लिए मिली-जुली बन्दियां बनाएं।

   (क) **कोकला छुपाकीः** यह खेल बच्चों को एक गोले में बैठाकर खिलाया जाता है। एक बच्चा दुपट्टा लेकर गोले के बाहर घूमता है और किसी भी बालक/बालिका

के पीछे छुपा देता है। यह बात पता करने पर इस बच्चे को दुपट्टा उठाकर उस पर डालने वाले को पकडना पड़ता है। इस खेल से चेतना, फुर्ती, रफ्तार इत्यादि का विकास होता है। और सब बच्चे आपस मे हिल--मिल जाते हैं व बातचीत करते रहते हैं।

(ख) **कीड़ी-काड़ा :** इस खेल को बच्चे धरती पर चौकड़े बनाकर इस प्रकार उस पर चलने का प्रयास करते हैं कि कोई भी रेख पैरों से न छुए। इससे बच्चे में गिनने, निशाना साधने, संतुलन रखने और रेखागणित की आकृतियाँ बनाने का कौशल पनपता है।

(ग) **अड्डी चरप्पा :** इस खेल मे दो बच्चे एक दूसरे का आमना-सामना करके बैठते हैं। उनके पैर उनके सामने पसारे होते हैं उनके तलवें एक दूसरे को छूते रहते हैं। फिर वे एक पैर पर दूसरा पैर रख लेते हैं। और शेष खिलाड़ी उठे हुए पांवों पर से कूदते हैं। इस खेल से मनोक्रियान्वयन विकसित होता है जिससे बच्चे जो सोचते है वह कर सकते हैं संतुलन तथा दक्षता उत्पन्न होती है।

(घ) **सात ठीकरी :** टूटे घड़े के सात टुकड़ों को इस तरह से एक दूसरे के ऊपर रखा जाता है कि एक ढेर बन जाए। टीमें इस ढेरी को बीच में रखकर आमने-सामने खडी हो जाती है। एक टीम का सदस्य गेंद से निशाना लगाकर उस ढेरी को गिराता है। अब दूसरी टीम के लोग उसे फिर जोड़ने की कोशिश करते हैं जिसे पहली टीम क़े दस्य विध्वंस करने में लगे रहते हैं। इस प्रकार यह खेल चलता रहता है। इसे पिट्ठू भी कहते हैं। इस खेल से बच्चों में सहयोग की भावना का विकास होता है तथा निशाना लगाना भी सीखते हैं।

(ड.) **खो-खो :** बच्चे दो टीमा मे बट जाते हैं। एक टीम के बच्चे एक लाईन मे एक दूसरे की विपरीत दिशा में बैठ जाते हैं। एक आयताकार बना लिया जाता है। खिलाड़ी इसके अंदर बैठते हैं। उसी टीम का एक खिलाडी पकड़ने वाला बनता है। दूसरी टीम बाहर रहती है जो एक-एक खिलाडी अंदर भेजती रहती है जिसे पकड़ाई देने से बचना पडता है। पकड़ने वाला अपनी टीम में से किसी

को भी उसकी जगह से उठा सकता है। जिससे वह अंदर आए विपक्षी को पकड सके। इस खेल से कुशल बातचीत करना और कर्मठता तथा नेतृत्व की भावना पनपती है।

(च) **कबड्डी :** यह भी एक सुप्रचलित स्थानीय खेल है। लड़के-लड़कियों की बराबर संख्या वाली दो टीमे बनाई जाती हैं। एक आयताकार के अंदर यह खेला जाता है। बीच में एक रेखा खीची जाती है। इस रेखा के आर-पार दोनों टीमें खडी होती हैं। एक खिलाड़ी अपने क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे जाता है। दूसरी टीम के लोग उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं। खिलाड़ी बचकर भागता है और दूसरी टीम के किसी भी खिलाडी को हाथ लगाकर अपने क्षेत्र में आ जाता है। जहां से फिर दूसरा खिलाडी जाता है और इसी प्रकार खेल चलता है फिर क्रम बदल जाता है। भागने वाला कबड्डी-कबड्डी कह कर, उछल–उछल कर, नीचे झुककर, सांस रोककर टिपीकल तरीके से यह खेल खेलता है। शिक्षक बालक-बालिकाओं को निम्नांकित क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

(1) **रंगोली :** होली, दीपावली, ओनम, पोगल के अवसर पर शिक्षक कक्षा के बाहर बनवाएंगे। चावल का आटा, हल्दी पाऊडर, खड़िया और बुरादे से रंगोली बनाई जाती है सभी बच्चो को रंगोली बनाने मे भाग लेना चाहिए स्कूल में प्रतियोगिता होनी चाहिए जिसमें लडकों को भाग लेने का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। रगोली रंगों का सम्मिश्रण और चित्रकला को पनपाती है। शिक्षक बच्चों को प्राकृतिक प्रदत्त रंगों के स्रोत के बारे में प्रोत्साहित करेंगे जैसे हर सिंगार, टेसू, गुड़हल इत्यादि के फूल। बच्चों को आलू के टुकडों और भिन्डी के टुकड़ों से आकृति बनाना भी सिखाया जा सकता है।

(2) **भितकारी :** यह वह विधि है जिससे लोक गाथाओं और लोक परम्परा के आधार पर दीवारों पर चित्र अंकित किए जाते हैं। यह त्यौहारों पर अवश्य बनाए जाते हैं। शिक्षक को इन चित्रों में बालकों व महिलाओं पर अत्याचार होते हुए दिखाने की प्रवृति को निष्कृष्ट बताना चाहिए। वैसे इस क्रियाकलाप द्वारा बालकों में अपने मन से कुछ भी बना डालने की क्षमता पनपती है। बनी हुई तस्वीरों में महिला और पुरुष दोनों का ही निरूपण होना चाहिए।

(3) **कठपुतली खेल :-** इसमें कठपुतली बनाना और उनके द्वारा कथानकों का प्रस्तुतीकरण क्रियान्वित होता है। शिक्षक बालकों को कठपुतली बनाना सिखाएं। कथानक ऐसे होना चाहिए जैसे छोटा परिवार, बालिका की बराबर से देखभाल, महिला मंच इत्यादि। वह खेल बच्चों में हाथ कौशल, वाणी नियंत्रण और विचारों को तमाशे में बदलने की क्षमता पनपाता है।

(4) **लोक गीत :** बालकों की अपनी भाषा में गाए जाने वाले यह गीत उनमें जिज्ञासा कौतुहल और कवित्व का सृजन करते हैं। महिलाओं के कार्यों की प्रशंसा में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें बालकों में प्रसारित करना चाहिए वह गाने जो महिलाओं और बालिकाओं को हीन दशा प्रस्तुत करते है नहीं सिखाए जाने चाहिए।

(5) **माटी मूरत :** गीली मिट्टी से बनाने की विधि जिसमें हर बच्चे को एक गीली माटी का लौंदा दिया जाता है जिससे वह अपनी इच्छानुसार आकृति बनाता है। यह बहुत अधिक सृजनात्मक क्रियाकलाप है। निर्जीव माटी से बालक सजीव चीजों की आकृति बनाते हैं जो उनके विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। आत्मविश्वास कुछ बना डालने का जोश, निर्णय लेने की क्षमता और हस्त कौशल से इसी मूर्तिनिर्माण से पनपता है।

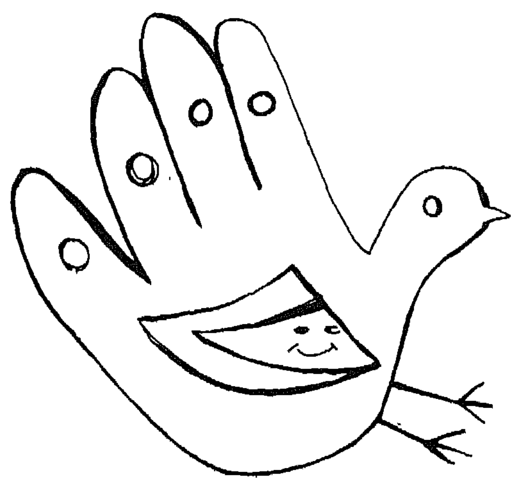
(6) **कोजाल बनाना :** इस क्रियाकलाप से बालकों को चार्ट पेपर पर अंकन करना सिखाया जाता है। बेकार कागज, फालतू चीजें,और रंगबिरंगे कपड़े, टूटे बर्तन हैं। अगर सांस टूट जाए तो वह मारा जाता है। इससे बालकों में फुर्ती, तेजी आत्मनियंत्रण और टीम भावना पनपती है।

कला शिक्षा

प्राचीन काल से कला ही संप्रेक्षण तथा अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न आंतरिक गुणों को व्यक्त करने तथा अपनी सृजनात्मक मांग पूरी करने के लिए कला एक प्रक्रिया है। अतः बिना लिंग भेद किए कला-शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यह आत्मविश्वास की भावना भी पैदा करती है। कला-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि छात्र अपने वातावरण में अच्छी और सुन्दर वस्तुओं को देख समझ सकें और सामान्य कलाएं तथा संगीत, नृत्य तथा नाटिकाओं में रुचि ले सके।

अपेक्षित उपलब्धि

1. शिक्षक बच्चों में अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में कला प्रशिक्षण प्रस्तुत करना सीखेंगे तथा बालकों को सही प्रावधान, रंग की सहायता से आकृतियां बनाने में सहायता करेंगे।
2. बिना किसी भेदभाव के बालक-बालिकाओं में प्रत्येक सुन्दर वस्तु या आकृति को सराहने की दक्षता पनपानी होगी अतः इस प्रवृत्ति के प्रति शिक्षक जागरूक रहेंगे।
3. बालक-बालिकाओं की कला प्रवृत्ति की सराहना करने की आदत डालनी पडेगी।



पॉच वर्ष के बच्चे द्वारा चित्र

कार्यानुभव

कार्यानुभव को संप्रयोजन और अर्थसहित शारीरिक कार्य समझते हुए उन वस्तुओं के उत्पादन में सहायक माना जाता है जो सुगठित और उत्तरोत्तर उन्नत कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए सिखाया जाता है। सीखने वालों को हस्तकला के प्रति आदर, आत्मविश्वास सहयोग, सहायक प्रवृत्ति, कार्य कौशल अवश्य पनपता है। इससे बालक-बालिकाओं में स्वस्थ आत्म संकल्पना भी जागृत होती है।

अपेक्षित उपलब्धि

1. शिक्षक बालक-बालिकाओं को उनके पास जो कुछ है उससे कुछ सिखाएंगे।

2. यह बताएंगे कि बालक-बालिका दोनों ही सारे काम बराबरी से कर सकते है। और न तो कोई केवल महिलाओं के क्षेत्र हैं और न ही केवल पुरुषों के।

3 सभी उपक्रमों का उपयोग बिना भेदभाव के सिखाएंगे।

कांच चूड़ियां इत्यादि दी जाती है। गोंद से या फेवीकोल से बालक आकृतियां संकलित करके बनाते है और उन्हें चिपकाते चलते हैं। रगों को जोड़ और उनकी सहायता से अपने विचारों को बांटना इस क्रियाकलाप की देन है। इसस बेकार चीजो का पुनः उद्धार करने की आदत भी पनपती है।

खेल-खेल में शिक्षकों को जुटाने की विधि

खेल 1 : सप्ताह में एक दिन सफाई और सजावट का दिन मनाया जाए। लडके और लड़कियों को सब कामों में बराबरी से लगाया जाए। कमरे की धूल झाड़ी जाए, फूल पत्ते चुनकर सजाए जाएं। बालकों से पोस्टर, कोलाज और दीवार पर टांगने के लिए कुछ बनवाया जाए।

खेल 2 : आगन्तुक का स्वागत
वैकल्पिक आगन्तुक विद्यालय और घर मे हो। लडके और लडकियां उनके स्वागत के लिए कुछ बनाएं और उन्हें दे। लडके और लडकियों की मिली हुई टीम अतिथि को फूल और माला दे फिर स्वागत और धन्यवाद भाषण दे। सामान्यतः यह काम लडकियों को ही सौंपे जाते है।

खेल 3 : पंचायत/संसद (कक्षा 4 और 5) वैकल्पिक पंचायत या संसद का अधिवेशन बालक-बालिकाओं से संचालित कराएं। बालिकाएं सरपंच की भूमिका निभाए और सांसद, प्रधानमंत्री तथा मंत्री की भी।

खेल 4 : कक्षा में निर्वाचन गठन बठाइये। बराबर संख्या में लड़के और लडकियां उम्मीदवार हो कक्षा में 5-6 मॉनीटर चुने जाए जो अलग-अलग क्रियाकलापों के लिए उत्तरदायी हो जैसे –

1. कक्षा की देखभाल

2. अनुशासन
3. शारीरिक सफाई का परीक्षण
4. शिक्षक के लिए गृह कार्य जमा करना

खेल 5 : क्रीड़ा स्थल मे क्रिया कलाप
बालक-बालिकाओं को खेलकूद, व्यायाम, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने को प्रोत्साहित करें। अक्सर लड़कियां चुपचाप देखती रहती हैं। खास तौर से स्पोर्ट्स में। लड़के नृत्य कार्यक्रम में हिस्सा नहीं लेते और इसे लड़कियों का हिस्सा समझा जाता है।

खेल 6 : पिकनिक-छोटे लड़कों और लड़कियों को साथ-साथ खाना खिलाएं। खाना बांट कर खाएं और मिल जुलकर टिफिन बॉक्स साफ करें। लड़के-लड़कियों को मिल जुलकर खाना पकाने और पानी लाने, खाना परोसने बर्तन साफ करने का अवसर दिया जाए।

सामुदायिक नेता की भूमिका में शिक्षक

कम आयु में विवाह, दहेज, महिलाओं पर अत्याचार और महिलाओं के निरादर जैसी प्रथाओं को शिक्षक समाप्त कराएं।

समुदाय को निम्नांकित बातों को समझाएं:-

1. लड़के-लड़कियों को समान शिक्षा चाहिए



2. दोनों को बराबर खाना मिलना चाहिए
3. दोनों को एक सी स्वास्थ्य सेवा और दवा मिलनी चाहिए
4. दोनों को एक सी ही जिम्मेदारियां सौंपी जा सकती है
5. दोनों को एक सी ही आजादी मिलनी चाहिए
6. दोनों को खेलने का बराबर समय मिलना चाहिए
7. दोनों ही सारे काम बराबर कौशल से कर सकते हैं
8. दोनों एक से धंधे कर सकते हैं
9. दोनों के पास एक सी बुद्धि और क्षमता होती है
10. स्त्री और पुरुष दोनों को ही एक समान काम के लिए समान वेतन मिलना चाहिए
11. सारे निर्णय पति-पत्नी को साथ मिलकर लेने चाहिए
12. परिवार के सारे सदस्यों को घर के काम काज मिलकर करने चाहिए
13. परिवार की सम्पत्ति पति-पत्नी के नाम से ही रजिस्टर होनी चाहिए
14. लड़कियों का सम्पत्ति में बराबर कानूनी अधिकार लागू होना चाहिए।

सामुदायिक संघटन

- शिक्षक सामूहिक ढंग से सोचे जिससे वह एक ऐसी कार्य योजना गठित कर सके जिससे एक सामूहिक चेतना जागे। इस चेतना से समुदाय बालक बालिकाओं का नामांकन और विद्यालय में आते रहना जैसे महत्वपूर्ण कार्य में शिक्षकों के साथ हाथ से हाथ मिलाकर जुट जाएं।

- स्थान विशेष में दो या तीन शिक्षक एक ग्रुप बनाकर माता-पिता का सहयोग और सामुदायिक सहायता के लिए वार्तालाप करें।

- शिक्षक स्कूली कार्यक्रमों को अच्छा बनाने के लिए सामुदायिक सहयोग के आधार पर प्रवीण लोगों की सहयता ले।

- शिक्षक 50 प्रतिशत महिलाओं को शामिल करते हुए ग्राम शिक्षा समिति का निमार्ण करवाएं और यह समिति प्रारम्भिक शिक्षकों को इस प्रकार नियोजित और नियंत्रित करे जिससे बालिकाओं और अन्य अपेक्षित वर्गों के बालकों को शामिल किया जा सके।

- शिक्षक ऐसे मंच भी गठित करे जहां परिवार तथा समुदाय में लिंगाधारित सामाजिक तथा सांस्कृतिक भूमिका में भेदभाव पर चर्चा हो सके। यह भी तथ्य उभारा जाए कि बालिका की आत्म छवि इसी भेदभाव के कारण धुंधली रहती है। और उनके नकारात्मक/ऋणात्मक आत्मबोध उनको अत्याचार सहने को मजबूर कर देता है। साथ ही चिन्तन और विश्लेषण के लिए बाल विवाह, दहेज, महिलाओं के सशक्तिकरण को समझाएं और उन्हें हटाने की और अग्रसर करवाएं।

आपस में मिलकर सोचिए और विचार विमर्श कीजिए

शिक्षक/प्रधान शिक्षक होने के नाते हमें क्या-क्या आवश्यक करना चाहिए जिससे :

- बालिकाओ का नामांकन
- बालिकाएं विद्यालय न छोडे
- बालिकाएं अच्छे दर्जे की शिक्षा प्राप्त कर सके
- बालिकाएं अपने अवरोधनों से छुटकारा पा सकें
- बालिकाएं सकारात्मक आत्मछवि निर्मित कर सकें
- लड़कों का नामांकन हो
- लड़के पढ़ना न छोड़े
- लड़के गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्राप्त कर सकें
- लड़के आक्रामक न बनें और किसी प्रकार की मारपीट में शामिल न हों
- लड़के-लड़कियां मिल जुलकर एक दूसरे की सहायता करते हुए काम करना सीखें
- पाँच वर्ष से अधिक आयु की स्कूल न जाने वाली लड़कियों को अपने परिवेश में ढूंढे और माता-पिता को यह बताएं कि उन्हें स्कूल भेजना जरुरी क्यों हैं।

नीचे लिखे विचारों पर माता-पिता व सामुदायिक स्तर पर बातचीत कीजिए :

प्रारम्भिक स्तर की बालिका की शिक्षा :

1. उसे जीवनपर्यन्त साक्षर बनाती है और अगली पीढ़ी के लिए साक्षरता सुनिश्चित कर देती है।

2. उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए तैयार करती है जिससे वे कमाने वाले कामों मे लग सकती है और माता-पिता की सहायता भी कर सकती है।

3. आत्मविश्वास और सकारात्मक आत्मछवि दर्शाती है।

4. लड़कियों को नेतृत्व की भूमिका मे ढालती है।

5. लडकियों में भागीदारी और निर्णय लेने की क्षमता पैदा करती है।

6. लडकियों को उनके अधिकारों से सचेत कराती है।

7. विवाह की आयु सीमा बढाती है।

8. बालिकाओ में उनके स्वास्थ्य एव रख-रखाव के बारे मे चेतना विकसित करती है।

9. उनमें दक्षता, स्पष्टता और रचनात्मक प्रवृत्ति पनपाती है।

स्थानीय स्थिति अध्ययनों द्वारा यह पता चलता है कि माता-पिता का बालिकाओं की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बदला है। लड़किया स्कूल जाना चाहती हैं। और माता-पिता उन्हे भेजना भी चाहते है। लेकिन कुछ ऐसे अवरोध हैं जिनके कारण वे नहीं जा पातीं जैसे :

- गृहस्थी के काम, खाना पकाना, सफाई करना, पशुपालन, पानी भरना, ईधन और चारा जुटाना
- छोटे भाई-बहनों की देखभाल
- स्कूल की दूरी और माता-पिता का उन्हें भेजने का डर
- महिला शिक्षकों की कमी
- उन क्षेत्रों में जहां माता-पिता बालिकाओं को बालकों के साथ मिलने-जुलने नहीं देते वहां बालिका विद्यालय अलग न होना
- स्कूल के समय की विसंगति।

माता-पिता और समुदाय के सदस्यों में बातचीत कीजिए जिससे वह संभावनाएं उजागर हो जिनसे लड़कियां नामांकित हो और फिर पढ़ाई जारी रखें। वे समस्याएं सुझाएं और उनके

निवारणार्थ वे क्या कर सकते हैं। और कहां उनकी मदद की जरूरत होगी निर्दिष्ट करें। उनको आत्म-निर्भरता के लिए प्रोत्साहित कीजिए।

महिलाओं को संगठित कीजिए

बालिकाओं के नामांकन और स्कूल में पढ़ते रहने के लिए :-

1. महिला समूह जैसे महिला मंडल, महिला समाख्या, पंचायत की महिला सदस्य और स्थानीय महिलाओं से सम्पर्क करें

2. यदि इस तरह के समूह नहीं हैं तो अध्यापक/प्रधान अध्यापक महिलाओं को एकत्रित करें और मीटिंगों में बालिका शिक्षा को फोक्स करके बातचीत करें।

3. माता-पिता शिक्षक समूह बनाकर महिला-पुरुष का मिला हुआ सहयोग प्राप्त करें।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मन्तव्य के अनुसार बालिका शिक्षा को बढावा देने के लिए ग्राम शिक्षा समिति निर्मित करवाएं जिसमें 50 प्रतिशत महिला सदस्य हों।

5. गरीब और पिछड़े हुए परिवारों के लडकों के लिए ऊपर दी गई बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

माता-पिता और समुदाय के साथ रहकर नीचे लिखी बातों पर ध्यान दिलाना जरूरी है :

(i) बालिकाओं के लिए बराबरी का खाना और आहार विशेषकर महावारी के दिनों में।

(ii) बालिकाओं को सम्प्रेक्षण के लिए प्रोत्साहित करना।

उन काल्पनिक बातों को बदलना जिनसे यह सुझाया जाता है कि लड़कियां लडकों के बराबरी के काम नहीं कर सकती, उनकी योग्यताएं कम होती हैं, महिलाएं और बालिकाएं गप्पी होती हैं, बेवकूफ होती हैं और निर्णय नही ले पातीं, भीरू भी होती है और जल्दी डर जाती और निरन्तर आदेश पाने और उसे पूरा करने के लिए तैयार रहती हैं।

महिला जीवन के मूल्य पर विचार गोष्ठी कराएं जिसमें उनके स्वास्थ्य, उनके लिए आहार इत्यादि पर चर्चा हो जिसका बिन्दु उनकी सार्थक भागीदारी हो।

बहादुर महिलाओं की लोक कथाएं, योग्य और दक्ष महिलाओं की जीवनियां भी जमा करें।

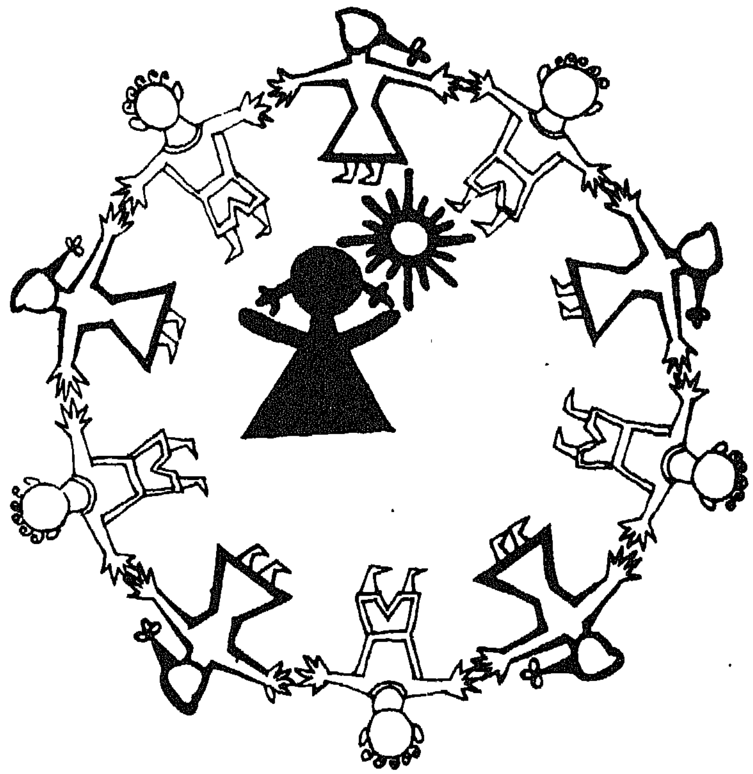
महिलाओं पर हिंसा उसकी सडकों और सामुदायिक हिसा में दुर्गति, सामाजिक दुर्बलताएं जैसे—दहेज, वेश्यावृत्ति, देवदासी प्रथा, शराबखोरी, नशीले द्रव्यों का सेवन इत्यादि पर चर्चा करें और उसके निवारण के प्रयास जुटाएं।

नोटः- परिशिष्ट देखिए—राजस्थान का बालिका अभियान और अन्य अग्रगामी योजनाएं।



संलग्न

बालिकाओं में जागरूकता



लिये हाथों में हाथ
चले साथ-साथ
लक्ष्य एक
भविष्य एक

लड़की का विवाह हो तब
18 वर्ष की हो जाए जब
छोटी उमर में बच्ची पर माँ की जिम्मेदारी न डालिये,
क्योंकि

डाक्टरों का कहना है कि लड़की की आयु 20 साल हो जाने के बाद ही उसे पहले बच्चे को जन्म देना चाहिये नहीं तो मां और होने वाले बच्चे, दोनों की सेहत पर बुरा असर पड़ता है।

स्वस्थ माँ ही स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकती है।

18 साल से कम उमर की बच्ची पर मां की जिम्मेदारी ना डालिये क्योंकि वह इतनी छोटी उमर में शारीरिक तथा मानसिक रूप से पूरी तरह से विकसित नहीं होती।

18 वर्ष से कम आयु की लड़की और 21 वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह करना कानूनी जुर्म है।



मुझे मत मारो! मैं डायन नहीं हूँ



विशेष संवाददाता

अठारहवीं शताब्दी के भारत मे अनेक कुप्रथाओं के जरिए औरतों की खुले आम हत्या की जाती थी। उनमें सती के नाम पर औरत को जला देना और डायन कह कर पीट-पीट कर मार देना खास थी। आज जब देश के किसी कोने में इक्का-दुक्का सती की घटना घटती है तो सारे देश में हलचल मच जाती है। रूप कुंवर हत्याकांड इसी तरह की घटना थी। लेकिन यदि यह कहा जाए कि देश के लिए बहुत बड़े राज्य में आज भी डायन के नाम पर सैंकड़ों-हजारों औरतों को खुले आम मारा जा रहा है, तो क्या यकीन होगा?

बिहार के पुरुषों, शर्म करो...

बिहार के आदिवासी क्षेत्रों सिंहभूमी, जमशेदपुर, धनबाद, हजारीबाग व झारखण्ड क्षेत्र में हर वर्ष लगभग सौ औरतें डायन करार दे कर मार दी जाती हैं। अनेक को मारपीट कर बेइज्जत कर के गांव से निकाल दिया जाता है। उनकी जमीन, जायदाद, झोंपड़ी, घर हड़प लिए जाते हैं। यह सब हो रहा है संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र मे। जहां जनता की चुनी हुई सरकार है। पुलिस और कानून व्यवस्था है। जिस देश का संविधान क़हता है कि लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जाएगा। सिर्फ़ बिहार ही नहीं, बल्कि पूरे देश के शासनतंत्र के मुंह पर यह करारा तमाचा है।

क्या कसूर था इनका?

यहां आमतौर पर जिस औरत से कोई दुश्मनी हो या उसकी जमीन हड़पनी हो या फिर विधवा हो तो आस-पास होने वाली किसी भी दुर्घटना के लिए उसे जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। पंचायत बैठकर उसे डायन करार देती है। गांव उसे पीट-पीट कर मारं देते हैं, जला देते पत्थर

मार-मार कर गांव से बाहर भगा देते ।

- हजारीबाग के बरही गांव में नान्हू यादव रहता था। उसकी पड़ोसन थी सोहबा। नान्हू चौदह साल का लड़का मिर्गी का मरीज़ था एक दिन वह मर गया। नान्हूं ने सोहबा पर जादू-टोना करने का आरोप लगाया। और सोहबा को उसके घर व गांव से निकाल दिया है। उसके पति और दो बच्चों की आंखों में तेज़ाब डाल दिया। वह बेचारी न्याय पाने के लिए मुख्यमंत्री तक के पास गई लेकिन ऊंची-ऊंची कुर्सियों पर बैठने वाले स्वार्थी नेताओं के कान में एक गरीब औरत की पुकार कहां पहुंचती है।

- कजरी का पति बीमार था। वह मर गया। कुछ समय बाद उसका एक देवर भी मर गया। ससुराल वालों ने कहा "कजरी डायन है, उसने दोनों को खा लिया।" जानकारों का कहना है कि यह सब कजरी के हिस्से की जमीन हड़पने की साजिश थी। आदिवासियों में अविवाहित, विवाहित या विधवा औरत का भी जायदाद में बराबर का हिस्सा होता है।

अब हर पंचायत में औरतें होंगी*

हम औरतें पिछले कितने सालों से लड़ रही हैं समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए। हम चाहते हैं कि हम सिर्फ़ पुरुषों द्वारा बनाए गए समाज में न रहें। बल्कि समाज बनाएं भी। यह सच है कि कई मोर्चे पर हम कमजोर पड़े हैं। हमारी किसी ने नहीं सुनी है। लेकिन कई मोर्चों पर हमारी लड़ाई इतनी मजबूत रही है कि हमने सुनने के लिए बाध्य कर दिया है।

विरोध

राजनीति में महिलाओं की सक्रिय और समझदार भागीदारी पिछले कुछ सालों से कम होने लगी थी। पार्टी के लोग औरतों को चुनाव लड़ने के लिए टिकट नहीं देते थे। अगर किसी तरह टिकट मिल भी जाता था तो लाठी और गुण्डों के बीच में औरतों का जीतना बड़ा ही मुश्किल हो जाता था। उनके पुरुष प्रतिद्वंद्वी आखिरी हथियार के तौर पर मनगढंत कहानियों का सहारा लिया करते हैं। उनका चरित्रहनन करते हैं। औरतों के चरित्र से जोड़कर चाहे जितनी झूठी कहानी बनाई जाए, लोग उसे सच्ची कहानी मान लेते हैं। फिर खराब औरत समझ कर वोट नहीं देते। फिर भी औरतें मैदान से पीछे नहीं हट रही हैं। गांव-गांव में पंचायत चुनाव में औरतें

* सबला

हिस्सा ले रही हैं। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में तो दो पंचायतों की सभी सदस्य औरतें हैं।

महाराष्ट्र में पहल

औरतों के इस संघर्ष और जीवट को देखते हुए दो साल पहले महाराष्ट्र सरकार ने कानून बना कर सभी पंचायतों, जिला परिषदों और नगरपालिकाओं में औरतों के लिए एक तिहाई जगह आरक्षित कर दी थी। जब यह कानून बनाया गया तो कई लोगों ने ललकारा भी कि अगर वे समाज चलाना चाहती हैं तो अपनी कूव्वत पर आगे आएं। कुछ लोगों ने यह शंका भी जाहिर की कि अगर वे पंचायत में बोलने लगी तो घर में भी बोलने लगेंगी। आज आरक्षित सीटों पर खड़ी होकर जीतेंगी तो कल सामान्य सीटो से भी जीतने लगेंगी। उन्हें समाज चलाना आ जाएगा तो वे बाद में विधान सभाओं और संसद में भी जाने लगेंगी।



परिशिष्ट

i. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और कार्य योजना 1992 से उद्धृता महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा के लिए सिफ़ारिशें

महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा

4.2 शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए साधन के रुप में किया जायेगा। अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा। राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था ऐसे प्रभावी दखल करेगी, जिनसे महिलाएं जो अब तक अबला समझी जाती रही है, समर्थ और सशक्त हों, नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पाठ्यक्रमों तथा पठन-पाठन सामग्री की पुनर्रचना की जायेगी तथा अध्यापकों व प्रशासकों को पुनः प्रशिक्षित किया जायेगा। इस काम को सामाजिक पुनर्रचना का अभिन्न अंग मानते हुए इसे पूर्ण कृत संकल्प होकर किया जाएगा। महिलाओं से संबंधित अध्ययन और विभिन्न पाठयचर्चाओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जायेगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जायेगा।

4.3 महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने को जिनके कारण लड़कियां प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जायेगी। इस काम के लिए विशेष व्यवस्थाएं की जायेंगी। समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जायेंगे और उनके कार्यान्वयन पर कड़ी निगाह रखी जायेगी। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर खास जोर दिया जायेगा। लड़के और लडकियों में किसी प्रकार का भेद-भाव न बरतने की नीति पर पूरा जोर देकर अमल किया जायेगा ताकि तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पारम्परिक रवैयों के कारण चले आ रहे लिंगमूलक विभाजन (सैक्स स्टीरियोटाइपिंग) को खत्म किया जा सके तथा गैर-परम्परागत आधुनिक काम-धन्धों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ सके। इसी प्रकार मौजूदा और नई प्रौद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जायेगी।

सत्यमेव जयते

भारत सरकार

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

शिक्षा विभाग

1. महिला समानता के लिए शिक्षा

1. भूमिका

1.1.1 महिला समानता के लिए शिक्षा में समानता और सामाजिक न्याय करने की सम्पूर्ण रणनीति का महत्वपूर्ण घटक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई) 1986 के पैरा 4.2 में शिक्षा की प्रभावकारी और अधिकार प्रदान करने संबंध में ठोस और सपाट विवरण है। इसके अतिरिक्त वे विशेष सहायता सेवाओं के प्रावधान और ऐसे कारकों को दूर करने पर बल देते हैं जिनसे शिक्षा के सभी स्तरों पर महिलाओं के प्रति भेदभाव होता है। कार्यवाई योजना में उन कदमों के संबंध में स्पष्ट रूप से बताया गया है जो महिला समानता के लिए शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। समय की मांग यह है कि जहां भी उपयुक्त समझा जाए कार्यवाई योजना की सामग्री में संशोधन किया जाए। इतना तो स्पष्ट है कि कार्यान्वयन के लिए इच्छाशक्ति और संस्थागत तंत्र की जरुरत है ताकि शैक्षिक कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने वाले प्रभारी व्यक्तियों की प्रतिबद्धता या झुकाव पर नहीं छोड़ा जा सकता। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सभी व्यक्तियों, एजेंसियों और संस्थाओं के लिए महिला-पुरुष में भेदभाव के प्रति संवेदनशील होना और यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि सभी कार्यकलापों में महिलाओं का भी हिस्सा है।

2. वर्तमान स्थिति

1.2.1 वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर 39.42% है जबकि पुरुष साक्षरता दर 63.86 % है। 197 मिलियन महिला निरक्षर है जबकि पुरुष निरक्षर 127 मिलियन हैं। ऐसे देश में जहां पुरुषों की संख्या महिलाओं से 32 मिलियन अधिक है, 70 मिलियन महिला निरक्षर पुरुषों की तुलना में अधिक हैं। महिलाओं में उल्लेखनीय ग्रामीण-शहरी असमानतायें हैं अर्थात ग्रामीण निरक्षर महिलाओं की संख्या शहरी निरक्षर महिलाओं की संख्या की आधी है। एक चौकाने वाला निष्कर्ष यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जब 100 लड़कियां कक्षा-I में दाखिला लेती है तो उनकी संख्या क्रमशः घटकर कक्षा-V में केवल 40, कक्षा-VIII में 18, कक्षा-IX में 9 और कक्षा-XII में केवल 1 रह जाती है – शहरी क्षेत्रों के लिए समतुल्य आंकड़े क्रमशः 82,62,32 और 14 हैं।

यदि तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा में प्रवेश के लिए बुनियादी आवश्यकता 10 मास से 1 वर्ष सामान्य शिक्षा अवधि हो तो ग्रामीण लड़कियां छंट जाती हैं। व्यावसायिक और शहरी तकनीकी शैक्षणिक सुविधाओं का बड़ा भाग शहरी और अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में स्थित है। इन क्षेत्रों मे लड़कियों की सहभागिता काफी कम है और लैगिक अनुपात यथापूर्ण बना रहता है। इसी प्रकार इंजीनियरी और कृषि आधारित पाठ्यक्रमों में भी महिलाओं और लड़कियों का अनुपात काफी कम है।

1.2.2 यह और गंभीर बात हो जाती है जब हम पाते हैं कि कम साक्षरता वाले राज्यों में अध्यापिकाओं की संख्या कम है। अध्यापिकाओं का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में 21% और 23% तथा शहरी क्षेत्रों में क्रमशः 56% और 57% है।

1.2.3 इसलिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली को शैक्षिक असमानताओं के लैगिक और आयामों के प्रति सचेष्ट बनाया जाए।

3. नीति प्राचल और कार्यनीतियां

1.3.1 रा.शि.नी. के अनुसरण में कार्यन्वयन रणनीति की मुख्य विशेषताओं में निम्नलिखित शामिल होंगे :

(क) सम्पूर्ण प्रणाली को इस प्रकार तैयार करना कि यह महिलाओं को अधिकार प्रदान करने में सकारात्मक हस्तक्षेप का साधन बन सके।

(ख) महिलाओं का स्तर बढ़ाने और सभी क्षेत्रों में महिलाओं के अधिक विकास हेतु सक्रिय कदम उठाने के लिए शैक्षिक संस्थाओं का प्रोत्साहित करना।

(ग) महिला-पुरुष में भेदभाव के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर व्यावसायिक तकनीकी और पेशेगत शिक्षा के सभी स्तरों पर महिलाओं को शामिल करना।

(घ) गतिशील प्रबन्ध ढांचे का सृजन करना जिससे इस जनादेश द्वारा सामने आई चुनौतियों का सामना किया जा सके।

4. कार्रवाई योजना

1.4.1 नीचे दी गई कार्यनीतियां मुख्य रूप से कार्रवाई योजना के कार्यान्वयन से संबंधित प्रचालन ब्यौरों के विषय में है :

(क) शिक्षा विभाग के सभी ब्यूरो अगस्त 1993 तक ठोस कार्रवाई योजना तैयार करेंगे। जिससे उनके अपने क्षेत्र में लिंग संबंधी चिन्ताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। वि.अ.आ., अ.आ.त.शि.प., आई.सी.एस.आर., भा.ऐ.अ.प., के.मा.शि.बो., आई.सी.ए. आर. आई.सी.एम.आर., आई.ए.एम.आर. राज्यों के बोर्ड, व्यावसायिक शिक्षा ब्यूरो आदि जैसी संबधित शीर्ष संस्थाये भी इसी प्रकार की कार्रवाई योजनायें तैयार करेंगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के भाग IX का पैरा 4.1 से 4.3 और कार्रवाई योजना का अध्याय XII कार्रवाई योजना के मार्ग निर्देशन का काम करेगा।

(ख) विभाग के आयोजन विभाग में एक मॉनीटरिंग एकक या महिला ब्यूरो का सृजन किया जाएगा तकि नीतियों, कार्यक्रमों और स्कीमों में लिंग संबंधी मसलों को समाहित किया जा सके। यह एकक कार्यान्वयन की मॉनीटरिंग के लिए संकेत तैयार करेगा, सूचना के प्रभावी प्रसार को सुनिश्चित करेगा और कार्य में समन्वय करेगा। यह कार्य 1993 तक कर लिया जाएगा।

(ग) राज्य पर इसी प्रकार के मॉनीटरिंग एकक/ब्यूरो गठित किए जाएंगे।

(घ) सभी ब्यूरो और संस्थाओं की वार्षिक रिपोर्टों में उन कदमों के बारे में स्पष्ट जानकारी दी जाएगी जो उन्होंने शिक्षा में महिलाओं व लड़कियों की पहुंच बढ़ाने के लिए उठाए हों। साथ ही उनमें सुनिश्चित किया जाएगा कि शिक्षा सामग्री और प्रक्रिया में महिलाओं की योजना ध्यान रखी जाए और सभी स्तरों पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षा के लिए समान अवसर उपलब्ध कराये जायें।

5. महिलाओं को अधिकार प्रदान करना

1.5.1 शिक्षा महिलाओं को अधिकार प्रदान करने में एक सशक्त माध्यम हो सकती है और इसके निम्नलिखित घटक होंगे :

- महिलाओं का आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास बढ़ाना;
- समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के मान्यता प्रदान करके महिलाओं की सकारात्मक छवि बनाना;
- समालोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित करना;
- सामूहिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना और कार्रवाई करना;

- शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य (विशेषकर प्रजनन स्वास्थ्य) जैसे क्षेत्रों में महिलाओं को जानकारी देकर विकल्प चुनने योग्य बनाना;
- विकासात्मक प्रक्रियाओं में समान सहभागिता सुनिश्चित करना;
- आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सूचना, ज्ञान और कौशल प्रदान करना'
- समाज में महिलाओं के अधिकारों से संबंधित कानूनी जानकारी और सूचना तक उनकी पहुंच बढ़ाना ताकि सभी क्षेत्रों में समान आधार पर उनकी सहभागिता बढ़ाई जा सके।

उपर्युक्त प्राचालों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाएंगे और जैसा कि ऊपर 4.1 मे कहा गया है कि शिक्षा विभाग के संबंधित ब्यूरो और सस्थायें प्रगति के बारे मे रिपोर्ट देगें।

(1) महिला विकास के लिए प्रत्येक शिक्षा संस्था सक्रिय कार्यक्रम प्रारंभ करेगी।

(2) सभी शिक्षकों और प्रशिक्षकों को महिलाओं को अधिकार प्रदान करने वाले एजेंट के रूप प्रशिक्षित किया जाएगा। रा.शै.अ.प्र.प., नीपा, डी.ए.ई.एस.आर.सी., डी.आई.ई.टी. राज्य शै.अ.प्र.प. और विश्वविद्यालय तंत्र प्रशिक्षण तैयार करेंगे। सम्बद्ध संगठनों और महिला दलों की सहायता से नवाचारी प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किए जाएंगे।

(3) शिक्षक-प्रशिक्षकों और प्रशासकों के लिए लिंग और निर्धनता के प्रति संवेदनशील होने के कार्यक्रम विकसित किए जाएंगें। एक ऐसा माहौल तैयार किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षा क्षेत्र के सभी अनुभाग लिंग-भेद के आधार पर असमानता दूर करने में भूमिका के प्रति सचेष्ट और संवेदनशील होंगे।

(4) आर्थिक आत्मविश्वास उत्पन्न करने तथा अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए माता-पिता को प्रेरित करने के लिए अध्यापिकाओं की भर्ती को प्राथमिकता दी जाएगी।

(5) सामान्य कोर पाठ्यचर्या महिलाओं की सकारात्मक छवि बनाने का एक सशक्त माध्यम है। महिला अध्ययन विभाग, रा.शै.अ.प्र.प. लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील पाठ्यक्रम विकसित करने, पाठ्यपुस्तकों से इससे संबंधित पूर्वाग्रह दूर करने और प्रशिक्षकों/शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के क्षेत्र पहले ही प्रारम्भ की गई गतिविधियों को तेज करेगें। राज्य शै.अ.प्र.प. तथा राज्य स्तर के संबंधित बोर्ड और संस्थाएं इसी प्रकार के कार्य प्रारम्भ करेंगे।

(6) ऐसी चेतना और समर्थन से संबंधित सभी कार्यकलापों के लिए सभी शिक्षा बजटों में धन आवंटित किया जाना चाहिए।

6. अनुसंधान और महिला अध्ययन

1.6.1 महिलाओं का अध्ययन एक महत्वपूर्ण निवेश है जिसका उद्देश्य सामाजिक प्रौद्योगिकीय और पर्यावरणात्मक परिवर्तन में महिलाओं के योगदान, उनके संघर्ष और वैज्ञानिक खोज के अनेक क्षेत्रों में उन्हें "लुप्त रखने वाली अवधारणात्मक बाधाओं की बेहतर समझ को प्रोत्साहन देना है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव के संगठनात्मक, सांस्कृतिक और दृष्टिकोण संबंधी बाधाओं को दूर करके महिलाओं को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विकास के सभी क्षेत्रों में प्रभावी सहभागिता प्राप्त करने का प्रदान कराना है। इसके लिए 4 अध्ययन हैं जिनका समर्थन किया जाना है :

(क) ज्ञान की सीमाओं को आगे बढ़ाने के मानव संसाधन विकसित करने और उपरोक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पठन/पाठन सामग्री तैयार करने के लिए अनुसंधान।

(ख) महिलाओ और पुरुषों में समानता के लिए महिला और पुरुषों के वर्तमान और मूल्यों में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा। पाठ्यक्रम के विद्यमान पूर्वाग्रहों और कमियों को भी दूर किया जाएगा।

(ग) शिक्षकों, नीति निर्माताओं, प्रशासकों और योजना निर्माताओं का प्रशिक्षण ताकि वे महिला पुरुष मे समानता लाने के लिए सकारात्मक मध्यस्थ भूमिका निभा सकें।

(घ) समुदाय के महिला विकास कार्यकलापों में संस्थाओं की प्रत्यक्ष भागीदारी का विस्तार।

1.6.2. 20 विश्वविद्यालयों और 11 कालेजों में स्थापित महिला अध्ययन केंद्रों की स्थापना देने की प्रक्रिया में विख्यात संस्थाओं और सुविख्यात महिला संगठनों को शामिल किया जाएगा।

1.6.3 अनुसंधान, विस्तार प्रसार के लिए विभिन्न संस्थाओं के बीच नेटवर्क स्थापित करना काफी लागत-प्रभावी होने के साथ-साथ इससे समन्वित वृद्धि की संभावना बनी है। ऐसे नेटवर्कों का प्रारम्भ विशेष रूप से क्षेत्रीय भाषा में उच्च कोटि की शिक्षण सामग्री संवर्धन, प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम और हस्तक्षेप हेतु विकेन्द्रित क्षेत्र-विशेष मॉडल तैयार करने के लिए किया जाएगा।

1.6.4 अवर स्नातक के लिए आधार पाठ्यक्रम तैयार कर किया जाना चाहिए ताकि महिलाओं को अधिकार प्रदान करने के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। यह आठवीं योजना अवधि के दौरान ही किया जाएगा।

4. संशोधित नीति निर्माण

7.4.1 प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लिए प्राथमिकताओं के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के द्वारा तैयार की गई नीति को दोहराते हुए संशोधित नीति निर्माण में निम्नलिखित संशोधन किए गए हैं:

(iii) यह भी विशेष रूप से निर्धारित किया गया था कि भविष्य में भर्ती किए जाने वाले शिक्षकों में कम से कम 50 प्रतिशत महिलाएं होंगी।

7.3.6. पूर्ण साक्षरता अभियानों की सकारात्मक बहिर्मुखता प्रत्याशी से कहीं अधिक है पूर्ण साक्षरता अभियान द्वारा कवर किए गए कई जिलों में प्राथमिक शिक्षा के लिए अत्याधिक मांग की गई है। 9 से 14 आयु वर्ग के " स्कूल न जाने वाले बच्चो" के कुछ ही जिलों में ये अभियान चलाए गए हैं। इन जिलों में अभिभावकों में जागृति पैदा होने के कारण प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति बढ़ रही है इस सुखद अनुभव ने प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण की नीतियों के "मांग पक्ष" की ओर ध्यान दिए जाने की जरूरत को सुस्पष्ट किया तथा प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण की समस्या के प्रति एकीकरण दृष्टिकोण की जरूरत पर प्रकाश डाला जिससे राज्य नहीं, केवल जिले तथा विशेष रूप से लाभ न उठा सकने वाले वर्ग-अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की लड़कियां, भावी योजना का आधार बने।

7.3.9 केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के विचार से प्रारम्भिक शिक्षा साक्षरता को सर्वसुलभ बनाने मे असफलता, न केवल संसाधनो की कमी के कारण हुई है बल्कि प्रणालीबद्ध कमियों के कारण भी हुई है। बाहरी वित्तीय सहायता के अन्तर्गत प्राप्त अतिरिक्त संसाधनों को शैक्षिक पुनर्निर्माण जैसे नए स्कूल खोलना, स्कूल भवनों का निर्माण तथा शिक्षकों की नियुक्ति जैसे रूढिगत, साधनों से भी ऊपर है, के लिए प्रयुक्त किया जाएगा। एक व्यापक दृष्टि को अपनाना तथा सह सम्बोधित करना अनिवार्य है कि :

(क) कामकाजी बच्चों, लड़कियों और शैक्षिक रूप से वंचित वर्गों की शैक्षिक जरूरतें।

(ख) विषयवस्तु प्रक्रिया तथा गुणवत्ता के मामले।

बुनियादी शिक्षा से सम्बद्ध विभिन्न कार्यक्रमों के जीवन्त तथा परिवर्तनीय माडल विकसित करने के लिए परियोजनाओं को किया जाना चाहिए। अतः इन परियोजनाओं को, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिकल्पित तथा राज्यों की सार्थक सहभागिता की सच्ची भावना से विकसित तथा कार्यन्वित किया जाना चाहिए। अतः इन परियोजाओ को प्रभावी तथा सहयोगी प्रबन्ध सरचना तथा स्थानीय समुदाय, शिक्षक तथा एन.जी.ओ. के सहयोग से मिशनरी तरीके से कार्यन्वित करना आवश्यक है।

अलग-अलग लक्ष्य निर्धारण तथा विकेन्द्रित आयोजना

7.4.2 आठवीं योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लिए नीति में अलग-अलग लक्ष्य निर्धारण तथा विकेन्द्रित आयोजना की परिकल्पना की गई है। शैक्षिक सूचकांकों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि प्रत्येक राज्य में, यहां तक शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों मे भी कुछ ऐसे क्षेत्र तथा जिले होते हैं जोकि प्रायः सर्वसुलभीकरण की पहुंच में होते हैं तथा जबकि शैक्षिक रूप से अच्छे राज्यों में भी कुठ जिले ऐसे हैं जोकि अभी तक पिछड़े हुए हैं। यह प्रयास किया जाना चाहिए कि शिशुओं में उपलब्धि में सुधार करने के लिए स्कूलों में शिक्षण के न्यूनतम स्तरों को शुरू करने तथा लोगों की सहभागिता के जरिए सूक्ष्म आयोजना की व्यापक नीति के अन्तर्गत जिला-विशिष्ट, जनसंख्या-विशिष्ट योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। सूक्ष्म आयोजन सभी की पहुंच तथा सभी की सहभागिता के लिए एक ढांचा प्रदान करेगा जबकि अध्ययन के न्यूनतम स्तर सभी के लिए उपलब्धियों का एक नीति ढाचा प्रदान करेगा।

7.4.3 इन विसंगतियों को कम करने के लिहाज से जिला आयोजना के रूप में निम्न प्रकार से एक दृष्टिकोण को अपनाना होगा। इन जिलों को चार श्रेणियों में बांटा जाएगा :

(क) उच्च साक्षरता वाले जिले जिनमें लगभग सभी की शिक्षा तक पहुंच और दाखिला प्राप्त है तथा शिक्षा के प्रति समाज में जागरूकता पहले से ही अधिक है,

(ख) सम्पूर्ण साक्षरता अभियान वाले जिले जहां पर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के माध्यम से शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने के लिए समुदाय द्वारा सफलतापूर्वक पूरा किया जा रहा है,

(ग) कम साक्षरता वाले जिले जिनमें शिक्षा सुविधाओं की उपलब्धता असंतोषजनक है तथा प्रदत्त कार्य प्रणाली समुदाय की सहभागिता बिना है, और

(घ) बाहरी रूप से सहायता प्राप्त परियोजना वाले जिले जिनका प्रबन्ध ढांचा भिन्न है तथा पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त है।

7.4.4 इन चार श्रेणियों के जिलों की पहुंच, सहभागिता, उपलब्धियों, पर्यावरण निर्माण, सामुदायिक सहभागिता, आदि के लिए नीतियां अलग-अलग होंगी। इन नीतियों को जिला स्तर की निकाय/समिति द्वारा तैयार किया जाएगा गठन प्रत्येक राज्य सरकार करेगी:

7.4.5 जिला आयोजना की इस व्यापक नीति के अन्तर्गत तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन पर प्राप्त अनुभव के आधार पर तथा संशोधित नीति के दिशा निर्देशों के अंतर्गत निम्नलिखित नई नीतियों का प्रस्ताव किया गया है :

(1) उन लोगों के लिए जो परम्परागत पूर्णकालिक शिक्षा प्रणाली में नहीं हो पाते उनके लिए स्वैच्छिक स्कूलों और अनौपचारिक जैसी वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली को अपनाना।

(2) परिवार वार, बाल कार्य योजना तैयार करने तथा कार्यन्वित करने के लिए सूक्ष्म आयोजन के माध्यम से शिक्षकों तथा समुदाय की सहभागिता। यह सभी की पहुंच/दाखिला तथा सभी की सहभागिता के लिए एक ढांचा उपलब्ध कराएगा।

(3) अभिभावकों में, उनके बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा दिलाने के प्रति उनकी विशेष जिम्मेदारी के लिए रूचि पैदा करना तथा बच्चो की प्रभावी शिक्षा की प्रक्रिया मे घर तथा स्कूल की सयुक्त जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए अभिभावकों को भी शामिल करना।

(4) सम्पूर्ण साक्षरता अभियान वाले जिलों तथा अनौपचारिक शिक्षा में स्कूल-पूर्व कार्यक्रम तथा प्राइमरी शिक्षा तथा साक्षरता कार्यक्रमों के बीच सम्पर्क स्थापित करना।

(5) आपरेशन ब्लैकबोर्ड शुरू करने तथा उसे अध्ययन के न्यूनतम स्तरों की नीति से जोडने के माध्यम से स्कूल की सुविधाओं में सुधार करना। इसे उच्च प्राइमरी स्तर तक भी बढाया जाएगा।

(6) स्कूल कार्य प्रणाली की ओर विशेष ध्यान देते हुए शैक्षिक प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण।

(7) गैर-औपचारिक शिक्षा प्रणाली सहित प्राइमरी तथा उच्च प्राइमरी स्तर पर अध्ययन के न्यूनतम स्तरों को शुरू करना।

(8) शिक्षण अध्ययन को बाल केन्द्रित तथा क्रियाकलाप आधारित और रूचिकर बनाने के लिए शिक्षा की प्रक्रिया तथा विषयवस्तु में सशोधन करना।

(9) उपचारात्मक उपायों पर ध्यान देते हुए सतत् और विस्तृत मूल्यांकन शुरू करना।

(10) परिवर्तित नीति और कार्यक्रमों के प्रावधानों को पूरा करने के लिए शिक्षक कार्यक्रमों में संशोधन करना।

(11) प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए अनुवीक्षण प्रणाली में सुधार करना।

(12) संशोधित नीति मे परिकल्पित साक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन शुरू करना।

7.4.6 विशेष कार्यकलापों, स्पष्ट रूप से उल्लिखित, निर्धारित समय (सूची) तथा विशेष लक्ष्यों के साथ जिला विशिष्ट परियोजनाओं को विकसित करने के लिए और प्रयास

किए जाएंगे। प्रत्येक जिला परियोजना प्रमुख कार्यनीति के अन्तर्गत रूपरेखा तैयार करेगी तथा जिले में विशिष्ट आवश्यकताओं तथा संभावनाओं को पूरा करेगी। प्रभावी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभी बनाने के अलावा, शैक्षिक आयोजन के प्रभावी विकेन्द्रीकरण को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिला परियोजना का लक्ष्य शैक्षिक पहुंच में विद्यमान खामियों को कम करना, सुविधाहीन वर्गों के लिए तुलनात्मक मानदण्डों की वैकल्पिक प्रणाली का प्रावधान, शाला-सुविधाओं की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार चलाने में वास्तविक समुदाय की भागीदारी प्राप्त करना, तथा स्थानीय स्तर पर क्षमता का निर्माण करना शामिल होगा। अतः कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि चुनिंदा जिलों में प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य रचनात्मक होने के अलावा थोडा-थोड़ा योजनाओं का कार्यान्वयन भी होगा। विभिन्न कार्यक्रम संघटकों के बीच प्राप्त करने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण की अधिकाधिक संभावना है।

5. सभी की पहुंच का प्रावधान

7.5.1 विद्यमान योजनाओं में उपयुक्त संशोधन किए जाएंगे तथा नई नीति को कार्यान्वित करने के लिए कुछ नए उपाय किए जाएंगे।

(क) औपचारिक स्कूल

7.5.2 पद्धति के अनुसार नए प्राइमरी स्कूल बिना स्कूल वाली बस्तियों में खोले जाएंगे तथा उन बच्चों के लिए जो स्कूल प्रणाली से लाभ नहीं उठा सकते वहां अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोले जाएंगे इसके अलावा, सभी पहुंच के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वैच्छिक स्कूलों की नई योजना भी शुरू की जाएगी।

7.5.3 प्राइमरी स्कूल

वर्ष 1986 में यह अनुमान लगाया गया था कि 300 अथवा इससे अधिक जनसंख्या वाली 32,000 बस्तियों में प्राइमरी स्कूल खोलना अपेक्षित है। जबकि काफी नए स्कूल खोले भी गए हैं और कुछ नई बस्तियां भी बस गई हैं तथा यह अनुमान लगाया गया था कि 35,000 नए स्कूल खोलना जरूरी है। इन स्कूलों को आपरेशन ब्लैकबोर्ड के अन्तर्गत निर्धारित की गई पद्धति के अनुसार राज्य द्वारा खोला जाएगा।

उच्च प्राइमरी स्कूल

7.5.4 उच्च प्राइमरी स्तर पर दाखिले में वृद्धि करने के लिए प्राइमरी स्तर की सुविधाओं को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जाएगा। तीन किलोमीटर की पैदल दूरी पर एक उच्च प्राइमरी स्कूल मुहैया कराने की विद्यमान पद्धति से काफी संख्या में लड़कियां इस स्तर की शिक्षण ग्रहण नही कर पाती हैं। सभी को प्राइमरी शिक्षा प्रदान करने का तर्क, विशेषकर लड़कियों के लिए इसमें कुछ देने की जरूरत है तथा प्राइमरी तथा उच्च प्राइमरी स्कूलों के बीच विद्यमान अनुपात को 2:1 तक बढ़ाना होगा। प्रत्येक दूसरे प्राइमरी स्कूल को उच्च प्राइमरी स्तर तक स्तरोन्नत करने के लिए अगले पॉच वर्षों के दौरान कार्रवाई की जाएगी। सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने की प्रमुख जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होगी।

7.5.5 सर्वसुलभ प्रारम्भिक शिक्षा को प्राप्त करने के लिए स्कूल प्रणाली से लगभग 18 करोड़ बच्चों को पढाना होगा। इसके शिक्षक छात्र 1:40 के अनुपात के आधार पर वर्तमान 27 लाख शिक्षकों की संख्या को 45 लाख तक बढ़ाना होगा छात्रों की संख्या में वृद्धि होने से अगले 7 वर्षो में अतिरिक्त 11 लाख कमरों की आवश्यकता होगी।

स्वैच्छिक स्कूलों की योजना

7.5.6 स्कूल न जाने वाले पर्वतीय, आदिवासी तथा दुर्गम क्षेत्रों, जहां तक कि औपचारिक शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं है, कि जरूरतों को पूरा करने के लिए स्वैच्छिक स्कूलों की एक नई योजना शुरू की जाएगी। इस योजना से ये स्वैच्छिक एजेन्सियां उच्च प्राइमरी शिक्षा/उच्च प्रारम्भिक शिक्षा के लिए स्कूल चलाएंगी तथा एक मूल्य प्रभावी तरीके से स्कूलों की आयोजना तथा इन्हें संचाालित करने में समुदाय की सहभागिता को जागृत करेगी।

7.5.7 ये स्वैच्छिक स्कूल एक प्रदत्त ग्राम/बस्ती के सभी स्कूलों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करेंगे। ये क्षेत्र कम से कम 150 की जनसंख्या वाले सुपरिभाषित क्षेत्र होगें ताकि उन स्वैच्छिक स्कूल में कम-से-कम 30 बच्चे हो। स्वैच्छिक स्कूलों से यह आशा की

जाती है कि वे एक निर्धारित अवधि के भीतर अपेक्षित स्तर तक की प्राइमरी/प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर लेंगे छात्रों की पाठ्यचर्या के लिए पर्याप्त होगी। स्वैच्छिक स्कूलों में दाखिल किए गए छात्रों की औपचारिक स्कूल की किसी भी कक्षा में प्रवेश के लिए बाह्य छात्र के रूप में भाग लेना होगा। इन स्कूलों को चलाने के लिए स्वैच्छिक शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी तथा उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाएगा। इन स्वैच्छिक स्कूलों के पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी ग्राम शिक्षा सीमितं शिक्षको की नियुक्ति की जाएगी तथा उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाएगा। इन स्वैच्छिक स्कूलों के पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी ग्राम शिक्षा समिति की होगी।

7.5.8 पाँच मुख्य मानदण्ड-दाखिला, हाजिरी, स्कूलों में रोके रखना, अध्ययन के न्यूनतम स्तरों को प्राप्त करना तथा सामुदायिक सहभागिता के आधार पर स्कूल के कार्य का आवधिक मूल्यांकन करने के लिए अनुदान देने वाली एजेंसी द्वारा अनुवीक्षण तथा मूल्यांकन प्रणाली की रूपरेखा तैयार की जाएगी।

7.5.9 स्कूल चलाने के लिए पात्र एजेंसियों को केन्द्रीय सहायता दी जाएगी।

(ग) अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम

7.5.10 अनौपचारिक शिक्षा योजना को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित कार्यनीतियां अपनाई जाएंगी :

(क) प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लिए की गई सूक्ष्म आयोजना प्रक्रिया के आधार पर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का प्रावधान किया जाएगा। अनौपचारिक शिक्षा मुख्य रूप से उन बच्चों की, विशेषकर लड़कियों की शिक्षा की जरूरतों को पूरा करेगी जो कि औपचारिक स्कूलों में भाग नहीं ले सकीं हैं।

(ख) उन बच्चों तथा युवाओं के लिए जो अनौपचारिक पद्धति से पास होते हैं उन्हें विभिन्न व्यावसायिक तथा तकनीकी पाठ्यक्रम प्रदान किए जाएंगे। श्रमिक विद्यापीठ तथा स्वैच्छिक एजेन्सियों को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाएगा।

(ग) स्वैच्छिक एजेन्सियों को, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां औपचारिक शिक्षा प्रणाली प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण की जरूरतों को पूरा नहीं कर सकी है,

अनौपचाारिक शिक्षा की परियोजनाओं को शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

(घ) सूक्ष्मायोजना

7.5.13 सूक्ष्मायोजना "एक परिवार और शिशु-वार कार्रवाई योजना" तैयार करने की एक प्रक्रिया है जिससे" प्रत्येक शिशु नियमित रूप से स्कूल अथवा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र में उपस्थित होता है, अपनी शिक्षा अपने सुविधाजनक स्थान पर जारी रखता है, और कम से कम 8 वर्ष तक स्कूल शिक्षा अथवा अनौपचारिक केन्द्र पर उसके समकक्ष शिक्षा पूर्ण करता है" सूक्ष्मायोजना में क्षेत्र विशिष्ट आयोजन अनिवार्य तौर पर शामिल होती है जिसमें क्षेत्र आदर्शतः एक राजस्व गांव, परन्तु व्यावहारिक रूप से एक ब्लाक, तालुक अथवा जिला होता है। इस क्षेत्र में यह उपाय जिनमें सूक्ष्म स्तरीय आयोजना संचालित की जाएगी निम्नलिखित है :

(5) यह देखना कि सभी बच्चों, विशेषकर बाालिकाएं और अनूसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के बच्चे नियमित और वास्तविक रूप में प्रारम्भिक शिक्षा में भाग लेते हैं :

7.5.16 वर्ष 1992-93 के दौरान सूक्ष्मायोजना को लगभग 20 परियोजना क्षेत्रों में प्रयोगात्मक आधार पर परिचालित किया जाएगा। कार्यान्वयन के दौरान प्राप्त अनुभव के आधार पर आठवीं योजना के दौरान लगभग 100 जिलों को शामिल करनें के लिए इसका विस्तार किया जाएगा। कुछ समय बाद यह योजना समस्त देश को शामिल कर लेगी ताकि सर्वसुलभ पहुंच और नामांकन और सबको स्कूल में पढ़ाई जारी रखने के लिए रोके रखने की सुनिश्चित व्यवस्था की जा सके।

(ड.) आपरेशन ब्लैकबोर्ड

(iii) अपर प्राथमिक स्कूलों को (क) प्रत्येक कक्षा/अनुभाग को कम से कम एक कमरा, (ख) एक प्रधानाध्यापक सह-कार्यालय कक्ष, (ग) लड़कियों और लड़कों के लिए पृथक शौचालय संबंधी सुविधाएं (घ) एक पुस्तकालय सहित अनिवार्य अध्ययन

शिक्षण उपकरण (ङ.) प्रत्येक कक्षा/अनुभाग के लिए कम से कम एक शिक्षक और (च) वस्तुओं को बदलने तथा छोटी-मोटी मरम्मत आदि के लिए एक आकस्मिकता अनुदान प्रदान करना।

राजस्थान में बालिका अभियान

राजस्थान सरकार ने यूनीसेफ की सहायता से 1984 में महिला विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया था। इस कार्यक्रम का मुख्य ध्येय "शिक्षा प्रशिक्षण के द्वारा वे जानकारी प्रदान कराना था जिससे महिलाऐं शक्ति सम्पन्न हो सकें और अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सुधार सकें" महिला विकास कार्यक्रम देहाती क्षेत्रों में महिला संध के निर्माण का प्रयास करता रहा है जिससे महिलाएं समूह में गठित होकर अपनी आधीनता के कारणों पर विचार कर सके, उनमें आत्मविश्वास जगे जिससे वे विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न को उखाड़ फेकें। इस प्रक्रिया से यह भी अपेक्षित है कि महिलाएं विकास की प्रक्रिया में क्रियाशील साथी बनें ना कि विभिन्न विकास कार्यक्रम की केवल उपभोक्ता बन कर रह जाएं। इस समय 9 जिलों में महिला विकास कार्यक्रम चल रहे थे और महिला-समूह शक्ति निर्माण में कार्यरत थे । यद्यपि महिला विकास प्रोग्राम देहाती क्षेत्र की महिलाओं को मुख्य रूप से इंगित करता है तथापि इस प्रक्रिया से ही बालिकाओं के साथ काम करने का विन्यास भी हो गया । इसके परिणाम स्वरूप पिछले 6 वर्षो में प्रत्येक जिले में कुछ न कुछ कार्यक्रम आयोजित किए गए जिसके अर्न्तगत बालिकाओं के लिए शिविर और बालिका मेले आयोजित हुए। बालिकाएं आती और ग्रामीण स्तर पर संयाजित जाजम (रंगबिरंगे मोटे कपड़े की दरी पर बैठकर बातचीत करना) पर अपनी स्वास्थ्य संबंधी और प्रजन्न संबंधी जानकारी प्राप्त करने की तीव्र इच्छा प्रकट करतीं।

महिला विकास अभियान की साथिनों ने 1988-89 में जो बाल विवाह के विरूद्ध महाज चलाया वह निरर्थक ही रहा जिससे रणनीति का पुनर्वालोकन करने की आवश्यकता हुई। ऐसे वातावरण में जहां आयु सीमा की अवहेलना में परिवार के सारे बच्चों के साामुहिक विवाह पारिवारिक किफायत के एक साधन माने जाते हैं। बाल-विवाह निषेधक कानून को लागू करना संभव नहीं, विशेषकर तब जब कि स्वंय कानून के संरक्षक इस प्रथा के साझेदार हैं। राजकीय स्तर की एक कार्यशाला में साथिनों ने बचपन, किशोरावस्था, बाल विवाह, परितज्यता, क्रूरता अैर भेदभाव आदि विषयों पर अपने अनुभव के आधार पर चर्चा की । इस कार्यशाला में चर्चित विवाह व भेदभाव संबंधी उपर्युक्त विवेचनों से अनेकों गीत, लधु नाटिकाओं और पोस्टरों का

विन्यास हुआ। काफी विचार विनिमय, नियोजन और प्रभावी संघटन के लिए साझेदारी अनुभव प्रणाली का उपयोग करते हुए 1989-90 में अनेक जिलों में बालिकाओं के लिए विशेष प्रोग्राम आयोजित किए गए। खेलों, गीतों, नाटकों और बातचीत के माध्यम से इन शिविरों और बालिका मेलो में बालिकाओं को अपने आपको व्यक्त करने के अवसर मिले । एक जिले में कार्यानुभव के द्वारा एक को एक पढ़ाए कार्यक्रम उन बालिकाओं के लिए नियोजित किया गया जो चरवाहे का काम करती थी और स्कूल नही जा पाती थीं।

दूसरी और साथिनों ने नर्स, दाइयों के कार्य के लिए आंगनवाड़ी कर्मचारी और ग्राम सेविका को प्रेरित किया। ग्राम स्तर पर एक अन्य भव्य मेले का आयोजन हुआ। इसमें हजारों महिलाओं ओर बच्चो ने भाग लिया। अन्य जिलों में जाति पंचायतों से बातचीत शुरू हुई जिनका विषय था कि विवाह की आयु सीमा क्यों बढाई जाए। बालिकाएं वृक्षो के पुनः आरोपन में जुटीं और उन्होंने लघु संचय खाते खोलने में सहायता की। इसी प्रकार एक जिले में बालिकाओं के लिए स्वास्थ्य मेला लगाकर जहां उन्हें खेल-कूद का मनोरंजन प्रदान किया गया वहां उनकी डॉक्टरी जांच भी की गई जिससे उनके आहार के स्तर को आंका जा सके।



एक अर्थ में बालिका अभियान ने यह दिखा दिया कि महिला विकास का कोई भी कार्यक्रम कमजोर ही रह जाएगा जब तक कि उसमें बालिका व किशोरियों से संबंधित विषय समविष्ट न हो। साथ ही महिला विकास कार्यक्रम गत संप्रेक्षण देहाती महिलाओं को संकलित करने के लिए बढाए जा सकते हैं। और कार्यरत बालिकाओं के लाभान्वयन के लिए बढ़ाए जा सकते हैं।

बालिका अभियान 1991 में सम्पन्न हुआ। अनुभव ने यह दर्शाया कि अभियानोत्तर नियोजन अति आवश्यक है। किसी भी ऐसे अभियान से जहां जन चेतना व जनशक्ति को सफलतापूर्वक उगाया गया हो यह अपेक्षा भी रहती है कि अभियानोत्तर कार्यक्रमों की एक संकलित योजना बनाई जाएगी और उसे सुचारिता से कार्यन्वित भी किया जाएगा। ऐसा न होने पर अभियान की सफलता संदिग्ध हो सकती है। यह इसलिए कि ग्रामीण जन समूह उसमें विश्वास खो

बैठता है। ऐसा न हो पाने पर भी यह सम्भव रहता है कि अभियान के अंगारों को हवा दी जा सके। किन्तु इसके लिए भी योजनाबद्ध होना आवश्यक है। क्योंकि अभियान ने एक रणनीति और जन-जागरण की वह पद्धति सुझाई जिससे बालिका शिक्षा, स्वास्थ्य संवर्धन हेतु जन समूह का सकारात्मक सहयोग प्राप्त हो सके।

यदि बालिका और महिला स्थिति में परिवर्तन लाना है तो उन संप्रेक्षण माध्यमों को सही ढंग से प्रयुक्त करना पड़ेगा जिनका बालिका अभियान के दौरान समुदाय के सान्निध्य से उद्गम हुआ।

प्रथम चरण

प्रथम चरण में अभियान निदेशक प्रशिक्षण द्वारा ग्राम-सम्पक्र सम्पन्न हुआ। अभियान की रणनीति बनी और उसे परिष्कृत किया गया।

द्वितीय चरण

द्वितीय चरण में बीस सहेलियों के समूह को और पांच साथिनों के दूसरे वर्ग को पांच दिन का शिविर लगाकर एक परिचयता और दो साथिनों ने प्रशिक्षण दिया। सहभागिता को प्रणाली में विशेष प्रशिक्षण सामग्री का विन्यास हुआ जिससे ग्राम स्तर पर संघटनात्मक प्रक्रिया द्वारा प्रशिक्षणार्थी अभियान को ग्रामीण स्तर पर कार्यन्वित कर सकें।

तृतीय चरण

इस शिविर में भाग लेने वाली बालिकाओं और महिलाओं के प्रति क्रियाओं के जो सकारात्मक उत्तर आए विशेषकर उनके जिन्होंने विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में भाग लिया। पुरुषों की प्रतिक्रियाएं दोनों तरह की थीं।

चतुर्थ चरण

बालिका मेले में भाग लेने वाली बालिकाओं ने तीव्र जिज्ञासा का प्रदर्शन किया।

राजस्थान के तीन जिलों में बालिका अभियान का मूल्यांकन किया गया। यद्यपि यह अभियान एक छोटे पैमाने पर किया गया परन्तु महिला विकास कार्यक्रम को इसने महत्वपूर्ण समर्थन दिया। राजस्थान के तीन जिलों में किया गया मूल्यांकन ने बालिका अभियान को पर्याप्त

सफल कार्यक्रम आंका। यह अभियान महिला विकास कायक्रमों के अनुभवों से ओत-प्रोत था और इसनें पुनः महिला विकास कार्यक्रम को हिलाया-डुलाया। कुछ मुख्य बिन्दु जो बालिका अभियान से उभरे वह इस प्रकार है :

1. यह एक सुनियोजित अभियान था जिसका सूत्रपात राजकीय प्रशासकों द्वारा हुआ। इस अभियान का पूरा ब्यौरा उन माध्यमों से तैयार किया गया जिन्हें महिला और बाल विकास विभाग युनीसेफ की सहायता से नियोजित धारावाहिक प्रक्रियाओं द्वारा सावधानीपूर्वक प्रति वर्ष बचते रचते रहते हैं। इनका वर्षों का अनुभाव इस अभियान के लिये एक उपलब्धि है।

2. यद्यपि राज्य ने पहला कदम उठाया तथापि स्थानीय जोश और सहभागिता की कमी न रही। योजना को विकेन्द्रित करने के लिए केन्द्र और विकेन्द्री नियोजन पद्धति को आवश्यक माना गया।

3. प्रमुख मुद्दों के रूप में बालिका अभियान ने बाल-विवाह उन्मूलन, स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न उठाए। इन प्रश्नों को किताबों, पोस्टरों, गीतो, नारों और फिल्मों द्वारा सामान्य स्तर पर गांवों में पहुंचाया गया। इस प्रकार से आयोजित प्रशिक्षार्थियों का पाँच दिन का शिविर इन लोगों के नए गीतों की रचना, चित्रों के निर्माण, छोटे-छोटे खेलों का नियोजन, नाटक बनाने का अवसर कुछ क्रियाशील संवादों द्वारा उपलब्ध कराता था।

4. बालिका अभियान महिला विकास कार्यक्रम के मुख्य कार्मिकों तथा उसकी प्रशिक्षण रणनीति पर आधारित था।

5. बालिका अभियान साथिन (एकाकी महिला विकास कार्मिक) से आरम्भ होकर समूह तक पहुंचा इन सब महिलाओं से यह अपेक्षित था कि वे अपनी बालपन की यादगारें बताएं। साथ ही यह भी था कि वे उस समय की घटनाओं पर दृष्टिपात करें। इससे एक गहरा भावात्मक वातावरण उत्पन्न हुआ जिसके कारण शायद पहली बार उन्होंने अपनी बेटियों को एक अन्वेषक के दृष्टिकोण से देखा। खोए हुए बचपन, घुटी हुई स्थितियां यह विश्वास दिलाने लगी कि अब उनकी बेटियों के साथ कदाचित् ऐसा न हो। अब वह नवीन विचारधारा को फैलाने के लिए पर्याप्त समर्थ हो गई।

6. यह पाँच दिन का प्रशिक्षण शिविर ग्रामीण स्तर के दो दिन के शिविर और बालिका मेला जैसे क्रियात्मक कार्यक्रम से सीधे तरीके से जुड़ा था। उन्होंने वहां जाकर काम करने

की योजना बनाई। कोई लक्ष्य निर्धारित न था। उनको जिम्मेदारी सौंपी गई थी। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी समझी, अपनेपन का अनुभव किया और आत्मविश्वास से अभियान को आगे बढाया।

7. बालिका अभियान ने ग्रामीण महिलाओं को महिला अनुभव से सीखने का अवसर प्रदान किया। पाँच दिन के शिविर में उन महिलाओं की हिचकिचाहट दूर हो गई जो आत्मविश्वास की कमी के कारण बोलने में पीछे रहती थीं। साथिन को लगा कि वह भी बोल सकती हैं; अभियान चलाने के लिए बोल सकती हैं और उसके लिए सोच भी सकती हैं। सामुहिक स्तर पर उन्हें क्रियाशील कर दिया और "वे प्रश्न कर सकती हैं" ऐसी चेतना भी उनमें उत्पन्न हो गई ।

8. बालिका अभियान ने बाल-विवाह, स्वास्थ्य और बालिकाओं के लिए शिक्षा जैसे प्रमुख प्रश्न क्रमबद्ध किए। अभियान ने एक रास्ता बताया, उस में विभिन्न क्रियाओं को करने के लिए स्थान निश्चित किए और उन क्रियाओं का क्रम निर्धारित किया। समुदाय में "बालिका शिक्षा" एक मुख्य और शक्तिशाली मांग के रूप में उभरी।

9. बालिका अभियान ने मौखिक परम्परा और लौकिक तरीके अपनाए जिसमें गीत, नृत्य और नाटक गीत बहुत प्रभावशाली माध्यम बने। नुक्कड़ नाटकों से महिलाओं ने नए विचार संचारित करने के लिए माध्यम की पहचान कर ली और वह भी इस भूमिका में कि उन्होंने क्या देखा। बालिका अभियान ने यह दर्शाया कि पारम्परिक सांस्कृतिक तरीके बहुत सामाजिक शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं।

10. पोस्टर, गीत, पर्चियों, नारे और नाटकों के विचार बालिका अभियान की सफलता के मुख्य द्योतक थे। इन विधानों में रचे विचार अधिकांश महिलाओं को ग्राही लगे। गिरता हुआ लिंग अनुपात, पैत्रिकता, जैसी कुछ अवधारणाएं उनके लिए नई थीं। किन्तु उनको जानने व समझने की जिज्ञासा अवश्य प्रदर्शित हुई। वे अपने अपने जीवन में "बालिका की खोज" कर रही थीं।

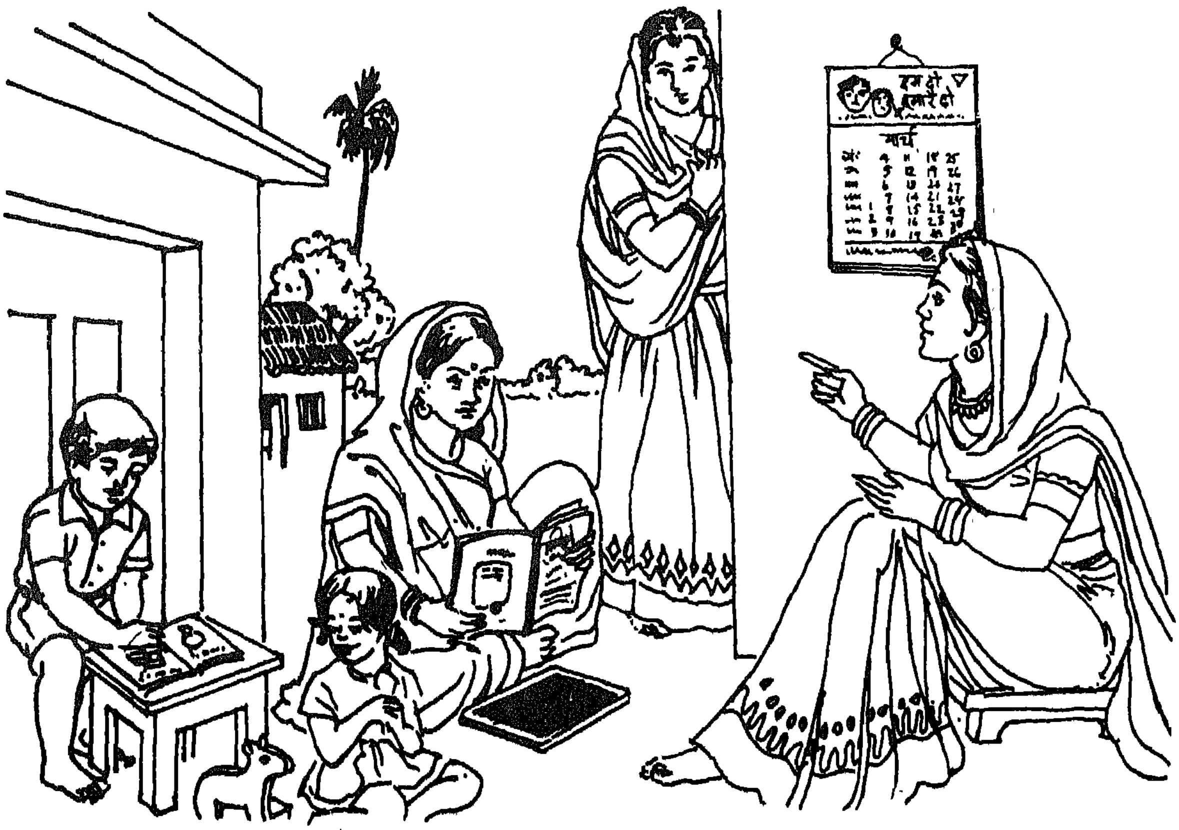
11. बालिका अभियान ने ग्रामीण पुरुषों के (जिनमें ग्रामीण नेतागण भी शामिल हैं), विचारों को बदलने की राह सुझाई हालांकि बहुत से पुरुषों को उन बातों पर विश्वास नहीं आया जिन्होंने उन्हें सुना और देखा किन्तु कुछ ऐसे पुरुष जरुर आगे आए जिन्हें बालिका संबंधी समस्याओं में गहरी रुचि उत्पन्न हुई।

12. बालिका अभियान ने शिक्षकों के विचार परिवर्तन के लिये प्रशिक्षण की आवश्यकता को उजागर किया जिससे शिक्षक बालिकाओं के नामांकन की बढ़ोतरी करायें।

13. अभियान ने निःसन्देह बालिका शिक्षा की मांग को बढ़ावा तथा साथ ही महिला साक्षरता की आवश्यकता समझी और उसे मांगा।

14. बालिका अभियान के मूल्यांकन ने महिला विकास प्रोग्राम को शिक्षा से जोड़ने की आवश्यकता को उजागर किया ताकि समुदाय संघटित हो और माता-पिता अपनी बालिकाओं को विद्यालय भेजने के लिए अग्रसर हों जिसके लिए वे महिला समूहों को भागीदार बनाये और शैक्षिक कार्यकलापों को मॉनीटर करें (चाहें वे औपचारिक हों अथवा अनौपचारिक)।

15. साथिनों तथा अन्य महिलाओं ने महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया विशेषकर स्वास्थ्य शिक्षा। यह माना गया कि महिला विकास कार्यक्रम साक्षरता पर अग्रगामी कदम उठा सकते हैं और किशोरियों को शिक्षा-दीक्षा मैं हस्तक्षेप कर सकते हैं।



सात वर्ष आयु से ऊपर जिलावार तुलनात्मक साक्षरता स्थिति — 1981-91, पुरुष/महिला

आंध्र प्रदेश

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	सिरिकाकुलम	311	479	124	243	39.4	50.3	15.4	25.0	56.2	66.7
2.	विजयानगरम	276	414	111	209	37.2	47.5	14.9	23.9	57.2	66.9
3.	विशाखापट्टनम	467	806	237	484	43.7	58.6	22.6	35.9	68.0	75.8
4.	पूर्व गोदावरी	762	1067	522	816	49.9	56.6	34.6	43.2	81.3	86.6
5.	प. गोदावरी	617	895	442	705	51.9	61.2	37.6	48.3	83.9	88.2
6.	कृष्णा	732	987	503	719	56.9	63.4	40.5	47.5	82.9	85.5
7.	गुन्टूर	774	1030	440	647	53.3	59.7	31.2	38.4	73.6	78.1
8.	प्रकासम	467	639	199	327	48.4	55.2	21.2	29.0	60.5	68.5
9.	निलौर	408	605	222	381	48.4	60.5	27.0	38.7	71.3	77.9
10.	चित्रूर	589	893	264	509	51.0	65.1	23.7	38.2	63.1	73.6
11.	गुडप्पा	425	632	163	212	52.3	65.8	20.9	33.9	56.7	67.5
12.	अनन्तपुर	522	770	197	364	49.1	56.9	19.8	28.3	56.6	65.9
13.	कुरूनूल	447	679	193	323	48.2	53.9	20.2	26.8	59.7	65.9
14.	महबूब नगर	338	530	124	239	36.4	41.0	12.8	18.9	54.3	62.9
15.	रंगारेड्डी	307	670	142	391	47.4	61.9	23.3	38.3	64.8	75.8
16.	हैदराबाद	750	1009	502	746	77.2	75.8	57.1	60.3	84.4	88.2
17.	मैडक	283	428	93	188	38.4	45.0	12.8	20.3	50.0	61.9
18.	निजामाबाद	259	401	94	194	38.1	48.0	13.7	22.7	52.9	64.5
19.	आदिलाबाद	224	396	74	182	33.4	45.5	11.4	21.3	50.5	63.5
20.	करीम नगर	378	680	129	325	37.6	53.8	12.8	26.0	51.0	65.0
21.	वारांगल	378	642	147	316	39.8	54.0	16.3	27.5	57.4	67.1
22.	खम्मम	288	476	145	280	39.8	50.9	21.3	31.0	69.0	75.4
23.	नालगोड़ा	358	616	141	297	38.1	51.2	15.6	25.6	57.6	66.3

1989-91

अरुणाचल प्रदेश

क्र. सं.	जिले का नाम	पुरुष साक्षरता (हजारो में)		महिला साक्षरता (हजारों मे)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
		(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1	तावांग x	-	5	-	2	-	41.7	-	20.0	-	62.9
2.	प. कामेग	9	14	4	7	34.5	56.0	15.4	35.0	66.9	75.0
3.	प. कामेय	2	8	1	3	14.7	38.1	3.5	15.8	68.6	57.4
4	लोबट सुवनसिरि	13	33	5	18	33.9	50.0	12.2	31.6	51.7	76.2
5.	अपर सुबरसिटि	4	10	2	5	24.6	47.6	6.5	27.8	66.7	72.2
6.	प. सिआग	12	21	4	10	38.0	53.8	16.8	30.3	53.7	70.4
7.	पू. सिआंग	16	24	4	12	42.0	54.4	19.3	33.3	52.7	74.1
8.	दिवांग वैली	7	11	2	5	40.8	57.9	17.1	33.3	57.8	70.8
9.	लोहित	14	30	5	13	44.4	61.2	22.1	34.2	62.9	69.2
10.	चंगलांग	#	20	#	10	#	50.0	#	29.4	#	72.5
11.	तिरप	19	15	5	6	34.0	40.5	12.1	19.4	45.7	62.7

X तवांग नया जिला प. कामेंग से बना।

चंगलांग नया जिला तिरप से बना।

असम

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	घूबरी		247		143		44.7		27 5		75 6
2.	कोखराझार		165		99		49 5		31.8		77.6
3.	बोगाइगांव		202		123		59.8		39.0		78 5
4.	गोलपारा		144		94		52.4		36.2		81 3
5.	वरपेटा		297		176		51.3		32.7		77.2
6.	नलवारी		291		181		68.6		45.6		76.9
7.	कामरूप		659		426		76.8		56.8		84 2
8.	दारंग		279		166		51 8		32 8		77.0
9.	सोनितपुर		348		218		57 7		40.1		81.2
10.	लखिमपुर		208		149		66.0		51.4		87.1
11.	किमाजी		129		75		64 8		41 0		76 7
12.	मोरीगांव		150		96		56.0		38.4		80 9
13.	नवगांव		494		343		62.2		46.6		85.2
14.	गोलाघाट		230		157		67 8		50.6		84.9
15.	जोरहट		282		198		76 8		59.3		86 6
16.	सिवसागर		284		202		74.7		58.7		87 5
17.	डिवरूगढ़		308		203		69.7		51 0		83 8
18.	तिनसूखिया		249		148		60.3		40 4		79 3
19.	कारवीलॉग		156		90		55.9		35 9		77 3
20.	नार्थ कोनार हिल		43		26		66.2		47 3		82.2
21.	करीमगंज		225		145		65.4		44 9		80 9
22.	हाइलाकंडी		121		71		64.4		41 0		77 2
23.	कोछार		351		240		69 0		50 7		84 3

नोट : राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान, सांख्यिकी डेटा आधारित शिक्षा के लिये नई दिल्ली 1992
1981 में असम में जनगणना नहीं हुई थी।

बिहार

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों मे)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक ,	
क्र. सं	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	पटना	815	1076	349	545	63.3	68.8	30.9	40.1	64.2	72.3
2	नालन्दा	386	529	138	231	56.7	62.2	22.2	30.2	55.1	64.2
3	भोजपुर	565	790	170	294	57.6	65.0	18.3	26.8	47.4	57.1
4.	रोहतास	532	757	168	301	54.0	61.4	18.9	27.4	50.6	60.3
5.	औरंगाबाद	263	400	81	159	52.6	61.7	17.0	26.8	48.2	59.5
6.	जहानाबाद	-	316	-	123	-	64.1	-	27.1	-	58.4
7.	गया	692	613	225	249	54.3	54.8	18.7	24.1	50.5	60.1
8.	नवादा	217	309	68	115	50.2	54.6	15.6	21.7	47.6	56.1
9.	सारन	432	618	122	229	53.4	58.8	14.5	22.5	43.3	55.0
10.	सिवान	316	481	94	188	47.6	55.7	12.9	21.4	43.9	55.7
11.	गोपालगज	228	354	55	118	42.8	50.8	10.3	17.5	38.6	50.8
12.	प. चम्पारान	279	403	80	131	34.0	40.3	10.9	14.9	47.1	52.4
13.	पू. चम्पारान	358	499	98	193	35.7	38.3	10.6	16.8	45.0	59.5
14	सितामढ़ी	280	404	87	142	34.9	39.5	11.8	15.7	49.4	55.5
15.	मुजफ्फरपुर	409	613	147	261	42.7	49.2	16.0	23.1	53.9	62.8
16	वैशाली	313	495	102	199	47.9	55.0	15.5	24.0	49.1	59.8
17.	वेग सराय	266	379	103	164	44.8	49.2	18.4	23.7	57.6	63.9
18.	समस्तीपुर	384	568	128	225	45.6	50.0	15.5	21.3	50.6	59.0
19	दरभंगा	348	512	121	201	42.9	48.4	15.2	20.8	52.1	59.0
20.	मधुबनी	388	575	105	188	41.4	48.7	11.4	17.1	42.9	15.0
21.	सहरसा	459	498	126	144	37.3	46.4	11.2	15.1	45.1	47.6
22.	माधवपुरा	@	200	@	66	@	39.7	@	14.8	@	52.8
23.	पुर्निया	519	308	156	118	35.0	38.7	11.6	16.4	48.7	58.3

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
24.	कटिहार	218	298	75	115	37.1	38.7	14 0	16.4	53 6	58.5
25.	खगरिया	#	182	#	71	#	42.7	#	19.2	#	60 4
26.	मूंगेर	641	728	219	291	46.6	55.6	17.5	25.2	53.4	60.9
27.	भागलपुर	511	720	190	308	46 7	52.3	19.6	25.5	57 6	64.1
28.	गोददा	621	177	182	60	40.5	49.0	12.6	18.0	46 7	52.8
29	साहिबगंज	^	198	^	83	^	36.7	^	16.4	^	61.0
30.	दुमका	^	309	^	109	^	50.0	^	18.5	^	53.4
31.	देवघर	^	211	^	71	^	54.4	^	20 1	^	52 9
32.	धनबाद	588	876	208	394	61.7	73.4	28 2	39 6	59 9	68.3
33	ग्रहिहीड	319	485	81	153	46.1	52.4	12.1	17.6	41.2	49 5
34.	हजारीबाग	389	625	111	231	43 9	52.7	13.3	20.9	45 7	55.9
35.	पलामू	299	448	82	148	38.9	43 8	11.4	15 5	44.4	51 5
36.	कोहरडग्गा	&	64	&	29	&	54.2	&	25 2	&	63.2
37.	गुमला	&	243	&	128	&	51 9	&	27 6	&	69.4
38.	रांची	649	606	282	313	51.1	65.7	23.2	36.6	62 0	70 8
39.	प. सिंह भूमि	671	517	283	298	55 1	75 6	25 0	48.1	61 5	76 9
40	पूर्व सिंह भूमि	%	408	%	165	%	55 5	%	23 3	%	58.6
41.	अरारीया	$	249	$	85	$	36.5	$	13.7	$	53 5
42.	किशनगज	$	135	$	42	$	32.7	$	11.0	$	49 3

* (जहानाबाद) गया जिले से बनाया गया।
@ (माधवपुरा) नया जिला सहरसा से बनाया गया।
(खगरिया) नया जिला मुगेर से बना।
$ (अरारीया और किशनगज) नया जिला पूर्निया से बना।
& (लोहरडग्गा और गुमका) नया जिला रांची से बना।
^ (गोडडा, साहिबगज, दुमका, ओर देवगढ) यह सन्थाल परगनाथ से संबंधित हैं।
% (पूर्वी सिंह भूमि, पश्चिमी सिंह भूमि) यह सिंहभूमि से सबधित है।

गोवा

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	नार्थ गोवा	3301	259	234	200	76.0	88 4	55.2	70 4	84.0	88 5
2.	साऊथ गोवा	#	181	#	142	#	81.5	#	65.4	#	88.9

\# (नार्थ गोवा और साउथ गोवा) गोआ से संबंधित है।

गुजरात

		पुरुष साक्षरता (हजारो में)		महिला साक्षरता (हजारो में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	जामनगर	352	468	200	307	60.1	69.9	35 9	47 9	71.4	81 0
2.	राजकोट	611	862	386	601	69.2	78.0	45.9	58 0	71 4	85 0
3.	सुरेंद्र नगर	256	352	124	197	58.5	66.4	30.6	40 1	67 2	74 6
4.	भावनगर	479	691	250	417	62 1	69 5	33.6	44.1	69 9	77 2
5.	अमरेली	280	377	168	256	63 4	70 5	38.9	48.7	75.7	81.6
6.	जूनागढ़	553	757	300	485	63 0	73.2	35 7	48 7	71.8	79.6
7	कच्छ	227	334	137	212	53 5	62 4	31 8	40.6	74.9	78.6
8.	वनासकाठा	285	498	89	195	42.2	52 6	13 9	22.0	49.0	58 2
9.	सावरकाठा	399	564	183	319	64 5	74.5	30.3	43 5	63.7	73 4
10.	मेहसाना	743	988	435	628	70.0	77 7	41.8	51 8	74 6	79.6
11.	गाधीनगर	94	167	53	135	76.6	93.3	46 5	81 8	74.6	93.2
12	अहमदाबाद	1313	1795	808	1228	77.1	84.3	53 7	63 9	81.2	85 7
13	खेड़ा	965	1242	482	708	74.2	81.9	40.5	50.6	69.7	75 7

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
14.	पंचमहल	473	740	163	326	49.4	57 9	17.9	26 7	52 5	62.6
15.	वडोदरा	768	1023	447	662	68.8	75.2	44.0	53.1	77 2	82.2
16.	भड़ोच	367	496	205	313	65.9	73.4	39.5	49.5	74.2	80 1
17.	सूरत	701	1002	443	686	65.2	66.4	45.0	50.3	81 1	85.6
18	वलसाड	491	701	326	501	65 8	74.5	44.8	55.5	80.7	85 2
19.	डांग	22	34	11	20	47.1	55.7	25.5	33.3	68.2	74 7

हरियाणा

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	अम्बाला	390	365	222	250	62.7	75.9	41.4	58.1	78.4	86.1
2.*	यमुनानगर	*	252	*	159	*	70.2	*	50.5	*	82.8
3.	कुरुक्षेत्र	249	191	110	117	50.7	68 7	26.0	47.6	66.2	80.9
4.	कैथल	#	197	#	86	#	54.1	#	27 8	#	66.2
5.	करनाल	331	255	145	146	57.2	65.7	29.7	43.3	66.7	78 3
6.	पानीपत	@	244	@	128	@	65.9	@	40 8	@	75 0
7.	सोनीपत	242	254	97	136	65.6	76 7	30.3	48.2	61.6	75.8
8.	रोहतक	395	591	164	364	68.4	75.1	32.5	53.7	62.9	82.4
9.	फरीदाबाद	283	477	98	214	63.3	72.3	27.7	39.1	58.1	68.3
10.	गुड़गांव	215	315	77	147	59.2	63.8	24.3	33.7	56.7	67.9
11.	रिवाड़ी	$	217	$	114	$	81.3	$	46.3	$	71.8
12.	महेंद्रगढ़	271	207	92	97	68.9	73.4	25.0	36 5	52.5	65.7
13.	भिवानी	230	336	69	151	60.1	68.9	20.1	34.6	48.9	65.7
14.	जिंद	190	255	51	107	46.5	59.6	14.8	29.7	46.0	64.7
15.	हिसार	327	492	112	224	50.4	60.7	20.1	32.0	55.2	67.5
16.	सिरसा	145	225	61	119	47.9	57.0	23.0	32.4	63.7	73.9

* (यमुनानगर) नया जिला अम्बाला से बना।
(कैथल) नया जिला कुरूक्षेत्र और जिंद से बना।
@ (पानीपत) नया जिला करनाल और सोनीपत से बना।
$ (रिवाड़ी) नया जिला महेंद्रगढ़ से बना।

हिमाचल प्रदेश

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. स.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7).	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	चम्बा	61	97	20	45	46.7	57.7	16.5	28 0	51.4	64 8
2.	कांगड़ा	282	370	196	313	70.9	79.2	47.8	62.9	80.9	88.8
3.	हमीरपुर	88	116	74	110	76.0	83.5	53.6	67.9	83 8	90.4
4.	उना	92	125	64	99	72.3	80.6	47.9	61.9	79.9	87.0
5	विलासपुर	66	92	42	71	66.3	76 0	41.4	57.7	77.0	86.4
6.	मन्डी	167	238	86	161	65.0	75.1	33.1	49.1	67.9	79 3
7	कूल्लू	59	91	21	46	57.5	68.9	23.0	37.7	55.4	69.9
8.	लाहौल स्पीति	8	11	2	5	50.0	78.6	18.3	41 7	49 1	67.7
9.	शिमला	46	210	68	128	63.9	77.2	35.1	52.5	68.9	80.1
10.	सोलन	81	125	41	77	63.1	75.3	34.6	50.7	69 8	79.7
11.	सिरमौर	68	104	27	56	50 8	62.3	24.2	37.3	61.8	74.0
12.	किन्नौर	16	24	6	11	60.0	77.4	24.5	39.3	59.3	66.2

जम्मू और कश्मीर

		पुरुष साक्षरता (हजारो मे)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	अनन्तनाग	115		33		41 0		13.5		49 0	
2.	पुलवामा	65		17		37.8		11 6		44.4	
3.	श्रीनगर	155		79		49.2		29.0		72.8	
4.	कुपवाड़ा	48		7		33 1		6.1		28 0	

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
5.	बदगाम	51		14		32.5		9.9		46.6	
6.	बारामुला	107		29		37.0		12.0		46 4	
7	कारगिल	11		1		38.0		38 2		18.3	
8.	लेह	14		3		43.2		14.3		38.7	
9.	डोडा	64		15		32.5		9.2		40.5	
10	उद्यमपुर	77		29		40 5		17 1		58.1	
11.	कठुआ	80		38		51.2		26.3		67.6	
12.	जम्मू	256		144		63.3		38 9		75.5	
13.	रजौरी	54		21		42.8		18 2		59.5	
14.	पूंछ	41		12		42.2		14 1		48 5	

जम्मू और कश्मीर में 1991 की जनगणना नही हुई थी।

कर्नाटक

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	बेंगलूर	1502	1818	965	1352	70.0	86.0	49.9	70 3	82 5	89 5
2.	बेंगलूर देहात	*	444	*	266	*	62 1	*	38.9	*	76.7
3.	बेलगाम	734	993	345	560	58.7	66.0	29.0	38 5	65 5	73.4
4.	बेल्लारी	308	459	138	243	50.9	57.2	23.4	31 1	62.7	70.2
5.	बिदर	189	305	68	151	46.9	56 8	17.1	29.3	53.6	67 6
6.	बीजापुर	541	852	215	482	55.6	68 5	22.4	39.9	57.3	73.3
7.	चिकमगलूर	243	311	149	221	62.5	72.3	40.5	52 1	78.2	83.7
8.	चित्रकुट	438	628	228	383	58.8	67.0	32 7	42.9	70.9	77.7
9.	दक्षिण कन्नड	707	943	545	820	74 0	86 4	53.0	70.1	84.0	90.0
10.	धारवाड़	811	1070	422	639	66.2	71.0	36.2	44.6	70 3	76.7

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
11.	गुलबर्गा	374	548	132	251	44 5	49.9	16.0	23 6	52 6	63 8
12.	हासन	327	458	174	303	58.2	69.8	31.6	45 9	70.0	79.4
13.	कोडाग	133	157	94	127	66.4	77.0	51.0	62.6	86.2	89 7
14	कोलार	417	598	205	348	53 0	63 5	26.9	37 9	67.1	74.6
15.	मडया	287	422	134	254	48.5	60.3	23.8	37.2	65.3	76 1
16.	मैसूर	513	770	283	494	46.9	57.09	27.4	38.1	73.1	79 8
17.	रायचूर	316	461	115	203	44.0	47 3	16.1	21.1	53.6	61.6
18	शिमोगा	450	586	272	406	64.3	72 0	91.4	51 5	77.8	83.2
19.	तुमकुट	479	666	237	403	58.0	67.8	29.9	42 4	67.6	76 7
20.	उत्तर कन्नड़	310	398	201	288	68.9	76.8	46.6	57.0	80.3	85.0

* (बैंगलूर देहात) नया जिला बैंगलूर से बना।

केरल

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारो मे)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	कासरगोड	*	396	*	355	*		*		*	
2.	कन्नूर	977	901	831	882	86.6		70.2		89.8	
3.	कायनाड	182	255	136	218	77.6		61 8		88.3	
4.	कोज़ीकोट	837	1063	710	1005	90.2		74.2		90.4	
5.	मल्लपपुरम	756	1122	667	1101	81 5		66.8		90.5	
6.	पोलकाड	630	857	527	802	76.5		59 8		88.1	
7.	त्रिचूर	878	1070	877	1099	88.9		79.0		94.4	
8.	एरनाकुलम	1007	1189	905	1121	92.0		82.4		94.5	
9.	इददकी	350	432	292	386	84.1		72.9		92.8	

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
10.	कोट्टयम	699	787	661	769	95.1		89.3		96.9	
11.	अल्पपूजा	921	827	884	838	93.5	-	84.5		95.1	
12.	पथनमतिष्ठा	@	487	@	510	@		@		@	
13.	कोल्लाम	1063	965	978	939	90.1		80.1		94.2	
14.	तिरूअन्नतपुरम	941	1165	846	1131	86.2		74.6		93.0	

(कासारमोड) नया जिला कन्नूर से बना।

(पथनमतिष्ठा) नया जिला इदुकी, एरमत्पी और कायूलेन से बना।

कलानूर का नया नाम कानूर

पालकाट का नया नाम पालक्काड है

त्रिचूर का नया नाम त्रिशूर

एलत्पी का नया नाम अल्पजहा

क्विलान का नया नाम कोल्लम

त्रिवेंद्रम का नया नाम तिरुवनन्तपुरम्

मध्य प्रदेश

		पुरुष साक्षरता (हजारो में)		*महिला साक्षरता (हजारों में)*		*शिक्षा की दर पुरुष*		*शिक्षा की दर महिला*		*लैंगिक समानता के सूचकांक*	
क्र. सं.	*जिले का नाम*	*(1981)*	*(1991)*	*(1981)*	*(1991)*	*(1981)*	*(1991)*	*(1981)*	*(1991)*	*(1981)*	*(1991)*
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	मौरेना	269	429	58	126	48.1	56.1	12.7	20.0	39.4	50.2
2.	भिंड	238	350	63	122	55.8	64.1	18.2	27.3	46.6	57.4
3.	ग्वालियर	301	448	127	219	61.7	70.8	31.4	41.8	65.3	72.5
4.	दतिया	68	104	17	35	50.4	59.1	15.1	23.5	43.7	54.9
5.	शिवपुरी	143	231	32	64	38.7	46.1	10.2	15.1	40.1	47.3
6.	गुना	171	271	43	87	40.4	47.4	11.7	17.4	43.5	52.2
7	टिकमगढ	111	190	29	58	35.6	46.1	10.6	19.0	44.7	56.8

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
8.	छत्तरपुर	136	233	41	89	36.0	45 5	12.9	20.4	50.6	60.1
9.	पन्ना	82	133	22	50	36.7	44 9	10.8	18 9	44.5	58.0
10.	सागर	318	469	128	228	57 3	65.4	26.3	36.2	61.3	70.0
11.	दमोह	157	228	56	104	53.2	59.1	20.6	29.9	54 8	66.1
12	सतना	234	362	73	153	48.8	58.0	16.3	26.7	49 4	62.1
13.	रीवा	235	383	65	159	48.3	58.4	14.0	26.0	44.0	60 8
14.	शाहडोल	202	349	56	136	36.3	74 .5	10.8	19.7	44.8	57 9
15	सिद्धि	124	240	23	68	30.6	41.0	6.0	12.7	32.4	46.1
16.	मंदसौर	298	444	91	174	57.1	67.8	18.4	28.2	48 4	58 1
17.	रतलाम	162	235	65	111	49.8	57.6	21.4	28.8	59.1	66.0
18.	उज्जैन	260	380	103	181	54.9	64.6	24.0	33.2	59.6	67.0
19.	शाजापुर	160	247	37	78	45.7	56.0	11.4	19.4	39.1	50.3
20.	देवास	161	264	48	101	49.4	60.0	15.7	25.0	47 8	57.8
21.	झंबुआ	62	112	24	48	20.1	23.9	58.0	10.5	56 6	60.9
22.	धार	159	267	52	110	37.4	46.5	12.9	20.2	50.5	60.0
23.	इंदौर	436	628	237	387	71.1	79.9	43.9	54.4	75.3	80.3
24.	वेस्ट निमार	274	395	94	181	41.8	46.4	15.3	22.5	52.7	64.6
25.	ईस्ट निमार	247	345	104	182	52.0	57.0	23.5	32.1	61.4	71.4
26.	राजगढ़	116	193	278	59	34.7	45.6	8.8	15.2	39.4	48.9
27.	विदिशा	149	241	47	99	45.6	56.7	16.5	26.8	51.7	62.7
28.	भोपाल	259	434	151	283	66.5	74.2	45.4	54.5	80.0	84.0
29.	सिहोर	121	200	30	69	44.1	55.1	12.1	21.2	42.0	54.3
30.	रायसेन	124	203	38	83	42.1	53.1	14.7	24.7	49.9	62.0
31.	बेतूल	177	273	77	156	47.4	55.5	21.3	32.9	61.5	74.1
32.	होशंगाबाद	247	355	103	181	58.3	65.3	26.8	37.0	62.0	71.3
33.	जबलपुर	598	819	288	468	63.7	72.5	34.1	45.3	68.7	76.2
34.	नरसिम्हापुर	148	229	65	126	54.5	68.2	26.4	41.3	63.9	74.6
35.	माडला	178	273	57	116	42.0	51.3	13.4	22.1	48.6	60.1

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
36.	छिंदवाडा	239	367	103	198	47.3	55.9	21.3	31 9	61 6	72 1
37.	सिओनी	155	234	61	123	47.0	56.5	18 9	30.5	57.1	69.8
38.	बालाघाट	268	377	117	219	57.6	67.7	24.9	39 3	60.6	73.5
39.	सरगूजा	203	357	60	140	29.8	40.9	9.3	16 9	46.8	57.8
40.	विलासपुर	623	973	205	413	52.2	61.9	17.4	27.0	49 8	60 4
41.	रायगढ़	272	397	99	188	45 4	56.2	16.5	26.7	53.2	64.4
42	राजनन्दगांव	230	354	76	164	49.4	60.4	15.9	27.7	49 0	63.1
43.	दुर्ग	484	738	218	413	62.6	74.0	28.9	42 8	62.8	73 0
44.	रायपुर	678	1035	253	492	54 6	64.6	20.3	31.0	54.1	64.8
45.	बस्तर	191	312	65	140	25.7	33.6	8.7	15.1	50 8	62.0

महाराष्ट्र

		पुरुष साक्षरता (हजारों मे)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	वृहद बाम्बे	3351	4257	2105	2935	83 5	90.7	70.3	76.2	90 3	90.5
2.	थाना	1031	1844	606	1230	69.9	77.0	47.5	58 2	79.9	85.3
3.	रायगढ	407	573	251	403	68.8	73.7	40.4	51.1	74.3	82 0
4.	रतनगिरि	554	443	437	377	71.5	74 0	43.8	51 7	78.3	83.8
5.	सिंधुदुर्गा	*	294	*	265	*	88.0	*	59 4	*	88 9
6.	नासिक	849	1209	447	759	67.7	70.9	38 0	47.1	71.2	79.4
7.	धूले	500	674	256	393	59.1	60.6	31.4	36.7	69.0	75.1
8.	जलगांव	809	1069	429	650	73.6	75.7	41.6	48.7	71 0	77 8
9.	अहमदनगर	764	1072	374	620	67.1	72.3	34.2	43.8	67.0	75.0
10	पुणा	1369	1977	822	1348	76.5	80.7	49.1	58 6	77.6	83 7
11.	सतारा	595	807	364	565	73.8	78.0	41.4	52.6	72.7	80 8

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
12.	सांगली	546	727	294	465	70.4	75 5	39.1	49.8	71.0	79.3
13.	शोलापुर	707	977	331	540	63.8	68.1	31 8	40.1	65.8	73 5
14.	कोल्हापुर	747	1043	370	668	69 6	80 0	35 5	52.9	67.2	79.3
15.	औरंगाबाद	622	684	229	340	61 6	69.2	23.9	37.1	55.4	69.0
16.	जालना	##	357	##	146	##	59.6	##	25.3	##	59.2
17.	पारभनी	407	563	135	243	53.9	60.3	18.6	27.2	50.8	61 7
18.	वीड	338	497	121	231	54.9	61 8	20 4	30.2	53.7	65.1
19.	नादेड	377	619	128	281	52.8	60.2	18.8	28.7	51 8	64.1
20.	उस्मानाबाद	542	369	226	195	58.8	65.4	25.4	36.6	60.1	71.2
21.	लातूर	##	494	##	263	##	66 8	##	37.5	##	71 4
22.	बुलडाना	447	601	217	342	71.0	72 5	36 0	43.1	66.9	74 1
23.	अकोला	552	736	309	469	71 6	75 0	42 5	50 6	73 9	80.2
24.	अमरावती	575	758	377	551	72.0	77 3	50 7	59.6	82.1	86.7
25.	यावतमल	449	625	224	372	61.9	68.2	32 4	42.7	68 2	76 5
26.	वर्धा	288	375	180	270	72.2	79.3	47.9	60.5	79.2	86.3
27.	नागपुर	845	1194	544	865	75 3	81.4	52 8	63.6	81.8	87 3
28.	भंडारा	531	705	266	445	70.0	77.5	35.0	49.2	66.8	77 6
29.	चन्द्रपुर	482	550	220	337	56.2	70 3	26.6	45.3	63.9	77.9
30	गडचिरोली	@	186	@	92	@	54.4	@	27.5	@	66 9

(सिधुदुर्ग) नया जिला रत्नागिरि से बना।

@ (गाडीचिरोली) नया जिला चन्द्रापुर से बना।

(लातूर) नया जिला बना (जिले का क्षेत्र स्पश्ट नहीं है।)

जालना नया जिला बना।

मणिपुर

		पुरुष साक्षरता (हजारो में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	सेनापति	33	37	15	21	47.7	44.0	23.4	25.3	65.5	72 9
2.	तामेनलांग	14	22	8	15	58 6	62.9	31.6	44.1	72.7	82.3
3.	चुरूचांदपुर	37	50	22	37	64 0	69 4	43.9	53.6	78 2	86.9
4.	चंदेल	12	17	7	10	49.3	58 6	29.0	37.0	76.9	76.8
5.	तोहवल	##	81	##	46	##	69 2	##	39 7	##	72.8
6	विशनपुर	##	51	##	32	##	70.8	##	44.4	##	77 1
7.	इम्फाल	257	251	132	171	68 9	87.5	35.7	60.6	68.1	81 8
8.	उखरूल	22	34	12	21	61.9	72 3	36 8	50.0	73 8	80 9

नोट : 1981-91 जिले
मनीपुर नार्थ का नया नाम सेनापति
मनीपुर बेस्ट का नया नाम तामेल यांग
मनीपुर साउथ का नया नाम चुरा चांदपुर
तेगनुपाल का नया नाम चंदेल।
मनीपुर सेन्ट्रल का नया नाम इम्फाल
मनीपुरं ईस्ट का नया नाम अखरूल
तोहवल का नया जिला बना।
विष्णुपुर नया जिला बना।

मेघालय

क्र. सं.	जिले का नाम	पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
		(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	जनता हिल	19	30	19	31	30.8	33 3	30.7	35.2	101 7	102.8
2.	इस्ट रवासी हिल	120	173	96	147	56.6	62 7	49.0	57.2	92.3	95.3
3	वेस्ट खासी हिल	28	45	22	40	43.3	50 0	38 0	46 0	90.9	95.7
4.	इस्ट गारो हिल	27	41	18	29	49.1	52.6	35.0	38.7	83.1	84.5
5.	वेस्ट गारो हिल	60	89	35	64	39.6	44 9	24.0	34.2	75.2	86 2

मिजोरम

क्र. सं.	जिले का नाम	पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
		(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	आइजाल	120	183	99	160	84.9	88.8	76.2	85.1	94.2	97.8
2.	लुंगली	28	40	20	32	76.7	81.6	63.4	74.4	89.8	95.1
3.	चिमंतपई	15	28	9	19	55.1	63.6	36.0	48.7	79.5	86 0

नागालैंड

क्र. सं.	जिले का नाम	पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
		(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	कोहिमा	77	128	41	93	66.8	71.5	47.1	62.0	81.1	92.3
2.	फेक	18	33	8	20	57.1	71.7	29.5	51.3	65.9	82.2
3.	जनहीवोटो	16	29	12	23	62.7	67.4	45.6	59.0	87.4	93.0
4.	वोखा	17	28	9	21	66.0	77 8	41.7	65.6	74.0	91.1
5.	मोकोकंचग	35	58	28	49	77.4	84.1	67.7	80.3	93.2	97.6
6.	तुनसांग	30	56	16	38	43.1	53.3	27.4	42.2	74 9	87.6
7.	मन	11	28	4	17	30.5	41.2	14.6	29.8	25.1	82.8

उड़ीसा

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	सम्भलपुर	545	744	213	373	56 7	64.6	23 0	33 4	57.1	67.8
2.	सुन्दरगढ़	321	444	151	252	56 6	65.1	28 9	39.3	66.8	74.7
3	केन्झर	239	324	93	163	51.9	57 5	20.6	29.7	56.6	67 9
4.	मयूरगंज	294	397	107	181	44.6	49.9	16 4	23.1	53.8	63 0
5.	वालेश्वर	626	852	310	510	67.6	71.2	-34.4	43 8	67.1	75 9
6.	कटक	1347	1785	725	1152	69.6	75.7	38 6	50 4	71.0	79.7
7.	डेकानाल	411	558	162	289	62.2	68.0	25 9	36 9	58.1	69.8
8.	फूलवानी	151	199	40	72	50 9	55.0	13.5	19 8	42 0	53.1
9.	बोलनगीरि	287	410	79	153	47 6	56 6	13.4	21.4	43.5	54.7
10.	कालाहांडी	203	304	50	99	37 4	45 4	9 0	14 7	39 4	49 0
11.	कोरापुर	284	397	100	164	27.8	31.3	9 9	13.0	52.4	58 6
12	गंजाम	594	779	224	372	55.7	59.2	20.1	27 8	53.6	64.1
13.	पुरी	872	1200	436	740	70.6	77.4	37 0	50 6	68 3	78.6

पंजाब

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	गुरदासपुर	391	567	252	378	60.0	69.5	42.7	53.4	82.4	86.1
2.	अमृतसर	533	705	339	480	55.4	61.2	40.7	47.7	83.8	86.9
3.	फिरोजपुर	268	400	144	241	47.5	54.9	29.2	37.0	75.0	79.7
4.	लुधियाना	537	814	359	583	64.8	71.8	51.3	60.7	87.4	91.0
5.	जालंधर	495	685	339	511	64.5	74.1	49.4	61.6	86.2	90.3
6.	कपूरथला	142	199	96	145	59.5	68.2	44.4	55.3	85.0	89.1
7.	होशियारपुर	372	488	240	367	68.4	76.7	48.2	61.5	82.1	88.7
8.	रूपनगर	211	308	125	209	65.4	74.0	45.9	57.1	81.1	86.4
9.	पटियाला	380	549	237	390	54.5	63.0	39.6	50.5	83.2	88.4
10.	संगरूर	264	404	143	255	41.7	51.5	26.6	37.4	76.5	83.2
11.	भटिंडा	234	347	120	212	40.5	48.6	24.1	33.8	73.6	81.1
12.	फरीदकोट	295	432	176	284	46.8	54.5	31.8	40.8	79.9	84.9

राजस्थान

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	गंगानगर	389	625	130	262	44.9	55.8	17.6	26.9	54.4	63.5
2.	बीकानेर	165	281	67	122	46.6	54.6	21.7	27.0	61.7	64.8
3.	चुरू	198	317	54	102	41.7	49.8	12.1	17.2	43.9	50.4
4.	झुनझुन	275	429	66	156	56.9	66.5	14.0	25.7	39.3	55.0

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
5.	अलवर	369	581	93	189	49.6	59.8	14.1	22.1	43.0	52.4
6.	भरतपुर	400	440	84	115	48.9	61.0	12.6	19.3	38.6	45.8
7.	धौलपुर	*	166	*	39	*	49.6	*	14.8	*	43.2
8.	माधोपुर	293	455	56	105	44.6	53.8	10.1	14.6	34.9	40.8
9.	जयपुर	279	1304	267	551	53.5	65.1	20.9	31.1	54.6	63.3
10.	सीकर	285	467	60	140	51.6	61.8	11.2	19.6	35.4	47.5
11.	अजमेर	350	503	148	235	57.2	70.0	26.1	35.7	62.0	66.6
12	टोंक	128	206	31	58	39.2	50.7	10.1	15.6	40.7	45.9
13.	जैसलमेर	32	68	6	14	30.2	44.7	6.6	11.5	35.7	38.3
14.	जोधपुर	322	504	110	184	46.0	56.2	17.6	22.9	53.9	56.6
15	नागौर	255	427	55	112	38.5	48.5	8.6	13.5	36.2	42.9
16.	पाली	221	331	52	104	42.6	54.4	10.8	18.0	39.1	49.1
17.	बाड़मेर	117	221	19	42	25.2	36.3	4.6	7.8	29.7	34.0
18.	जालौर	103	180	19	34	28.4	38.1	5.6	7.7	32.3	32.9
19.	सिरोही	82	126	26	44	37.5	46.8	12.2	17.4	49.0	53.4
20.	भीलवाड़ा	198	304	56	103	36.0	46.3	10.7	16.7	45.6	52.3
21.	उदयपुर	387	590	121	217	40.6	50.2	13.1	19.2	48.4	54.9
22.	चित्तौडगढ़	212	316	55	102	41.5	51.8	11.4	17.7	42.5	50.3
23	डूगरपुर	97	161	27	54	37.4	45.7	9.9	15.6	42.4	50.6
24.	बासवाड़ा	115	241	32	60	32.6	51.2	9.4	13.2	44.2	40.7
25.	बूंदी	92	153	23	46	37.1	46.9	10.9	16.0	42.8	49.3
26	कोटा	372	554	123	226	56.3	64.2	21.3	29.8	53.3	61.9
27.	झालवाड़	136	194	34	59	41.7	48.5	11.4	16.2	41.9	48.9

* (धौलपुर) नया जिला भरतपुर से बना

सिक्किम

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1	नार्थ	6	9	2	5	48.5	64 3	21.3	45.5	58.3	81.2
2.	ईस्ट	39	59	17	38	60.2	73.8	36 4	58.5	70.8	87.4
3.	साउथ	17	27	7	16	52 4	61.4	25.5	43.2	63 5	81.5
4.	वेस्ट	13	23	5	14	40 8	53.5	16.2	36.8	59.5	80.7

तमिलनाडु

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1	मद्रास	1253	1526	936	1227	86.6	90 8	69.5	78 1	88 9	92.2
2.	चेगई अन्ना	1077	1574	609	1081	69.9	78.0	41.7	55 7	74 2	83 1
3.	नार्थ अकाट अंबेडकर	1166	943	590	629	63.6	73.0	33.0	49.1	68.0	80.4
4.	धर्मापुरी	388	594	175	358	46.5	56.6	21.8	35.8	63.4	77.0
5.	त्रिरूअन्नामलाई	*	571	*	333	*	66.2	*	39.2	*	74.2
6.	साउथ अर्काट	1036	1408	481	821	59.1	66.5	28.2	39.9	64.3	74 7
7.	सालेम	865	1151	456	712	57.3	66.5	31.5	43.9	70.6	79.0
8.	पेरियार	539	700	268	432	58.6	69 1	30.5	44.2	68.0	77.7
9.	नीलगिरि	215	257	135	192	78.2	84.8	51.6	63.8	79 1	85 8
10.	कोयम्बटूर	987	1267	604	881	72 5	80 1	46.8	61.0	78.0	85.9
11	डिन्डीगुल कायदे–मिलत्	@	574	@	344	@	71.3	@	45.9	@	78.1

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
12.	त्रिचीरापल्ली	1047	1337	571	874	67.8	75.4	37.4	49.9	71 9	79.6
13	थनजौहर	1259	1529	748	1080	72 8	78 8	43 7	55.7	74.9	82 8
14	पुदुकोटेइ	306	409	136	252	64.0	472.8	28.2	44.2	61.3	75.7
15.	पसुमपन थैवर	$	335	$	235	$	78.4	$	50 2	$	78 4
16.	मदुरई	341	1108	760	728	69 6	74.2	48.4	49.9	73.2	80.2
17.	कामाराजा	$	512	$	340	$	76 9	$	51 1	$	79 8
18.	रामनाथपुरम	954	357	526	239	70.3	74.4	37.4	48.6	69.8	79.2
19.	चिदम्बरम	#	503	#	417	#	82 7	#	65.2	#	88 4
20.	त्रिनलवेली कटावम्मन	1085	814	738	595	74 8	77.7	47 9	54 6	78.6	82.8
21	कन्याकुमारी	478	601	404	547	79 3	88.1	68.2	80 3	92.4	95.4

* (तिरूअन्नामलाई–सम्बूरवरायर) नया जिला नार्थ अर्काट अम्बेडकर से बना
@ (डिन्डीगल–कायदे–मिल्लत) नया जिला मदुरई से बना।
(चिन्दम्बरमर) नया जिला तिरूनलवेली–कटावम्मन से बना।
$ (पासुमपोनबरनार) नया जिला तिरूनलवेली–कोटम्वमन से बना।
** (चेंगयअन्ना) चेंगलापट्ट का नया नाम है।
(नार्थ आरकोट अम्बेडकर) नार्थ आरकोट का नया नाम है।
(तिरूनलवेली कोटावमन) तिरूनलवेली के भाग का नया नाम है।

त्रिपुरा

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	वेस्ट त्रिपुरा	276	416	167	287	66.5	75.5	42.3	55.8	77.4	84.6
2.	नार्थ त्रिपुरा	140	204	83	138	60 6	68 9	38.8	50.4	77.4	83.9
3.	साउथ त्रिपुरा	122	202	63	122	53.5	62.0	29.4	39.9	70.3	77.8

उत्तर प्रदेश

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	उत्तरकाशी	47	69	7	22	54.9	68.3	11.0	23.9	28.3	50.7
2.	चमौली	101	138	33	75	71.4	78.9	22 0	41 0	47.8	68 9
3.	टेहरी गढ़वाल	113	160	24	65	60.4	70.8	11.3	27.2	33 1	56.2
4	देहरादून	250	362	138	232	70.0	81.0	49 5	61 9	81 1	85.6
5.	पौडी गढ़वाल	169	210	89	147	71.4	81 7	32 7	52 3	64 7	78 8
6	पिथौरगढ़	139	176	49	91	71.6	78.2	24.5	39.7	51.5	67 6
7.	अलमोड़ा	203	244	77	144	70 5	77.7	24 2	41.1	52.3	70.4
8.	नैनीताल	283	470	135	258	56.5	68.1	33.3	43.4	72 1	76.6
9	बिजनौर	378	545	129	235	46 0	51.2	18.5	25 7	55 5	65.1
10.	मुरादाबाद	458	734	152	283	34.1	40.7	13 7	18.6	55.0	60.9
11.	रामपुर	142	215	47	83	28 0	32 7	11.1	14.9	55.1	60.8
12.	सहारनपुर	559	533	211	228	47.4	52.7	22.0	26.7	61 0	65.5
13.	हरिद्वार	*	296	*	145	*	59.7	*	35.1	*	72.4
14.	मुजफ्फरनगर	491	712	175	317	49.0	55.5	21.2	29.1	58.1	67.0
15.	मेरठ	688	959	247	457	56 4	63.6	24.6	36.0	58.6	70.5
16.	गाजियाबाद	480	823	172	404	59.1	67.3	26.0	40.0	58 8	72 8
17.	बुलन्दशहर	527	754	141	264	52.4	61.1	16.2	25.0	53.6	56.3
18.	अलीगढ़	605	860	185	328	53.4	59.2	19.7	27.1	51.6	60.7
19.	मथुरा	382	530	88	158	54.6	61.6	15.8	22.7	42.2	51.4
20.	आगरा	683	761	248	313	53.9	62.1	24.1	31.1	59.3	64.7
21.	फिरोजाबाद	@	405	@	167	@	59 4	@	29 9	@	64.8
22.	ऐटा	388	525	108	185	46.8	52 6	16.0	22.7	48 6	57.9
23.	मैनपुरी	425	364	141	158	55.4	63.1	22.5	32.9	55.4	66.7

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
24.	बंदायू	247	365	65	110	28.1	33.2	9.3	12.5	47.2	52.1
25.	बरेली	366	538	122	217	36.8	43.1	15.3	20.9	56.2	63 3
26.	पीलीभीत	159	246	42	81	36.7	43.7	11.8	17 1	46.6	54.2
27.	शाहजहानपुर	269	383	77	137	36.4	43.1	13.3	19 1	50.6	59.0
28.	खीरी	272	441	65	148	37.6	41.3	8.5	16.7	43.2	55.4
29.	सितापुर	358	554	87	179	26.4	43.7	7 7	17.2	43.4	54.1
30.	हरदोई	401	610	96	197	35.6	49.7	10 7	19.8	43.3	54.5
31.	उन्नाव	349	500	103	207	50.9	52 3	13.9	25.1	48 9	63.2
32.	लखनऊ	524	830	263	503	38.3	69.5	13 8	49.4	74.1	82 0
33.	रायबरेली	335	521	93	205	43 0	53.3	12 8	22 8	44.9	58.9
34.	फरूखाबाद	449	643	164	292	51 9	59.6	23.7	33.3	60 1	69.6
35.	इटावा	458	621	183	300	59.5	66.2	29.2	38 8	68.7	72 1
36.	कानपुर देहात	1068	608	523	262	63.1	64.3	38 5	33.3	73.8	66.3
37.	कानपुर नगर	#	875	#	590	#	79 2	#	64 5	#	88.9
38.	जालौन	266	362	84	141	60.7	66.8	23 2	31 8	53.3	62.3
39.	झांसी	303	423	110	184	61.6	67.8	26.0	34.6	57.7	65.9
40.	ललितपुर	95	143	26	45	38.6	43 9	12 4	16.2	47.0	52.0
41.	हमीरपुर	247	359	62	113	47.9	55 3	14.2	21.0	43.8	52.8
42.	वांदा	291	426	59	115	44.1	51.3	10 6	16.7	36 8	46 9
43.	फतेहपुर	312	491	91	205	46 9	60 0	15 5	28.7	48.2	63.2
44.	प्रतापगढ	343	538	77	197	48.7	59 4	10.6	22.3	36.2	54 3
45.	इलाहाबाद	818	1270	221	449	51 1	59 3	15 8	24.3	45 6	56 3
46	वहराइच	284	438	52	116	29.7	35.9	6.5	11.5	34.1	46.2
47.	गोंडा	382	628	70	181	31.8	40.4	6.7	13.5	33 1	48 4
48.	वाराबंकी	303	474	64	161	34 5	44.5	8.7	17.9	38.3	55.3
49.	फैजाबाद	462	709	135	295	76 7	56.2	14.7	25 6	46.9	61.5
50.	सुल्तानपुर	357	595	90	223	43.8	55.2	11.3	22 4	40.6	56.8
51.	सिद्धार्थ नगर	%	296	%	85	%	40.7	%	13 0	%	47.1

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
52.	महाराजगंज	$	320	$	70	$	44.6	$	10.9	$	38.0
53.	बस्ती	579	607	133	218	39.2	51 7	9 7	20.6	38 8	55 7
54.	गोरखपुर	703	768	184	300	45.6	59.8	12 7	25.4	42.8	58.7
55.	देवरिया	643	990	153	336	46.9	53.9	11.3	19.2	38.7	51.9
56.	मऊ	^	338	^	278	^	57.7	^	49.5	^	92.2
57.	आजमगढ़	659	694	213	294	48.7	54.3	15.1	23.1	47.9	59.6
58.	जौनपुर	519	793	135	292	53.4	60.5	13.5	22.7	40.7	54 3
59.	बलिया	403	565	134	245	52.0	60 1	17.5	27.8	50.1	62.5
60.	गाजीपुर	397	611	128	246	52 1	59.8	16.7	25.3	40.9	58.9
61.	वाराणसी	875	1308	277	535	56.7	62.6	20.2	29.2	51.1	62.1
62.	मिर्जापुर	371	381	98	136	43.1	53.0	13.1	21.7	45.0	56.5
63.	सोनभद्रा	&	218	&	75	&	46.7	&	18.9	&	55.8

* (हरिद्वार) नया जिला सहारनपुर से, कुछ भाग बिजनौर और मुफ्फरनगर से बना।
@ (फिरोजाबाद) नया जिला आगरा और मैनपुरी से बना।
(कानपुर देहात और कानपुर नगर) कानपुर से संबंधित
$ (महाराजगंज) नया जिला गोरखपुर से बना।
% (सिद्धार्थ नगर) नया जिला बस्ती से बना।
^ (मऊ) नया जिला आजमगढ़ से बना।
& (सोनभद्रा) नया जिला मिरजापुर से बना।

पश्चिम बंगाल

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	कूच बिहार	362	523	163	289	49.0	55.7	23.9	33.6	64.8	74.4
2.	जलपाईगुडी	425	675	208	371	44.8	55.5	24.4	33.5	69.3	74.4

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
3.	दार्जलिग	275	392	148	291	60.3	67.1	37.3	55 0	75 3	89.6
4.	प. दिनाजपुर	444	653	195	353	44.1	47 8	21 0	28 3	63 6	73 5
5	मालदा	323	96	138	255	38 6	43.4	17.3	24.2	61.5	70 8
6.	मुर्शीदाबाद	592	901	316	543	39 1	44 0	21 8	28 6	71 3	78 1
7	नदिया	658	1000	414	689	52 7	59.9	35 3	44.8	79.7	85 1
8	उत्तर 24 परगना	3097	2379	1770	1667	65.8	74 2	42 4	58.2	77.3	87 4
9.	दक्षिण 24 परगना	*	1655	*	900	*	66.5	*	39.6	*	73 8
10	कलकत्ता	1390	1835	842	1268	79.2	89.4	69 7	78 9	92 5	93 0
11	हावड़ा	945	1283	547	860	70.7	77 1	48 0	59 8	79.7	86.6
12	हुगली	1063	1285	641	1018	67.6	77.8	45.5	59 2	79.6	85 8
13	मेदनीपुर	1898	2893	944	1920	66 9	80.1	35 2	57 3	68 3	82.9
14	वाकुड़ा	618	783	277	420	61.0	64 8	28 6	37 3	63.4	72 4
15.	पुरुलिया	422	580	116	213	54 0	60 5	15.6	23.19	44 3	55 8
16	वर्दवान	1284	1891	726	1234	60 2	71 4	38.7	52 8	77.2	84 3
17	वीरभूमि	449	629	246	375	51 3	57 0	29 4	36 5	72 4	77.5

केंद्र प्रशासित - अंडमान एवं निकोबार

		पुरुष साक्षरता (हजारो मे)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1	अंडमान	54	91	30	60	72 8	81 3	56.8	68 2	86 5	90.3
2.	निकोबार	8	13	8	8	56.8	72.2	35 9	53.3	65 5	83 8

केंद्र प्रशासित – चंडीगढ़

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	चंडीगढ़	170	253	111	173	879	82.7	69.3	73.6	92.6	93.5

केंद्र प्रशासित – दादरा एवं नगर हवेली

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारो में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर – महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. स.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	दादरा एवं नगर हवेली	19	31	8	14	44.6	52.5	20.4	25.5	60 7	64.5

केंद्र प्रशासित – दमन दीव

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	दमन	14	24	10	17	76 4	92.3	49 6	68.0	79 8	84.6
2	दीव	8	12	5	9	71.0	75 0	41.8	52.9	77.0	83.2

केंद्र प्रशासित – दिल्ली

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	दिल्ली	2283	3571	1416	2379	79.3	82 6	62 6	68 0	87.0	89 4

केंद्र प्रशासित – लक्षद्वीप

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैंगिक समानता के सूचकाक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1	लक्षद्वीप	13	19	9	15	81 2	86 4	55.3	75 0	81.8	92.6

केंद्र प्रशासित – पांडिचेरी

		पुरुष साक्षरता (हजारों में)		महिला साक्षरता (हजारों में)		शिक्षा की दर पुरुष		शिक्षा की दर महिला		लैगिक समानता के सूचकांक	
क्र. सं.	जिले का नाम	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)	(1981)	(1991)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
1.	पांडिचेरी	143	221	92	164	76.2	83 1	51 0	63 6	79 8	86.5
2.	कराइकल	39	52	27	41	78.4	83.9	53.1	65 1	81.0	87.5
3.	माही	10	13	11	15	92.4	97.0	81.5	94.4	96.7	98.4
4.	यानम	3	7	3	6	66.2	77.8	51.2	66.7	87 0	92.6

of the anthropologists and the child psychologists. The more we actually know of early childhood development in our own and other cultures the more we see how difficult is the child's task of making himself into the kind of personality that can adjust without strain to the multitudinous demands of a highly complex society, and the more we realize how few parents understand that the child's emotional needs are as definite and urgent from the moment of birth as are his physiologic needs. All the psychoneuroses, and perhaps all the functional psychoses as well, are malformations of the emotional life and they invariably have their roots in infancy and early childhood

Why, then, are they different? Why do some people develop anxiety neuroses, some hysteria, and some obsessive-compulsive states? Most psychiatrists would answer that there is probably a constitutional basis for the difference People differ in hereditary and congenital make-up Gross differences in physical make-up are easily discerned, even at birth There are long, thin babies, short, plump ones; the strongly formed and sturdy ones; and the delicate ones, who have a hard time to keep alive. How far these differences extend in the internal organs or what differences there are in nervous organization and in the chemical constituents of the body cannot easily be determined. It is reasonable to suppose that they vary greatly in different people Thus, for constitutional reasons, human beings may be predisposed to react in one way or a different way to the frustrating experiences of the formative period of life.

The psychoanalysts do not deny the influence of constitutional factors in the genesis of neurosis. Indeed, Freud himself always postulated them. But according to the psychoanalytic school the particular form the neurosis takes is due to the particular period in infancy in which the frustrating experiences arose whether in the nursing period, the period of toilet training, or the later years of infancy in which the child is attempting to come to terms with its relationship to its parents

However, the important thing for the layman to note in relation to the causes of neurosis is the cardinal fact that they have their roots in infancy and early childhood, and that it is here that prevention must begin. The child nurtured from the beginning in an atmosphere of security and freedom from fear is not likely to attempt to solve his future problems of adjustment by resort to neurotic symptoms.

TREATMENT OF THE PSYCHONEUROSES

Here we can sound a much more hopeful note than in relation to treatment in the psychoses the psychoneuroses are the conditions that are most successfully treated by psychoanalysis and by other forms of psychotherapy The milder neurotic conditions yield quite easily to such treatment, though more severe conditions are likely to need a thorough exploration of the mental life. The compulsion neuroses are the most difficult, and many therapists will not undertake them. In any case, effective treatment of a severe neurosis requires time and is expensive There are no public hospitals receiving such cases, since they cannot be certified as insane, although occasionally, as in the case of B. J, the physicians or a committing authority will stretch a point and declare the patient insane and entitled to care. It is easier in some states than in others to hospitalize neurotic cases. There are always a number of them in the New York public hospitals Psychoneurotics are often desperately in need of hospital care and less able to sustain themselves in the community than some of the actually psychotic But until the public becomes better acquainted with their needs and what can be done for them, the majority will continue to shift for themselves as best they may

Numerous "rest homes" and sanitariums cater to the people who are able to pay. Some of them offer psychotherapy, most of them provide various kinds of physical treatment, baths, physiotherapy and electrotherapy, occupational therapy, and so on Some doctors give shock treatment in neuroses Since psychotherapy is the only form of treatment likely to effect a permanent cure (unless we consider the cases in which cure is claimed by metrazol or electric shock therapy), one need not expect too much from a period of residence in a sanitarium that does not employ psychotherapy, even though many people are benefited by a period away from their homes or usual pursuits

For the poor, there are in a number of the largest cities clinics or outpatient departments connected with the general hospitals This service probably will be expanded in the future, when the lessons learned from the war can be brought home and applied to the citizens at large Clinics of this sort are being developed by the Veterans Administration for the treatment of veterans suffering from neurosis.

It may be asked, "What is the function of the family and friends in these cases? If there are so few facilities for their treatment that

the average person can afford, what can be done by friends and relatives to help the sufferers from neurosis?"

Very frequently indeed the family accepts the neurotic's own valuation of his condition and aids and abets him in it He is ill, they think, or he is very nervous and must be spared any stress or strain. The children must not play with the normal noisy abandon of childhood, for the neurotic mother cannot stand noise They must keep out of the way of the neurotic father, their presence annoys him. The husband must spend his savings or mortgage the future to pay his wife's doctors and surgeons. The wife must go to work, against her inclinations, to keep up the home, since the husband is unable to work. Neurotic men and women often ruin their own lives and destroy the happiness of their homes by seeking a way out through alcohol or drugs Often enough, for the same reason, they are driven into crime. It cannot be too strongly emphasized that *very many unemployables, very many alcoholics and drug addicts, very many criminals,* are fundamentally neurotic personalities, and all attempts to deal with them on the basis of their overt behavior are doomed to failure, since the cause of it remains

Perhaps the best thing that relatives can do is to understand the situation, learn to consider it as not the neurotic's fault and adjust themselves to it so far as possible. All the neurotic's whims and foibles do not need to be catered to. All his irritations and recriminations do not need to be taken to heart When a person has done all that he knows how (or can learn to do) to provide for the sufferer's comfort, he can go on his way with a clear conscience. There is no virtue in sacrificing oneself unduly to something that cannot be helped, and certainly children should not be sacrificed to a neurotic parent

All this can be said in full recognition of the fact that to the psychoneurotic his illness is very real The anxious person suffers pains and attacks that may be terrifying to him, the neurasthenic's fatigue is heartbreaking, the hysteric's pains and aches are as real as anyone's, the obsessional and compulsive states may break the sufferer completely; but that is no reason why families should become involved with the sufferers until they are broken themselves If we are ever to stem the tide of neurotic illness which seems to increase ever more and more as our civilization gets more complex, the layman must learn to understand it as *a form of mental illness,* frequently curable if taken in time and treated by a competent psychiatrist The attitude that it is "only nervousness" and not to be

taken seriously must be overcome. Above all, he must learn that the period of childhood is the breeding ground for the psychoneuroses and that they never will be stamped out until children can be born into families that know how to care for them and train them for normal maturity.

READING LIST

Alexander, F., and T M French· Psychoanalytic Therapy, New York, Ronald, 1946.

Cobb, Stanley· Borderlands of Psychiatry, Cambridge, Harvard, 1943

Dunbar, H. Flanders. Emotions and Bodily Changes, ed. 2, New York, Columbia Univ. Press, 1938.

———: Psychosomatic Diagnosis, ed 3, New York, Hoeber, 1945

English, O S., and G H J Pearson. Common Neuroses of Children and Adults, New York, Norton, 1937

———: Emotional Problems of Living, New York, Norton, 1945

Fenichel, O · The Psychoanalytic Theory of Neurosis, New York, Norton, 1945.

Freud, Anna, and D. T. Burlingham War and Children, Medical War Books, New York, Internat Univ. Press, 1943

———: Infants Without Families, Medical War Books, New York, Internat Univ Press, 1944.

Fry, Clements C., with the collaboration of Edna G Rostow. Mental Health in College, New York, Commonwealth Fund, 1942

Lorand, S : Psychoanalysis Today, New York, Boyd Printing Co, 1944.

Mira, Emilio. Psychiatry in War, New York, Norton, 1943

Preston, George H. Psychiatry for the Curious, New York, Rinehart, 1940

Prince, Morton. The Dissociation of a Personality, New York, Longmans, 1906.

Ross, T A · The Common Neuroses ed, 2, Baltimore, Wood, 1937

Zilboorg, Gregory: Mind, Medicine and Man, New York, Harcourt, 1943.

13

The Psychopathic Personality

After the psychiatrist has classified his patients into the different groups we have been discussing, has made due allowance for the organic conditions and the exigencies of life that cause people to "lose their minds" or suffer nervous breakdowns; after he has ruled out the effects of drugs and alcohol, and the cases for which no actual cause can be discovered, as well as the vast number of neurotic conditions and milder personality disorders, he is left with a large number of people who do not fit into any classification, and whose behavior cannot be satisfactorily explained by any theory of physiologic disorder or psychologic maladjustment so far offered These persons the psychiatrist usually calls *psychopathic personalities*. He will tell you that this diagnosis is a sort of waste basket into which go all the cases that cannot be rather definitely diagnosed otherwise.

The term is confusing, because the word *psychopathic* is used in other ways, as we have seen in the earlier chapters of this book Literally it means *mentally diseased,* and is used to designate the whole group of mental illnesses, as well as to describe a person whose mind is not functioning normally, as when we say "a psychopathic case " Again, there is no general agreement among psychiatrists as to what type of personality should be designated psychopathic Some would limit it to a certain type, which they call the constitutional psychopath, implying a hereditary or congenital condition. The diagnosis "constitutional psychopathic inferiority" was formerly made, a mouth-filling term indeed, but its meaning was always rather vague

The older psychiatrists, including Kraepelin himself, apply the

term *psychopathic personality* to a large variety of maladjusted persons who are not definitely psychotic, nor do they show the classical neurotic features of anxiety, hysteria, compulsions, and so on They are lazy, eccentric, quarrelsome, fanatics, emotionally unstable, "moral imbeciles," vagrants, sadists (abnormally cruel persons), habitual criminals, kleptomaniacs, pyromaniacs (fire-setters), sexual perverts, pathologic liars, swindlers, et cetera When closely studied, many of these cases turn out to be neurotics, unrecognized praecoxes, or cases of simple adult maladjustment—by which is meant the people who never have grown up emotionally and cannot adjust themselves to the world as they find it in maturity There is always a certain number, however, who are neither neurotic nor psychotic, nor are they cases of simple adult maladjustment The psychiatrist has these people in mind when he talks about "the psychopath."

Since so many of these people are antisocial, alcoholic, drug addicts, sexual delinquents, or criminals of various types, they would seem to merit careful psychologic and psychiatric study, with experimental treatment in special institutions. As it is now, they inhabit our jails, penitentiaries and almhouses, or are in and out of institutions of various sorts, costing society vast sums of money, without being cured of their pernicious habits or helped to a better adjustment The layman almost invariably considers the psychopath's behavior his own fault, willfully engaged in, and demands his punishment, regardless of the fact that punishment is the one method that has been tried from time immemorial without ever being effective Until we understand more about the psychopath, until we know the real motives of his behavior, and not merely the reasons he gives for it or the motives that look plausible to other people, we stand small chance of being able to help him

From what we do know of the psychopathic personality, we can say that it is characterized by rigidity The psychopath *is* what he *is,* and, though for a time he may camouflage his real nature or put on a good front, fundamentally he does not change Many things about him suggest the child—or even the infant His distinguishing feature is his egocentricity, he has the extreme self-centeredness of the very young child, and is incapable of any real love or affection for anyone except himself. Nor is he capable of objectivity toward others, he cannot put himself in another's place and realize how his actions may affect the other The world exists for him alone, and anything that interferes with his enjoyment of it or his designs

upon it is pushed ruthlessly out of the way. He has feeling enough, and his emotions are often violent and unstable, but his feelings are always concerned with himself. He may be a braggart and a boaster, inventing great tales of his own prowess and adventures. He often seems to lose all distinction between truth and falsehood, employing either as best suits his purpose, and often in situations where his stories can be easily checked In childhood he is a poor pupil, learning only what he wishes. Unlike the mental defective, who learns, if properly taught, up to the limit of his capacity, the psychopath cannot be induced by any method to learn what he does not wish to It is often said that he is unable to learn from experience. He is the fellow who, having once been burned, braves the fire again, he thinks that this time he will get away with it He may be intelligent, up to the point of genius, or he may be unintelligent, down to mental deficiency. The combination of mental defect and psychopathy produces the *defective delinquent,* who is likely to be a dangerous person because his poor intelligence exercises no caution or restraint over his behavior Some of our more progressive states have separate institutions for this class of defectives, since they are troublemakers in the training schools and cannot be dealt with as the other "children" are.

Perhaps it is not quite right to say that the psychopath does not learn from experience He always learns what it suits him to learn. One of us once dealt with a notorious criminal, who was serving a 99-year sentence in a Federal prison for robbery of the mails. He had behind him a spectacular career, having perpetrated several daring robberies and being an "escape artist," once having succeeded in concealing his identity and eluding the law for eight years. Then he had robbed the mails, and here he was again In discussing the matter with him, he was asked why a man like him, an intelligent and likable chap, could not go straight when he had the chance Why must he repeat his pattern, do the same thing again, even though he knew how high the chances were that he would again be caught?

R G asked us to write the question and give him time to study it. In a few days he sent us a letter containing the answers from eight men who, like himself, were "repeaters." R. G wrote that he had circulated the question among these eight, who he thought might be interested in it They all said the same thing in substance —that they expected to get away with it each time "We try to learn from the mistakes we made the last time," one man wrote, "or

the other times when we didn't get away with it; there are a good many fellows we know who don't get caught We are just the fellows who are not quite good enough "

This type of person really feels that he owes society nothing He feels that it has not given him a square deal, and he sees no reason why he should attempt to conform to its standards

The average psychopath is very unstable emotionally Unable as he is to bear frustration, he "blows up" upon the slightest provocation, or reacts with moodiness and ugly tempers This temper tantrum frequently turns into a real psychosis (called a "prison" or "situation psychosis" because it is so evidently a reaction to a certain situation), when he finds himself in prison He may go into a tearing rage and attempt to destroy everything he can lay his hands on He may sink into a stupor or develop a confusional state in which he is hallucinated and delusional He literally cannot bear the restraint and the confinement of prison life. When sent from the prison to the psychopathic ward or the hospital where conditions are less prisonlike, he may recover fairly rapidly The layman is inclined to think that under such circumstances the psychopath is "malingering," only pretending to have a psychosis However, malingering is rather easily detected, very few people can actually simulate a psychosis The mental disorder in such cases is very real

The relation between psychopathy and genius is stressed by some writers The single-mindedness with which the genius often pursues his course, sacrificing everything—wife, family and friends—to his work, caring for nothing except what he has set out to do, certainly recalls the self-centeredness of the psychopath The life story of many a genius, when truthfully told, reads like the case history of a psychopath The two may be alike in their individualism, their emotional instability and their childish outlook upon life The genius is notoriously childlike, but the psychology of genius is not yet well understood, and it is probably more nearly allied to neurosis than to psychopathy.

Many a psychopath is an attractive person, with winning ways and even charm when he (or she) wishes to use it There is "something about him" that leads people to believe in him, to condone his faults, to keep hoping for his reformation A parent holds on to a psychopathic child, covering his misdeeds and forgiving him "unto seventy times seven " A husband yields to a psychopathic wife, even though he knows her tears are false and that he has suffered tortures at her hands and will suffer them again A wife endures poverty,

wretchedness and even abuse from her husband, but cannot find it in her heart to leave him.

Much has been written about the psychopathic personality, and many case studies appear in the literature Anyone who deals with delinquents and criminals, with behavior problems in school or industry, with the more or less maladjusted on the fringes of our society, or in any situation where large groups of people must be handled—as in the military service—meets the psychopath more or less frequently Not all of them are antisocial. Many live out their lives within the shelter of their families or manage by hook or by crook to keep out of the clutches of the law There are many irresponsible persons, thorns in the flesh to their families and friends, who lack the drive to get into much trouble but show the characteristic rigidity, the egocentricity and the childish attitudes toward life that characterize the psychopath There certainly are mild or abortive cases, who live their lives in a fairly acceptable fashion until some unusual stress occurs, to which they react with the characteristic attitude of "I'll do or have what I want—or else " In short, there are many varieties of the psychopathic personality We may look at a few of them.

SOME DIFFERENT TYPES OF PSYCHOPATHS

Mr A. M, who had been a second lieutenant in the Army in World War I, after his discharge assumed the title of captain He met and married a young schoolteacher of good family, to whom he told an interesting tale of his past life, "very briefly," as he said "I was born in China, my father being an Army officer—a West Point man—stationed in the Philippines He sent my mother to Shanghai so that she might have better care than she could get in Manila, and I lived my first three years there Then my father died, and my mother and I came back to the States. I had my prep schooling at Groton, then three years at Harvard, but I wasn't getting what I wanted in economics and history, so I went to Berlin and got my degree there. My mother remarried and my stepfather got all her money, and I had to come home. Naturally, since my father and my grandfather had been Army men, I joined the Army There you have my life history I don't remember my father, but he wrote monthly letters to me from the time I was born, in which he set down rules by which I have tried to guide my life "

The wife could easily have checked up on this story, but she ac-

cepted it and him for better or worse. It proved to be very much for the worse. He was attentive and loving, told great tales of the jobs he was about to get, but he never earned a penny, and it became necessary for her to support him and the growing family. Mr. M. made friends easily but held none of them. He always had grandiose schemes on hand, but never put them into effect. On more than one occasion he forged checks which the wife in some way or other made good, so that he was kept out of the penitentiary. He drank more and more heavily, turning night into day, so that his family seldom saw him until dinnertime. He continued to be suave and kind to his wife and family, apparently devoted to them, without ever contributing anything to their support. Several times his wife attempted to leave him, but always he found her, and with tears and threats of suicide persuaded her to return to him. Kidney disease, aggravated by alcohol, finally ended his career at the age of thirty-eight.

This man's whole life was a tissue of falsehoods. The truth of his childhood was that both parents were servants in a wealthy family, the father serving as coachman for a year or two, but deserting the mother when A. M. was an infant. She knew nothing of his whereabouts until she was informed of his death in the American Army in the Philippines. Upon this slender thread of fact A. M. had strung his elaborate fancies. He had grown up in Buffalo, with a stepafther (who was very kind to him) and left school in the seventh grade. He was, however, a bright youngster, according to his teachers, but refused to study things he did not like. He was a voracious reader and had a store of miscellaneous but poorly organized knowledge. In the early teens he began stealing, having always taken what he wanted from his mother and stepfather. He was tried on several jobs but could hold none of them. He appeared in juvenile court more than once, but his mother always managed to keep him at home. In the late teens he became a man about town, spending large sums of money whose source was unaccounted for until it was discovered that he had forged his stepfather's name to several checks, gambling with the proceeds and making large winnings. This time his stepfather was wrathful enough to let the law take its course, but in the meantime the young man was called into the Army and, in the hope that it would be good riddance, the charges were dropped and he was adjured never to show his face in Buffalo again. He had been a member of the National Guard with the rank of second lieutenant, and he managed

to survive in different camps in the South for the duration of the war. Thereafter he was "Captain" M., and his Army experiences grew in number and proportion in his imagination each succeeding year.

With variations according to intellectual and educational status and the circumstances of the person's life, this is a typical case. Fantastic lying, swindling and forgery are common means taken by the psychopath to get what he wants.

Mrs. C. H. is a psychopathic woman who was admitted to the hospital at the age of fifty-two with a diagnosis of alcoholism. She was a strikingly good-looking woman, impressing all who saw her as a very superior type. She had a long history of alcoholism, with many "cures," residence in sanitariums, and so on, till the family's patience and money were exhausted. After the parents' death the sisters and the brothers had refused to support her any longer, and she was admitted to a State hospital. Her intelligence was well preserved, but she had no emotional appreciation of her situation. She smoothed over her behavior, giving very plausible explanations and telling a story that had small resemblance to that given by the family. According to her, she had lived a blameless life and had begun drinking only a few years after the death of her husband. She had held very responsible positions, so she said, and had only occasionally drunk to excess, when her loneliness became too great to be borne. She was very bitter toward her family, who, she said, had hospitalized her merely through spite because she would not let them "run her affairs."

As a matter of fact, Mrs. C. H. had had a career of delinquency, beginning in early adolescence. The other children had all grown to maturity normally, though one brother developed a neurosis in middle life. Mrs. H. had been a willful, stubborn girl, who always had her own way, was given to impulsive behavior and, though she was considered the "brightest of them all in school," she frequently played truant and only reached the eighth grade. At fifteen she ran away from home with an older boy, but was found and brought back before the marriage they had planned was carried through. She soon ran away again, apparently alone, and was found some months later working in a factory in New Jersey. She declared that she was married and refused to return home. The parents, fearful of publicity, did not force her, but tried to keep in touch with her. It developed that she was not married but was living with a much older man. She left him after a while, and for an interval of a year or two

made her own living and appeared to be much more stable. She soon began drinking, and for a number of years was best described as "alcoholic and promiscuous" At thirty she married a man who himself was an alcoholic and for ten years she nursed him through one spree after another, while drinking very little herself After his death she began again, and for the succeeding ten or twelve years she was usually under the influence of liquor. When she was sober, she was a good practical nurse and had no difficulty in supporting herself. However, she was as her parents said, "bossy," and if she could not have her own way with a case, she would walk off and leave it, no matter how critically ill the patient was

To cite a somewhat different type, we may take a glimpse at Mrs B. F, who was admitted to the hospital at sixty, recovering from an overdose of veronal, which she had taken while in a temper tantrum

Mr. and Mrs B F were wealthy and socially prominent people The night before the veronal episode, they had attended a reception for some visiting diplomats, and the husband had been rather too attentive, so Mrs B. F. thought, to the beautiful wife of an Embassy attaché She herself had flirted outrageously, according to her husband, who felt that, even at sixty, she was an uncommonly handsome and attractive woman, as indeed she was On the other hand, Mrs. F would not allow her husband the privileges that she claimed for herself, and when they reached home she began to upbraid him In telling the story, the husband tried to take the blame upon himself, but evidently there had been a violent quarrel, in the midst of which the lady locked herself in the bathroom, after threatening to end it all When after a half hour she had not reappeared and her husband could get no answer from her, he aroused the butler, who broke open the door and found Mrs F. huddled on the floor in a stupor The husband was so upset and so convinced of her "temporary insanity" that he was anxious to discuss the whole story with us, which he probably would never have done otherwise

Mrs B F had been a beautiful girl, willful and spirited, the only daughter of wealthy parents, who never had understood her or been able to manage her She always seemed to be in trouble with governesses and tutors and was sent to a fashionable girls' school, where she refused to stay, and demanded to be taken abroad She did spend a year in a school in Belgium, and another in France, but insisted on returning home at sixteen She could not be formally brought out for a year at least, but she managed to meet several

young men, among them Mr. B. F., whom she decided to marry, and her engagement was announced at her coming-out party.

Their long life together had been a strenuous one. The husband was fatuously in love with her and remained so, his inability ever to feel sure of her attitude toward him probably doing its part to keep him interested. Mrs. F. never had seemed to care so much for anyone as for herself and refused to have children on the ground that it would ruin her figure. She had no intimate women friends; even her mother declared that she could never get close to her, either in childhood or in later life. She was a notorious flirt, and on one occasion left her husband for another man, but came back in two weeks, calmly taking forgiveness for granted. "You can't deny her anything," her husband said, "she's like a child, a sweet and petulant child who's just bound to have her way. You don't know how winning she can be when she wants to."

As she grew older she became more unreasonable, and her temper tantrums increased in violence. Once she had locked her husband in his room for twenty-four hours without food or toilet facilities. Another time, in a rage at him, she had piled paper in the middle of the floor of his room and set fire to it, almost burning the house down. She had threatened suicide a good many times, but never had attempted it before.

During the weeks that Mrs. B. F. remained in the hospital she was given tests and personality studies and a number of interviews to determine as much as possible of her personality make-up. There was no apparent defect in the intellectual sphere, and in spite of her scrappy education she rated high on intelligence tests. Personality tests all showed her to be very self-centered, with a restricted field of interest and little of what is usually called moral sense. She displayed no feeling of responsibility toward her husband and was rather pleased at the predicament in which she had placed him. She had no explanation for her behavior, waving it airily aside as "just too impulsive, I guess." In short, she was a self-centered, egotistic child, in spite of her sixty years.

It may be thought that a person like Mrs. B. F. was merely a spoiled child, whose husband had continued the spoiling; but the childishness was too deep seated, and her incapacity to develop any real affection for anyone too marked. She was an emotionally stunted individual, no matter what the cause.

There is another type, not so frequent, but well known to the criminologist, in whom the traits of stubbornness, egocentricity and

general viciousness seem to be raised to the nth degree. Their histories show that from infancy they have displayed the traits of "adamantine stubbornness, temper tantrums, utter selfishness, complete egocentricity, viciousness, sadism and a total lack of capacity for any substantial postponement of gratification"* They have regard for nothing and nobody They can commit fiendish crimes without a qualm and die defiantly or with curses on their lips The total lack of the common human attributes make this kind of person appear to many people as "dangerously insane," but he does not fit into any diagnostic category or display the symptoms agreed upon to mark the psychotic person He is keenly in touch with reality and often displays a cunning ingenuity in dealing with it He seems to be an evolutionary sport who is hardly a human being, even though he has the semblance of one.

The induction of millions of men into the armed forces raised the problem of the psychopathic personality and the means of its identification. Military authorities unanimously agree that though very occasionally such a person finds in war a socially approved outlet for his aggression and does adjust to the service, in the great majority of cases the psychopath is a nuisance, a troublemaker, or a menace to the morale of the service and he is not inducted, or, if he does get in, he is discharged as soon as his condition has been discovered.

CAUSES OF THE PSYCHOPATHIC PERSONALITY

A number of theories have been advanced as to the causes of this condition. Many psychiatrists believe that there is always a large constitutional factor, or that heredity plays a predominant part. Others find that heredity is not especially significant Dr Sydney B Maughs, who made an intensive study of ten cases at Saint Elizabeths Hospital that had been diagnosed "without psychosis—psychopathic personality" found that in the five cases who were arch examples of the type neither heredity nor environment seemed to play a predominant part † In Dr. Heaver's study‡ one-half of the entire group had forbears who displayed psychopathic traits Still more striking was the finding that only two mothers out of the

* Heaver, W Lynwood A study of forty male psychopathic personalities before, during, and after hospitalization, Am J Psychiat 100 343, 1943

† Maughs, Sidney B A concept of psychopathy and psychopathic personality, J Criminal Psychopathology 3.494–516, 664–714, 1942.

‡ Heaver, *ibid.*

whole group of forty appeared to be well adjusted. The other thirty-eight were "obviously inadequate and poorly adjusted women." Other studies agree that early childhood environment may have much to do with the production of the psychopath In the histories of these people, broken homes, poorly adjusted parents, alcoholism, mental disorder of one type or another, criminal behavior and similar conditions occur over and over. Many times there is a parent with psychopathic traits, which merely seem intensified in the child

The psychoanalysts find the cause, in some cases at least, in the hostile and destructive aggression which they believe to be a trait of every infant, through unwise handling it is not overcome or diverted into normal channels. Workers with children stress the role of parental, and especially maternal, rejection The child who has no experience of love, who spends his infancy without any satisfactory relationships with another person, does not learn how to love or to feel with another He knows only his own inner drives and the necessity of satisfying them in any way possible His personality will develop around himself, and he necessarily becomes egocentric Upon such a foundation the various other psychopathic traits will naturally develop.

In this, as in others of the mental aberrations, we do not know enough yet to be sure of all the causes that may enter in to produce the condition It is safe to say, however, that the individual who has a happy and well-adjusted childhood seldom, if ever, develops into a psychopathic personality

TREATMENT OF PSYCHOPATHIC PERSONALITIES

The psychiatrist is apt to consider the psychopathic personality a poor risk for treatment. The majority take a rather hopeless attitude and refuse to have anything to do with him If he gets into the hospital, he is usually discharged as soon as possible as "without psychosis" When he does have a psychosis, it usually can be trusted to subside in a hospital atmosphere, and he is then returned to prison or discharged to relatives or into his own custody. The mental hospitals are not set up to care for the psychopath. He is a troublemaker there, as the psychopathic defective is in the training schools for the feeble-minded. Yet he frequently cannot behave himself well enough to remain at large in the community If he commits major crimes, the penitentiary cares for him, where, as we have

noted, he frequently becomes psychotic. The majority, however, do not commit major crimes. They are alcoholics, drug addicts, prostitutes, petty thieves, in and out of the jails No institution has as yet been developed to receive these people, to keep them securely segregated from society at large, to provide them with all the possible outlets for their energies—sports, games, work, recreations and hobbies in what they can or will engage—and to see to it that they conduct themselves in as nearly normal a fashion as possible For the antisocial psychopath such an institution would be frankly custodial. Many of them might never be able to adjust in the community, and their residence would be life long However, they could be self-supporting, and experimental psychiatry might be able to discover a way to help them to an approximate adjustment.

In a few instances psychoanalysis or some other form of psychotherapy has been attempted with the psychopath. Some successes have been reported,* especially with the milder cases or those in which there are neurotic features With the true psychopath it is almost impossible to establish rapport He is more than likely to utilize the relationship with the therapist as a means of furthering his own schemes, or he refuses to recognize that he has any problems or that there is any way in which the therapist can aid him

The layman may ask, "How early in life does the psychopath identify himself?"

As may be inferred from what has been said, the more severe types show their peculiar characteristics in childhood, even in infancy The child who shows extreme stubbornness and refusal to learn, with aggressive insistence upon his own way, or the unteachable child who, while undeniably bright, may yet act with no more "sense" than the mental defective, who, as he grows older, is entirely selfish and displays no affection for anyone, may be suspected of being headed for a psychopathic career The symptoms and the behavior that these children show as they grow older are numerous, they may learn to camouflage their real nature for a certain length of time, to flatter, to promise, to pretend, or they may develop along more aggressive lines Others may not show the more truly psychopathic traits until adolescence, though the history practically always reveals maladjustment, more or less severe, in childhood It must be remembered, however, that it is not the overt behavior that is of so much importance as the attitude of self-cen-

* Aichhorn, August Wayward Youth (especially Chap 8, "The Aggressive Group"), New York, Viking, 1935

teredness and the lack of normal love attachments. Again, we must note that psychopathic behavior in childhood, such as emotional instability, temper tantrums to the point of murderous frenzy, stealing, setting fires, aggressive sex behavior, and so on, may be due to an organic brain disease, such as encephalitis, epilepsy, or brain injury, and we should not jump to conclusions without thorough physical and mental study When a person suspects that he is dealing with a psychopathic personality in the making, he should, if possible, have expert psychiatric advice

Young people, perhaps, more than anyone else need to know the earmarks of the psychopath and to learn to avoid him. Marriage with such a person almost invariably means trouble and, regardless of the factor of heredity, the child brought up with a psychopathic parent has a poor chance for normal development.

The psychopathic personality is a challenge not only to the psychiatrist but to all thinking people as well. Since the old method of dealing with him as a responsible human being has failed, we must be willing to try other methods, even though they are frankly experimental, nor must we be afraid to embark upon a long-term program The psychopathic state is pre-eminently a life-reaction disorder, and any measures that have a chance of success must take account of that fact The problem of the psychopath is as much social and educational as psychiatric, and no method of dealing with it can hope to succeed without the active co-operation of the intelligent layman.

READING LIST

Aichhorn, August· Wayward Youth, New York, Viking, 1935

Bender, Lauretta, and Paul Schilder Aggressiveness in children, Genetic Psychology Monograph, No 18, 1936. (Nos. 5–6)

Cleckley, Harvey M · Mask of Sanity, St Louis, Mosby, 1941

Henderson, D K · Psychopathic States, New York, Norton, 1939

Kahn, Eugen: Psychopathic Personalities, New Haven, Yale, 1931

Karpman, Ben. On the need of separating psychopathy into two distinct clinical types the symptomatic and the idiopathic, J. Crim Psychopath 3·112–137, 1941.

Lindner, R M : Rebel Without a Cause, New York, Grune & Stratton, 1944

Symons, A J. A.· The Quest for Corvo, New York, Macmillan, 1934.

14

Mental Aberrations and War

At present the entire world is recovering from a war more devastating, more terrible, more unimagined in its consequences than any war in history, and from its aftermath Not only combatants, but civilians, women and children, the sick and the infirm and the old, have been intimately involved in it Even in this country, far removed from the scene of combat, the stresses and strains that war engenders were immediate and marked. The right of the individual had to be subordinated, even more than in times of peace, to the welfare of society Everyone, civilian and soldier alike, was expected to tolerate more stress than he had before. Problems of adjustment were numerous and serious In time of war, the mental as well as the physical health of both the civilian population and the military forces becomes of great concern to those charged with maintaining efficiency and morale and is of concern to every intelligent and well-informed layman as well.

EXTENT OF THE PROBLEM

War demands an immense psychiatric toll At present over 60,000 veterans of World War I are receiving compensation of approximately $60 per month for psychiatric disorders which have been legally determined to be due to their service in that war This number is equivalent to about 1 7 per cent of all living veterans of World War I It has been reliably estimated that to date the cost of compensation and hospitalization of the psychiatric casualties of World War I is over $1,000,000,000, and that furthermore the peak

of admissions to Veterans' Hospitals of those servicemen has hardly been reached. over 29,000 are now patients in mental hospitals

The indications are that, although the rate of rejections by Army induction centers for psychiatric defects was substantially higher in World War II than in 1917–18, the incidence of mental disorder in the armed forces was likewise higher; in fact, Strecker and Appel* state that in the winter of 1944–45 nervous and mental disorders accounted for 50 per cent of all Army discharges for disability Does this mean that the present generation is more unstable than the last? Not necessarily It is perhaps not strange in view of the increased violence of warfare, the marked increase in mechanization and speed of movement, as well as the vast variety of places in which the war was carried on, yet, on the other hand, it had been hoped that the process of selection might be more effective and might thereby bring about a decrease in the incidence of nervous and mental breakdown. This hope, for several reasons, has not been realized.

Let us consider first the soldier It is a truism that many factors in military life are far different from those found in civil life These factors call for an active process of adjustment, and it is not strange that some men find themselves unequal to the strain and manifest it in varying psychologic reactions The loss of individuality, for example, and the failure to have an opportunity for self-expression constitute a decided threat to the ego of the individual. Homesickness is likewise a potent factor, perhaps one of the most potent in the development of neurotic manifestations One English writer has attributed war neuroses in very large measure to the undue dependency of the serviceman upon his home and the development of what he terms "separation anxiety" Situations such as those found in the military services in which groups of men are far removed from normal companionship with the opposite sex contribute to the development of conflicts over homosexual trends. One may also enumerate the loss of privacy, the monotony of camp life, the lack of accustomed luxuries and particularly the change in the conscience or ego ideal The need to consider oneself a killer, to go contrary to the teachings regarding others which have been inculcated in one from youth often develops feelings of guilt that may bring about conflicts In this country, at least, as well as in

* Strecker, E A, and K E Appel Psychiatry in Modern Warfare, New York, Macmillan, 1945, p 12

most other civilized nations, we have literally not raised our boys to be soldiers.

When a soldier goes from the camp to the field numerous additional stresses are brought about, such as fatigue, exposure, loss of sleep, a sense of isolation, poor sanitation, anticipation of physical injury or even death, various terrifying experiences, hearing bombs exploding, seeing comrades killed, and so on His mental health is singularly dependent upon the morale of the group and his relationship with the other members of the group, as well as with the commander. If, as for example at Dunkirk, a retreat becomes necessary, a sharp rise in the number of cases of mental breakdown is noted

It should not be felt that all of the effects of war are destructive psychologically, even though from this point of view the balance is inevitably on the debit side In war, life, whether in the field or among civilians, is lived at a higher pitch, and the depths and the peaks are respectively lower and higher There is a feeling of exaltation or devotion to an ideal, a conviction that one is fighting for something worth fighting for; people are drawn more closely together and there is a greater sense of interdependence The soldier feels himself part of a closely knit group and benefits by the support of his officers and comrades All of these are constructive factors and serve, to some extent at least, to neutralize the hazards that have been enumerated above.

MENTAL BREAKDOWNS IN WARTIME

It is an interesting commentary on the reluctance of many of the laity to admit the existence of mental disorder that various euphemisms spring up, especially during wars "Nervous breakdown," a meaningless phrase of no medical standing, we seem always to have with us. During World War I we heard much of "shell shock," a term that was given no official currency in this country During the recent conflict several such euphemisms were developed, some were officially recognized as professional diagnoses but have very little permanent standing except possibly as face-savers Such terms as "battle fatigue," "combat fatigue" and "flying stress" are examples of the verbal tribute paid to the bogey-man of psychiatric disorder!

The breakdowns that occur in the military forces during wartime are not fundamentally different from those which have been de-

scribed in the preceding chapters as occurring in time of peace. The exciting factors are unusual, the coloring is that of war, and on the surface the breakdowns may sometimes appear to be in a class by themselves. The situation is far more specific than is usually the case in peacetime, and we can point to it as the precipitating cause The reaction is often more superficial, with the corresponding result that the breakdown is inclined to be more amenable to treatment and to terminate more rapidly than is the case with a breakdown of similar symptomatology occurring in time of peace

By far the most common type of psychiatric breakdown noted—at least in the recent war—among the military falls in the class of the psychoneuroses described in Chapter 12 During World War I the most common type of neurosis was conversion hysteria, popularly known as "shell shock," described in that chapter The patients exhibited certain physical symptoms without corresponding organic damage, such as inability to speak (*aphonia*), loss of sensation (*anesthesia*), loss of motion (*paralysis*), or tremors, and occasionally convulsions, or massive losses of memory (*amnesia*). This type of reaction, for reasons that are not altogether clear, has become relatively less common than during World War I, although it is still far from unknown and constitutes a large number of cases * The most common type observed in World War II was the anxiety neurosis, or anxiety state, a condition that is fundamentally an exaggeration of the mechanisms of fear, both at the psychologic and the physiologic levels. Here we find nervousness and tension, a tendency to be startled easily, disturbances of sleep, particularly with terrifying dreams, the dreams often being repetitions of actual terrifying events, and feelings of formless and intangible fear The physical symptoms include palpitation, difficulty in breathing, attacks of sweating, and all the common physical concomitants of severe fright These symptoms may develop after a period of exposure or other physiologic stress, in which case they usually respond promptly to rest and food

Closely related to the anxiety neurosis is the *effort syndrome*, in which the physical symptoms are particularly referable to the circulatory appartus On slight exertion pain appears in the region of the heart, together with rapid pulse, difficulty in breathing and a feeling of weakness This condition was described soon after the Civil War and was then called "soldier's heart" There are other

* As remarked in Chapter 11, hysteria seems to be a disease of the ignorant, and it is a fact that the sufferers from this form of neurosis are, as a group, the less intelligent and the illiterate.

related groups in which the predominant symptom is physical, although the causation of the symptoms is essentially emotional. For example, there may be symptoms strongly suggestive of gastric ulcer or of dysentery. This group, sometimes referred to as *psychosomatic disorders,* appeared to be more frequent than during World War I, although this is possibly because physicians are now somewhat more alert to the emotional significance of certain symptoms and not so inclined to demand evidence of organic change as an explanation

As for the psychoses, almost any type may develop, either in camp or under combat conditions The most common type is that which in peacetime, at least, would be considered as a catatonic excitement, one of the forms of schizophrenia discussed in Chapter 10 The onset is often abrupt, but the outlook is generally good and often the course is distinctly short Depressions or excitements may occur, and we may find some of the organic types of reaction as well, particularly those due to head injury. Various conduct disorders may develop and indeed are often the signs of an oncoming psychosis or neurosis Particularly significant is a marked increase in the use of alcohol or a developing irritability in a person previously not greatly inclined to react in that manner

It should be pointed out here that fear is a universal phenomenon Any soldier who denies that he was ever afraid is attempting to deceive either his listener or himself. The reason that some men can tolerate fear while others develop a neurotic or psychotic reaction is largely a matter of early experiences and of constitution The greatest injustice that can be done to these men is to assume that neurosis is the equivalent of malingering or feigning illness, or that it is the result of cowardice Anyone, man or woman, may develop a neurosis provided too great stress is imposed upon him or her for too long a period No one is immune It was found, particularly in the Air Force, that there is a point up to which the development of neurotic symptoms can be checked effectively by breaking the chain of stress Flight surgeons, those physicians whose special duty is to care for the fliers, are taught to observe closely the officers and the men under their supervision and to be alert for early signs such as "jitteriness," excessive smoking and disturbances of sleep If, when these symptoms first make themselves evident, the pilot showing them was given a short period of rest (not amid too much comfort or too far away from danger), the process could be reversed and he would readily be returned to duty On the other hand, if he once

developed the usual signs of neurosis, his further usefulness was likely to be considerably impaired.

The psychiatrist has often been accused of failure to recognize and reject those persons who will develop breakdowns. The military psychiatrist has only a brief time at his disposal—five or ten minutes, often not even so much. He does not have the developmental or social history of the examinee, which he has been accustomed to use in civil life, as an aid to diagnosis. The most important factor in the prediction of a probable breakdown is a knowledge of the patient's personality make-up, which often cannot be discovered except from a good history and a lengthy interview. The mental defectives can be comparatively easily discovered by means of certain tests, and there have been many attempts to devise tests that would work as well in discovering personality defects. The wonder is that, under the circumstances, so many of the unfits were discovered and eliminated. The magnitude of the psychiatrist's task can be visualized better when we learn that there are at most only about 4,000 psychiatrists in the entire nation.

The psychiatrists have not been content to let things stand as they are, and new methods of personality appraisal were constantly tried out during the war. In October, 1943, the Selective Service System put into effect its Medical Survey, which covered practically every registrant before he reported for the induction examination. It was an extensive program, which effectively enlisted the co-operation of schools, employers, private physicians and any public or social agencies that had had contact with the prospective soldier. This is the kind of information that every psychiatrist must have about his patients, or that every social worker needs about her clients to enable her to be of much service to them. There can be no valid objection to such a program in a time of total war; it proved its usefulness.

TYPES WHO FAIL TO ADJUST TO MILITARY LIFE

Contrary to what might be expected, the higher grades of mental defectives, provided they are not handicapped also by personality defects, are useful in the military in certain situations. There are still, even in modern warfare, many things they can do more cheerfully than their brighter brothers. When put in a situation which he has not the capacity to handle, however, the mental defective easily

becomes panicky and a menace to those about him In addition, only a certain number of them can be used.

The person who in civil life has shown such an incapacity for adjustment that he has had to be committed to a mental hospital is obviously a poor risk from the military point of view, regardless of the type of breakdown that he had No matter how well the ex-patient seems to be, the fact that he has broken once is an indication of a personality that cannot stand too much stress, particularly of a military nature. Many of the servicemen who came into Saint Elizabeths and the other Government hospitals had been hospital residents before, but concealed the fact at their induction examination Also, many of these people had broken down in camp or even before they reached camp One recalls a number of cases whose military life had been too brief to involve any special element of strain.

Joe T, aged nineteen, while on the train on his way to camp, began shouting and singing, cursing the Government and the M P who tried to quiet him, and then relapsed into a semistuporous condition in which he remained even when he reached the hospital Joe, a lanky fellow from southern Georgia, had spent several months of the year before in a State hospital, to which he had been taken in much the same condition described above His parents realized that he had been mentally sick, but thought that he had recovered and that army life would be "good for him"

Those psychoneurotic persons who are unable to carry on a reasonably well-ordered existence in civil life are also poor risks, although a few of them may do well in certain limited situations. Many of them are eager to enter the services, feeling that here they may find a solution of their difficulties Others dread induction, realizing that military life may be too much for them, but fear the ignominy of being rejected and so put their best foot forward and go on

Mr. T. A, a man of thirty-five, the victim of various physical ailments, never had been able to make a living, having been supported by his family; he passed an excellent physical examination and was inducted He assimilated his basic training very well and was sent to a camp in the Southwest where the training was very rigorous There he developed heart attacks and entered the hospital, yet no heart condition could be established, and he was returned to duty Almost immediately he went into a panic and attempted suicide

Again there are types who should not attempt army or navy life,

for they are obviously unable to adjust themselves to it. Tony H., an eighteen-year-old boy of Sicilian parentage, with a sturdy enough body but the face of a Michelangelo angel, enlisted soon after Pearl Harbor because he wanted to serve his country. Tony was a highly sensitive, beauty-loving boy, a dreamer, whose exasperated father, a shoe-repair man, encouraged him to enlist because he thought the Army would "make a man of him." Instead, it broke him completely in a very short time. He came into contact with things which he did not know existed and he was so upset that he went A.W.O.L. He was soon located and returned to camp, where he was placed in the guardhouse to await trial for desertion. Now he was doubly trapped. As he said afterward in the hospital, he couldn't even run away. He went into a state of confusion, in which he saw men as animals, and in his acute excitement he fought everyone who came near him.

All of these cases were unable even to finish training. Others of the neurotic group hold out until they get into combat or into some situation where their personal security is threatened; then they, too, break down.

The alcoholic addict and the psychopathic personality, particularly the type who is rebellious and antisocial, are undesirable persons in the military services, largely on account of their inability to submit to the requirements of discipline. The aggressive type of psychopath may find an outlet for his aggression in combat, if he succeeds in getting so far. But, as has been remarked in Chapter 13, most psychiatrists will not accept him for the service if he can be identified. He is a misfit there as everywhere else. Epileptics, of course, are too great a risk and are automatically rejected if their illness is discovered.

TREATMENT OF BREAKDOWNS IN THE SERVICE

Those men who broke before they had been in combat were hospitalized and might be discharged, depending upon the severity of their symptoms. In many cases, they were "reconditioned" and sent back to duty. Several centers were established in which the man disabled by mental unfitness was recognized as being as much in need of rehabilitation as the man who had suffered physically. Now that the war has ended, it is to be hoped that this principle will be extended, rather than the old one of compensation and continued Government care.

In a general way, it may be said that treatment of breakdowns in military service can be more superficial and brief than is the case in civil life The response of the acute neurotic breakdowns is usually good, provided the treatment is prompt and carried out near the scene of the breakdown This is notably true of the combat casualty. many respond promptly and can be returned to duty. As a general thing, the farther toward the rear the man goes and the longer he remains in hospitals, the less likely he is to be of further use near the front, though there are exceptions The men suffering from neuroses in general are segregated early, as there is a certain contagious effect upon their comrades. To see the man beside you go to pieces is strongly suggestive that the same thing may happen to you Food, rest, psychotherapy, a mental hygiene program and sedative drugs—all are effective Many of the combat casualties during the war were treated in this manner and returned to duty. Much, too, was done in the Reconditioning Centers to restore to military usefulness men who previously would have been promptly discharged as a result of their disability

MORALE FOR THE CIVILIAN

We have spoken so far of the effect of war upon the soldier What of the civilian? He, too, had his problems In some countries, he was subjected to vigorous bombing In any event, he likely had relatives in service who were therefore a cause of anxiety. He was subject to numerous restrictions, such as rationing, and to increased taxes, limitations upon travel and telephoning and writing abroad In many cases, he had to carry also an additional burden of work, this being especially true of women war workers, who in the majority of cases still had their homes and families to care for as usual One might expect, in view of the added stress and strains, that breakdowns among the civilian population would have increased during the war, yet such does not seem to have been the case In England, it was found during the European phase of the war that, in general, mental disorder did not increase and that suicides decreased So far as statistics show, this same was true in the United States, civilian mental health remained at least as good as usual What will develop, now that the "let-down" after stress is upon us, is not so certain

In times of stress, it is always easier to forget our individual differences and to co-operate with others. The real test of civilian

morale has been with us for some time already, now that the immediate threat to our national security is over and the return of millions of servicemen has raised new problems, both economic and social and, perhaps above all, psychologic Among all the problems of strikes, shortages and rising prices there still is no more crying need at the present time than for those of us who have remained at home to acquaint ourselves with the different varieties of human personality and the underlying principles of mental health If the postwar world is to be better than that which bred this cosmic catastrophe, it behooves all of us to cast aside our prejudices and find out as much as we can about the causes of mental maladjustments and what can be done toward their prevention.

What are the prospects of the returning veteran who has had a psychiatric diagnosis? In most cases, he is probably about as good as though he had not been in the service at all In other words, we may expect that for most of the mental and psychiatric difficulties of one sort or another we may look for as good an adjustment to the demands of civil life as the man had shown before he went into the service It should be borne in mind that some men never did well, that some men never had the capacity to do well, but the notion that one who has had a neurotic or psychotic breakdown never can make a suitable adjustment to civilian life again is far from the truth and is wholly unfair to the man and to the community

Some men who return will unquestionably feel the need of securing the advice of a psychiatrist in order to enable them to overcome such lingering disabilities as they may have. Outpatient clinics and consultation centers of one sort or another have been developed in a number of cities already, and the Veterans Administration is planning many others. There is no reason why anyone should hesitate to see a psychiatrist any more than an oculist An understanding of some of these elementary facts on the part of the families, the prospective employers and the returning veterans themselves should do much to make the task of the returning veterans an easier one.

READING LIST

Gillespie, Robert Dick. Psychological Effects of War on Citizen and Soldier, New York, Norton, 1942.

Grinker, R R , and J. P. Spiegel: Men Under Stress, Philadelphia, Blakiston, 1945

Kardiner, Abram The Traumatic Neuroses of War, Washington, Na-

tional Research Council, 1941. (Psychosomatic Medicine Monograph, II–III)

Kubie, Lawrence S. Manual of emergency treatment for acute war neuroses, War Med 4 582–598, 1943.

Lewis, Aubrey: Incidence of neurosis in England under war conditions, Lancet 2:175–183, 1942

Miller, Emanuel, ed The Neuroses in War, New York, Macmillan, 1940

Pratt, George K Soldier to Civilian, New York, Whittlesey House, 1944.

Rees, John R The Shaping of Psychiatry by War, New York, Norton, 1945

Ross, T A Lectures on War Neuroses, Baltimore, Williams & Wilkins, 1941

Sladen, Frank J, ed Psychiatry and the War. A Survey, Springfield, Ill, Thomas, 1943

Solomon, H C, and P I Yakovlev, ed: Manual of Military Neuropsychiatry, Philadelphia, Saunders, 1944

Strecker, E A, and K E. Appeal: Psychiatry in Modern Warfare, New York, Macmillan, 1945.

Symposium on psychiatry in the armed forces, Am. J Psychiat. **100**:11–143, 1943.

15

Crime and Mental Disorder

WHAT IS CRIME?
THEORIES OF CRIME AND PUNISHMENT
CRIME AND MENTAL DISORDER

No volume like this which deals with the various types of human behavior and their motives could very well fail to give some consideration to what is generally, if rather loosely, termed criminal behavior. Although the motivations of conduct are much the same the world over, what constitutes crime may vary substantially from place to place and from time to time. In our society, for example, one of the most serious crimes is the killing of another—*homicide,* as it is legally termed. Yet among certain primitive tribes it is the practice to kill the aging members and the sickly infants. Even in our own society it is legal to kill the one who attacks us—that is, to kill in self-defense; it is legal for the executioner to kill the man who has been sentenced to death, and in time of war it is indeed praiseworthy to kill the enemy. Thus, even the killing of another human being is or is not a crime, depending upon the circumstances.

WHAT IS CRIME?

Crime is defined legally as "the commission or omission of an act which the law forbids or commands, under pain of a punishment to be imposed by the State in a proceeding in its own name." A crime, therefore, is a wrong against the State, even though a person may be the victim, although the aggrieved may bring civil suit for damages quite independently of the criminal proceeding. Historically speaking, public justice is relatively new. The Greeks, for example, and the Anglo-Saxons had no public criminal law, the punishment of an offense against another was left to the individual aggrieved. The killer of a man might make amends to the deceased's family by payment of a certain sum of money. After the Norman

conquest, the idea developed that there were certain offenses so inimical to the well-being of the group that the group as such should punish them.

Thus the criminal law gradually developed. Certain offenses were generally accepted as harmful to the State and came to be known as "common-law crimes." Among these were treason, murder, burglary, robbery, larceny and rape. These are the offenses of which we usually think when we speak of crime. They were "felonies," a term still in use which now applies to offenses which may be punished by "infamous punishment"—that is, death or a sentence to the State prison or penitentiary. In addition, there are numerous offenses of a minor character known as "misdemeanors," usually punished by a fine or a short jail sentence. In addition to the offenses known as evil in themselves (*mala in se*), an increasing number have been decreed by statute as being criminal and are known as prohibited evils (*mala prohibita*). All of these offenses, being punishable by the State, are criminal, yet they may not be generally so accepted. This is notoriously true of Prohibition, a glaring instance of an attempt of the law to lead rather than to follow the accepted opinions of the public. Overnight, too, it became an offense to violate the ration regulations and other orders of the Office of Price Administration. Such violations are offenses, yet when the rationing regulations cease to be necessary and are rescinded, these various acts, once criminal, again are legal. Thus certain acts may become or cease to be criminal very suddenly, but a considerable number of offenses are and will continue to be considered serious offenses against the body politic; to these we refer when we speak of crime. It is technically criminal to violate the speed limit, but we do not mean the speeder when we think of criminals!

THEORIES OF CRIME AND PUNISHMENT

The law has to deal in categories, not with individuals. It classifies certain types of conduct and lays down certain general rules, expecting the vast majority of the public to fall into the expected limits. Therefore, by classification one general type of punishment is laid down for a certain type of offense. The assumption—a gratuitous one, of course—is that all persons are alike. Various theories of punishment of the offender have existed at various stages of civilization. The old *lex talionis,* the doctrine of an eye for an eye and a tooth for a tooth, which is laid down in the Old Testament,

has been widely found in relatively primitive societies, and the doctrine of "deterrence" was developed in the early days of the Christian era Despite the fact that it is basically a rationalization of group revenge, it is still much in vogue The theory is that if prompt and severe punishment is meted out to the offender it will not only prevent him from relapsing, but it will likewise frighten others into virtuous conduct as well. On this theory during the sixteenth and the seventeenth centuries (and even later) hangings were carried out in public, presumably, the more persons who could see the wretched offender hanged, the more virtuous would those spectators become! As a matter of fact, the pickpockets (picking a person's pocket then being a capital offense) were particularly active among the crowds assembled to watch the hangings, so much so that the subject came to the attention of Parliament The deterrent theory is certainly not an adequate one upon which the punishment of offenders can proceed, and the alleged successes of capital punishment in controlling murder rest on unsubstantial ground.

In the eighteenth century an Italian nobleman named Beccaria enunciated the principle that every offender commits his act because he derives a certain amount of pleasure from it Therefore, he said, let us inflict for each act sufficient punishment to overbalance the amount of pleasure On this basis a "cash register" system of punishment was set up which was soon modified, as in the case of infants, children, animals and the so-called "lunatics" It is, however, still too prevalent in the legal mind Later, reformatories and other institutions purporting to be corrective developed, and some emphasis was laid upon the reformation of the offender. Probation, parole and the indeterminate sentence are still more recent developments based upon the principle of individualized treatment of the offender In all the legal theories of punishment the principle upon which they proceed has been that every offender commits his act after a careful weighing of pros and cons, balancing the risk of punishment with the likelihood of escape Lengthy decisions have been written upon the doctrine of "premeditation," as the law terms it.

In reality it is only in a few types of offenses that the pros and the cons are carefully weighed In counterfeiting, for example, in certain frauds and in gang crimes, it is a fact that the plans are carefully made and that the gains are weighed against the risks Among the gangs who flourished during Prohibition, as indeed among others before and since, the gangsters operated under a code far more strict than the criminal law. Under this code the police

were looked upon as enemies, and it was a capital offense for a member of the group to give the police information. The prevalence of murders was notorious, and yet under this code the police were almost always unable to ascertain who was guilty. The Super-ego or conscience of the gangster, in other words, is entirely different from that of the orderly and law-abiding citizen. Conscience is not something that is born in the individual, but something that is acquired from the practices, the beliefs, the attitudes and the customs of the group with whom the individual identifies himself Most persons do not need a criminal law to prevent them from performing criminal acts For the average individual the esteem of his fellow men and the guide of his conscience (which, after all, is the crystallized attitudes of his group) are sufficient to guide his conduct into channels that are generally acceptable.

All those, however, who have but little foresight, who are impulsive and incapable of learning by experience, may by reason of these disabilities find themselves in difficulties with the law Certain types of psychopathic personality may be mentioned as an example There are those who have gone so far as to insist that the repetition of criminal acts in itself stamps the person as psychopathic However, that form of circular reasoning is not generally accepted among psychiatrists The mentally defective are among those who are short on foresight and are therefore rather easily led into offenses Persons suffering from organic damage to the brain, such as the general paretics, and those in the early stages of senile or traumatic deterioration may, by reason of their impulsiveness and lack of foresight, become involved in criminal activities The offender usually justified to himself his offense, either at the time or subsequently through that beneficent activity known as rationalization, this holds true whether the person is to be called normal or abnormal

It has long been recognized by the law that in certain cases the offender, by reason of circumstances beyond his control, was incapable of exercising sound judgment or resisting an impulse to commit an act that is considered criminal The law refers to this group as "insane" and "irresponsible." According to Clark's *Criminal Law*, insanity in its legal sense is "any defect or disease of the mind which renders a person incapable of entertaining a criminal intent Since a criminal intent is an essential element of every crime no person who is so insane that he cannot entertain it is criminally responsible for his acts." The various tests of insanity which have been applied

through the years have depended on the prevailing views concerning mental processes. Unfortunately, the present test was laid down in 1843 A century old, it has failed to keep pace with the advances in the understanding of human conduct Briefly stated, the judges in the famous M'Naghten's Case ruled that to establish a defense on the ground of insanity it must be clearly proved "that at the time the act was committed the accused was laboring under such a defective reason from disease of the mind as not to know the nature and quality of the act he was doing, or if he did know it, that he did not know he was doing what was wrong" At about the same time the American courts laid down what was known as the "irresistible impulse" doctrine—that is, an inability from disease of the mind to restrain oneself even though one may know that one is doing wrong This doctrine prevails in nineteen of the United States and seems to be peculiar to American jurisprudence The so-called M'Naghten Rule proceeds upon the principle that knowing is the only element of the mental life that counts; it omits consideration of the emotional drives and motivations which we now know to be the fundamentals of human behavior. Most patients in a mental hospital would meet the literal requirements of this test, yet no judge would doubt that they were properly considered "insane"! The irresistible impulse doctrine is far more nearly in accord with the facts. The M'Naghten Rule has been severely criticized by legal writers as well as by psychiatrists, but it is still all too powerful in the courts.

An additional difficulty over and above that of the law in setting up unrealistic psychiatric criteria is the method by which information is conveyed to the court and the jury concerning the mental condition of the defendant There are borderline cases, and at times differences of opinion exist among experts The legal procedure is such as to magnify any such differences and to interfere with the expert, however honest he may be, in presenting his views to the court Various plans, such as the appointment of court experts, have been proposed, but the machinery of the law changes slowly The cases in which these differences of opinion arise are really very few, but they are so widely publicized that the public sometimes has the idea that they are everyday occurrences.

CRIME AND MENTAL DISORDER

The psychiatrist has an interest in the motives of crime as he has in all human behavior, but he is far from considering all crim-

inals to be "insane," as the law would term it. Fortunately, some statistics are available covering the examinations in the Massachusetts courts for a period of fourteen years under the provisions of the well-known Briggs law, a law that provides for the examination *before trial* of all persons indicted for a capital offense and all those indicted or bound over for trial who have been previously convicted of a felony. Of 4,392 so-called "serious" offenders examined routinely, only 693, or 15.8 per cent, were found to be either mentally defective, definitely committable, in such condition that observation in a mental hospital was advisable, or to have other mental abnormalities. These were the findings of neutral psychiatrists, free to report the facts; they are far from the popular notion that to the psychiatrist all criminals are "insane." When one considers that the situation which leads up to the commitment of the average mental patient to a mental hospital is some disturbance of conduct, it is perhaps surprising that a larger number of crimes do not appear to be clearly the result of mental disorder.

Mental disorders are highly individual matters, and any given individual's psychosis may lead to almost any sort of so-called criminal conduct. Many of these offenses, on account of the failure of inhibitions and the development of aggressiveness, involve assaults, homicide, or rape—that is, offenses against the person. In a study (reported by Sheldon Glueck) of patients admitted to Matteawan, the New York State Hospital for the Criminal Insane, the schizophrenics ran high in homicide, burglary, larceny and vagrancy, the general paretics had larceny as the most common offense, with burglary a close second, among the alcoholics assault was the most common offense, next to the one which might be expected—public intoxication, the manic-depressives chose disorderly conduct predominantly, the mental defectives had a substantial proportion of homicides, with the other offenses scattering. The paranoiac, by reason of his delusions of persecution and his failure to secure what he considers adequate assistance from the authorities to stop these persecutions, leads the list when it comes to homicide. A young Syrian, for example, developed the delusion that he was being slandered and that wherever he went messages were being sent over the wires accusing him of various offenses, so that he was unable to obtain employment. The police were tied in with this persecution, and when an officer finally approached him for the purpose of taking him into custody after he had made threats against a wealthy merchant, he shot and killed the officer in the belief that he was about to be killed by the police.

Among sexual offenses the most serious is "common law" rape, as distinguished from the statutory variety.* This offense is often committed by the so-called sexual psychopath, one of the group of psychopathic personalities, who is often a repeated offender if given the opportunity Among those making sexual advances toward children the early senile dements are not infrequently found One may also mention indecent exposure as an offense in the sexual category, which always should suggest the possibility of mental derangement

Larceny may be committed by the general paretic who thinks that he is taking his own property, or the expansive manic who fancies that he is well-to-do One specialized type of larceny which is probably rare is that found in a few compulsive-obsessive neurotics—*kleptomania.* In this condition articles, very often of little value, are taken under the influence of an irresistible compulsion.

Among some of the minor types of misdemeanor, such as vagrancy and prostitution, we are likely to find the simple type of schizophrenia, the mental defective and certain types of psychopathic personality The mental defective may, by reason of his poor judgment and lowered inhibition, be led into almost any type of difficulty by schemers of better intelligence Much has been laid at the door of the mental defective which he does not deserve He is, by reason of his poor economic status and his inability to exercise mental agility, more likely to be apprehended and convicted than his brighter fellow offender, for this reason the ratio of mental defectives among convicted offenders is probably disproportionately high

We have already spoken of the growing recognition of the need of individualized treatment of offenders, and the great desirability from the social as well as the offender's point of view of giving early treatment in accord with the need of the individual, or, if treatment is unavailing, providing for his permanent segregation In the case of the frankly "insane" such segregation is usually possible through commitment to a mental hospital There is a tendency toward the development of institutions for the defective delinquent—that is, the feeble-minded individual who is a persistent offender—and the sexual psychopath, and several states have laws providing for the indeterminate segregation of these groups From the point of view of prevention, the development of special school classes for the retarded, the development of Child Guidance Clinics and early atten-

* In "statutory rape" the girl is under a certain age specified by law, below which she is declared to be incapable of giving valid consent

tion to conduct deviations may be mentioned as psychiatrically desirable. There are, in addition, many social and educational factors which are involved in the prevention of crime and delinquency, and many of these are receiving study at the present time The attack upon the problem of crime must be a conjoined one. The psychiatrist does not have all the truth, but he, as the one who is interested in reasons for behavior, can contribute his share to an understanding of the problem It is highly necessary that the public itself should be educated in the understanding of motivations Crime is a human problem. The criminal is a human being He is not a different order of mankind, but he has his problems and causes problems as well If the public can only be brought to understand these truths, much can be done in bringing about a more enlightened treatment of the criminal, with resultant benefit to society

READING LIST

Abrahamsen, D Crime and the Human Mind, New York, Columbia Univ Press, 1944

Catton, Joseph. Behind the Scenes of Murder, New York, Norton, 1940

Glueck, Sheldon Mental Disorder and the Criminal Law, Boston, Little, 1925

Karpman, Ben· The principles and aims of criminal psychopathology, J. Crim Psychopath 1 187–218, 1940

Mental Hygiene Laws in Brief Summaries for Each of the States and the District of Columbia Compiled by Frances Anne Ballard Edited by Raymond G Fuller New York, published by the National Committee for Mental Hygiene, Inc., with the co-operation of the U S Public Health Service, 1941

Overholser, Winfred Some possible contributions of psychiatry to a more effective administration of the criminal law, Canadian Bar Review, **17**·638–655, 1939

———. The Briggs law of Massachusetts· a review and an appraisal, J Crim. Law and Criminology **25**.859–883, 1935

Tulchin, Simon T Intelligence and Crime, Chicago, Univ Chicago Press, 1939

Weihofen, Henry Insanity as a Defense in Criminal Law, New York, Commonwealth Fund, 1933

White, William A. Insanity and the Criminal Law, New York, Macmillan, 1923.

16

Psychiatric Conditions in Children

ORGANIC BRAIN DISEASE
- EPIDEMIC ENCEPHALITIS
- JUVENILE PARESIS
- HEAD INJURIES

FAINTING ATTACKS AND CONVULSIONS IN CHILDREN
- EPILEPSY
- CHOREA, OR "ST VITUS' DANCE"

FUNCTIONAL NERVOUS DISORDERS OF VARIOUS ORGANS OR SYSTEMS OF THE BODY
- DISORDERS OF THE DIGESTIVE SYSTEM
- DISORDERS OF THE MUSCULAR SYSTEM
- ENURESIS
- SEX HABITS

DISORDERS OF SPEECH IN CHILDREN

BEHAVIOR PROBLEMS IN CHILDREN

THE PSYCHONEUROSES IN CHILDHOOD
- OBSESSIONS AND COMPULSIONS
- HYSTERIA

THE PSYCHOPATHIC CHILD

MAJOR PSYCHOSES IN CHILDREN

We have already noted, under various chapters, some of the psychiatric problems encountered in children It is only within the last quarter century that child psychiatry has come to be recognized as a legitimate branch of psychiatry in general, and there are as yet only a few child psychiatrists in this country Nor, are there many specialized facilities for taking care of children suffering from psychopathic disorders There are numerous clinics where children suffering from emotional or behavior disorders can be studied, and the parents advised as to the treatment indicated In some of them the clinic itself may undertake treatment, which often means the treatment of the home and the helping of the parents to see their own mistaken attitudes and to do something about them. Valuable insights into personality development have come out of many of these clinics. But if a child is suffering from a disorder severe enough to require prolonged treatment, or if he cannot safely be maintained at home, only a few places will receive him Some general hospitals, such as Bellevue in New York, maintain a children's ward, and if one has enough money, one may secure the services of a few very

excellent institutions where children may be studied and cared for In most cities, if a child is found to be mentally ill, he must go into a clinic or a hospital with adults In the smaller towns and in the country, if any care is provided, it must be in a State mental hospital, except in those cases where the child is an epileptic and the State maintains an institution for sufferers from this condition

This is not altogether because psychiatric conditions are rare in children It is true that the major psychoses, like dementia praecox and the manic-depressive states, are not often found in malignant form before puberty, but many prepsychotic states exhibit themselves in childhood and later develop into full-blown psychoses, an outcome which might, theoretically at least, be prevented if the proper care could be given in childhood There are children who suffer from an organic brain disease who cannot be understood or properly cared for in the average home, and many neurotic children would stand a much better chance for future happiness and adjustment if they could be cared for and treated in an institution adapted to their needs. The dearth of proper institutions for children is due to the fact that we have been slow to recognize that large numbers of them suffer from nervous disorders. The average adult assumes that most children are "normal" and believes that the home and the school are the proper places to rear them to normal maturity This condition exists in spite of the abundant evidence that any number of homes are unfitted for child-rearing and that the average school is not equipped to deal with children who suffer from the so-called nervous disorders

We shall consider the psychiatric conditions in children under several different classifications, though often they are not as clear cut as similar conditions in adults

ORGANIC BRAIN DISEASE

It must not be forgotten that because of his immaturity a child's nervous system is more unstable than an adult's, therefore, during a physical illness all sorts of nervous symptoms may show themselves, only to clear up as the illness subsides In those illnesses affecting the brain itself, intellectual defect or personality disorders are more likely to occur Fortunately, these diseases are not very common, and when they do occur the function of the layman cannot be much more than to realize their seriousness and to obtain the best medical care possible. There are three conditions, however, in which

the resulting personality changes are likely to be misunderstood and mishandled accordingly

EPIDEMIC ENCEPHALITIS

Epidemic encephalitis is known to the layman as "sleeping sickness" In young children, up to three or four years of age, the results of encephalitis are usually very serious. Mental development may cease entirely, or even regress, so that the two- or three-year-old who was progressing normally loses his mental attainments and behaves like an infant again. We recall a child of three, the daughter of a physician, who over a period of several months, following a slight cold accompanied by drowsiness, had shown progressive deterioration, and when seen had ceased to talk or to play constructively and appeared to be an idiot. In older children the mental damage may not be so apparent at first, but nervous manifestations of one kind or another may develop months and even four or five years after recovery from the original illness Involuntary movements, "tics" of various kinds, muscle spasms of the eyes, and epileptiform convulsions may persist or develop as the sequelae of encephalitis Quite frequent and perhaps the most often misunderstood are emotional disturbances and loss of self-control, so that the child appears to be "bad" or unruly. Usually these children cease to learn in school and devote themselves to mischief. They may act like mental defectives, but on psychometric examination do not prove to be so, although there exists a large amount of scatter above and below the basal age They usually impress the examiner as being capable of a normal performance if they could control their attention If the school is not aware of the illness or is not familiar with the behavior of postencephalitic children, they may be scolded, punished, or demoted, although their behavior is frequently so bad that the school refuses to keep them at all.

Twelve-year-old Minnie went back to school after an undiagnosed illness of several weeks, in which she had a high fever, was delirious, and slept a great deal From being a tractable, studious child, Minnie had developed into a "holy terror." She refused to study, would not stay in her seat, had temper tantrums, fought the other children and swore at the teacher who attempted to correct her The school disciplined her, her parents punished her severely; but she grew worse instead of better She lied, stole, and ran away from home. Finally she was placed in a mental hospital where, after

several years of ups and downs, she was considered well enough for discharge to her home

Ten-year-old James had a severe attack of "influenza" in 1918. After recovery, he at first seemed to be normal, but developed the habit of sleeping in the daytime and staying awake at night.* He would prowl about the house, awakening his parents and brother and sister, stir up the dogs and get the whole household in an uproar Later he became very restless and overactive, developed "nodding spells" and tics and was unmanageable either at home or school He spent some time in an institution for epileptics, and he was also tried in special schools and a juvenile reformatory. He even was psychoanalyzed for a while He was a bright boy, and most people who saw him, including several doctors, felt that he was "willfully mean" By the time James reached fourteen everyone felt worn out with him, and he was sent to a mental hospital His unusual behavior continued It was hard to place him, as he fought with younger patients and teased and tormented the older ones As he grew older, he quieted down somewhat and was able to spend long vacations with his parents.

A comparatively large number of such cases developed during the twenties, following the epidemic of 1918 Recognizing the condition as one needing special treatment, the Pennsylvania Hospital established what was known as the Franklin School, in connection with the Hospital in Philadelphia, where a number of boys were kept under a hospital regime, with special training and re-education The results were excellent, most of the children recovering enough to be sent back to their homes Time itself seems to be a factor in stabilizing older children who have suffered from encephalitis They usually become less nervous and better controlled as they approach maturity.

Juvenile Paresis

A second central nervous system disorder whose beginning symptoms are frequently misunderstood is juvenile paresis It occurs only in children who have congenital syphilis These children may seem normal for several years, and then somewhere between eight and twelve a progressive intellectual deterioration sets in The child begins to fail in school, loses his ability to understand the school subjects, shows speech defects, becomes careless in dress and man-

* This "reversal of the sleep curve" occurs fairly often in postencephalitic states

ners, loses his sense of right and wrong. The final outcome is usually complete dementia and death.

In most cases, however, the child has shown mental—and often physical—inferiority from birth, and the development of the paresis may be vague and indefinite, so that the parents do not recognize much difference in him for some time. Cases have been reported developing as early as the fourth year, and juvenile paresis is sometimes diagnosed as late as twenty-one. The symptoms, however, are the same.

All children with congenital syphilis do not develop paresis, nor does early treatment of a syphilitic child always insure against it. Why one child develops it and another does not is not known.

Malarial or other fever treatment, which has been so successful in adult paresis, has not proved so beneficial with children, perhaps because the child's brain is a developing organ, rather than one which has reached maturity and is therefore more susceptible to damage. The prognosis is very poor. Hospital care is necessary in the later stages of the disease and is advisable from the beginning.

Head Injuries

The third condition to be mentioned here is that sometimes observed to follow a head injury. We have already dealt with birth injuries in Chapter 4. Here we are concerned with the history so frequently given in relation to all kinds of mental defect or psychiatric conditions in children. "He fell from his high chair when he was just a baby." "She fell on her head on the brick pavement." "He was struck on the head by a baseball bat." Injuries to the brain do occur from such causes, but most psychiatrists agree that they are very much rarer than the layman believes. When the physician or the hospital finds no evidence of brain injury, it is probable that psychiatric conditions developing later have been the causes. It must be remembered, too, that a defective child cannot take care of himself so well as a normal one, and even though he does suffer injury it is better regarded as the result of the defect than the cause of it.

There are, of course, children who suffer severe head injuries which result in a change of personality. There may be headaches and dizziness, explosive temper, hysterical attacks or convulsions, or the child may apparently recover but show great emotional instability, being easily irritated, flying into violent tempers, fighting

and becoming unmanageable at home and school. Kasanin,* who studied a number of such cases, remarks on the resemblance to the sequelae of encephalitis. He finds antisocial behavior, stealing, truancy, sexual misconduct, and so on. We recall a boy of fifteen who was brought into a children's clinic after an automobile accident in which his head was injured. From being a good and studious boy, he had developed into a hoodlum and had attempted to shoot a policeman who arrested him.

These, however, are exceptional cases. When such grave consequences follow a head injury, there is little to do except to keep the child in as nonirritating an environment as possible with the hope that he may become more stable as he grows older, though he can scarcely be expected to reach the development that he might have attained had he never suffered a brain injury.

FAINTING ATTACKS AND CONVULSIONS IN CHILDREN

Children are much more subject to attacks, "spells," or "fits" than adults. These may occur in almost any of the so-called children's diseases, especially in whooping-cough. Infections and toxic conditions are likely to be accompanied by convulsions, and in some children any rise in temperature may produce convulsive seizures. They are not nearly so common as they used to be, since more children are cared for by pediatricians, and the child health and welfare programs of the Federal government have taught mothers more about the care and the feeding of infants and children.

Epilepsy

The convulsions that occur out of a clear sky or when the child has not been seriously ill are more likely to arouse the suspicion of epilepsy. A frequent history in an older epileptic is that of convulsive seizures in infancy, then freedom from attacks until puberty or later. The point to be made here is that convulsions in infancy or early childhood should not be attributed to "teething" or "stomach trouble" and so on without observation by a competent physician. When epilepsy begins in early life the child needs special care, with attention to diet, rest and a nonirritating environment, and parents need the help of the doctor in planning and carrying out such a

* Personality changes in children following cerebral trauma, J. Nerv. & Ment. Dis. 69: 385–406, 1929.

regime. It is not uncommon to find a child who has been taken to various healers and nonmedical "physicians," dosed with drugs of different sorts, herb concoctions and so on, even having been subjected to operations, not one of which has had the slightest effect upon his "fits" As discussed in Chapter 5, modern medicine has made considerable strides in the treatment of epilepsy, and it is far easier to do something about it when it is recognized and treated early

Children may be subjected to *petit mal* attacks for some time before actual convulsions develop, and they are not always recognized for what they are, since they may take various forms Whatever form they take, the person is always unconscious and afterward remembers nothing about what occurred during the attack.

Walter, in the third grade, had running spells, he would rise from his seat, run across the room until he struck against the wall, then turn around and "look foolish." At first he was scolded, but it soon became evident to the teacher that he did not know what he was doing

Clarence, seven years old, developed the habit of making faces, at the same time twisting his body toward the left As he did this repeatedly when his stepmother was scolding him, she thought he was mocking her and beat him severely

Jennie, ten years old, used to stand still suddenly and engage in a queer little play with her fingers, talking rapidly meanwhile, flecks of foam appeared on her lips. Jennie also had severe convulsions

The attacks may come only at night for some time and may not be recognized or even discovered When a child repeatedly falls out of bed or complains in the morning of feeling tired and sore, it is well to investigate

Chorea, or "St Vitus' Dance"

Sydenham's chorea, known to the laity as "St Vitus' Dance," is often confused with "tics," discussed below. Formerly believed to be a functional nervous affection akin to hysteria, it is now known to be related to rheumatism and rheumatic heart conditions, from which children suffer more frequently than was formerly recognized. It occurs much more often in girls than boys, the most common age for its appearance being the decade from five to fifteen, though adults may have it also

The first thing noticed may be that the child appears awkward and clumsy, drops things, runs into the furniture, or spills his food Children are often enough scolded or punished for their seeming awkwardness Jerky movements develop, the facial muscles twitch so that the child "makes faces," speech may become thick and slurred, and the child may become totally unable to control his movements or to talk intelligently An attack usually lasts two or three months, but occasionally much longer Once having had chorea, the child may have it again, especially if under strain of any sort

One frequently is told that the ailment followed a fright or a shocking experience of some sort, but even if the connection can be well established it is hardly to be regarded as the true cause of the chorea The choreic child is highly sensitive, and Kanner calls attention to the fact that the illness itself is often ushered in by some days or even weeks of "nervousness," when the child shows "increased irritability and excitability"[*] He may seem like a different child, becoming quarrelsome, crying at nothing, easily upset and frightened During the illness "the outstanding features are a varying degree of emotional instability, restlessness and difficulty of attention The patients are fretful cross, irritable, sensitive, fault finding They often change quickly and without evident reason from tearfulness to hilariousness It is difficult to keep them in bed They are hard to please, and not easy to manage"[†] Occasionally there are delirious episodes

The care of a choreic child will be prescribed by the doctor, and it is imperative that his directions be followed The period of convalescence is apt to be difficult On the one hand, the child must resume his activities and his school work gradually and without running the risk of too much strain; on the other, he must not be unduly coddled and made to regard himself as an invalid

FUNCTIONAL NERVOUS DISORDERS OF VARIOUS ORGANS OR SYSTEMS OF THE BODY

Children are much more prone than adults to produce symptoms or apparent disorders of one or another part of the body for which no actual physical cause can be found. We all know how easily they

* Kanner, Leo Child Psychiatry, Springfield, Thomas, 1935, p 188.
† Thom, Douglas A Habit Clinics for Child Guidance, U S Children's Bureau Publication No. 135, 1938, pp. 36–37

are made ill or complain of aches and pains in response to some unhappy emotional experience or something they do not wish to do. It is sometimes very difficult to distinguish these hysterical reactions or psychogenic disorders from actual defect or disorder of the organ involved, and a child's illness should not be dismissed as "just nervousness," or a "putting on" to get what he wants, without medical investigation and advice On the other hand, it is not wise to be too disturbed over them, once assured that the trouble is not organic Many a person develops a lifelong habit of semi-invalidism because his parents were convinced that he was "delicate" or "too nervous" to meet the ordinary demands of life in childhood Much common sense and a recognition of what may be wrong in his own attitudes toward life form the best equipment for a parent in dealing with such manifestations in children

Disorders of the Digestive System

Chief among the organ systems of the body affected by these functional disturbances is the digestive system No complaint is more commonly heard by the pediatrician or the children's clinic than that about a child's eating and digestive habits "He will not drink his milk, he refuses all the foods he should eat, if he is made to eat he vomits" "He has spells of indigestion and can't go to school" "If he gets excited he complains of his stomach, and sometimes he vomits" "He is always constipated, and I have to give him a laxative [or an enema!] every single day."

It is easy to see in these instances the results of parental mismanagement, but the connection is not always so apparent Thom* tells the story of a six-year-old girl who, while apparently in good health, was vomiting every morning All attempts to discover the trouble were baffled, until it became known that the mother was pregnant and had been vomiting in the mornings Bessie, a seven-year-old of our acquaintance, a bright and oversensitive child, had what appeared to be a severe digestive disorder She was allergic to most foods, suffered from alternate attacks of constipation and diarrhea, and had "a feeling in her stomach which made her think she was dying" Her uncle, with whom she lived and of whose severe punishments she lived in dread, had identical symptoms Removed to another home and more wholesome surroundings, her difficulties disappeared.

* *Loc. cit.*

Psychogenic vomiting is often enough a protest against something that the child does not wish to do Some children vomit every school morning, omitting Saturdays and Sundays; or they vomit when faced with a task they dread, as an examination The child expresses his disgust with the situation by literally spewing it out of his mouth Many children react to excitement or to harrowing experiences with digestive upsets The majority of such children come from unstable homes, where the parents themselves are ill or nervous, or where the child lives in an unhappy situation The treatment usually consists largely in stabilizing the environment and helping the parents or foster parents themselves to attain a better adjustment The psychoanalysts make a more direct attack upon the problem and work with the child himself, believing that when he is sufficiently adjusted he can handle his own difficulties.

Disorders of the Muscular System

Functional disorders of the muscular system are not uncommon in children and adolescents Mostly they take the form of "tics" or "habit spasms," which are involuntary movements affecting usually the face and the neck, though they may appear in almost any part of the body Such things as blinking, making faces or grimacing, jerking the head or the shoulders, or even the abdomen, clearing the throat or "making a funny noise," swallowing, twitching the mouth or the hands, and numerous other movements, when they are not under the child's control, fall into this category The movements are often mistaken for those of chorea Tics, however, are of a more stereotyped nature They are repeated over and over, in exactly the same fashion

Tics seldom come out of a clear sky They appear in "nervous" or unstable children, in whom there are likely to be a number of other behavior problems. Johnny, at thirteen, developed a spasmodic contraction of the diaphragm, severe enough to be seen easily through his clothes by a person across the room He was the plain and average child between two good-looking and brilliant brothers He was shy and timid, stammered, and was a "great mamma's boy" His mother was very unhappy in her marriage, though she tried to conceal it from the children, Johnny was her favorite.

Kanner* states that among the cases studied by his group of investigators there was not a single one with tics who did not show

* *Op. cit.*, p. 249.

other personality difficulties also. The restless, overactive, excitable child, overconscientious and oversensitive, is likely to suffer from tics.

The tics often seem to be little more than the continuation of habits developed in the first place in response to some irritation or emotional experience. A boy's collar is too tight; he stretches and twists his neck while wearing it and continues the movements after the offending garment is removed. A girl is badly frightened by some boys who jump at her from behind a dark corner. She begins to jerk her arms and trunk and continues to do so. Sometimes the movements appear to begin in imitation of someone else. A boy plays with another one who blinks continually, then "catches the habit" from him. Such imitative habits, *when they persist*, must not be dismissed as "just imitations of so and so"; they betoken something wrong in the child's adjustment.

Scolding and punishment, to which parents and teachers often resort, are of little effect as treatment. "He stops one thing and begins another." The more the child's attention is called to the habit the harder it becomes for him to abandon it. Nor should he be encouraged to think of himself as "nervous" or sick. Sufficient rest, attention to diet, removal of irritations from the environment, which may involve such things as a new teacher or a new school, or the making over of relations of husband and wife on the part of the parents, are steps that may be necessary. In severe cases, the help of a psychiatrist or a psychiatrically trained psychologist is indicated.

Enuresis

Another functional condition that causes parents and caretakers much distress is *enuresis*, inability to control the bladder. Many parents feel that a child should be trained to achieve proper toilet habits by the time he is twelve to fourteen months old, but only about 10 per cent of children respond to toilet training at this age. If, however, a child is still wetting himself at three he is considered enuretic. A great many children suffer from this complaint, popularly known as "weak kidneys" or "a weak bladder." However, in the majority of cases there is no physical difficulty to account for it. Like all the other conditions discussed in this section, enuresis is a symptom of the child's inability to adjust to his environment,*

* We must except those cases, numerous enough in poor social and intellectual groups, where little attempt is made to train the child. Parents often explain that they themselves were bedwetters and expect the child to outgrow it in time.

and seldom occurs alone. Personality difficulties of various sorts are almost always found in the enuretic child. Often he is of inferior intelligence, but again he may be of decidedly superior endowment He is likely to be overactive and excitable or moody and grouchy. In the great majority of cases there are environmental factors that need to be corrected.

Child psychiatrists agree almost unanimously that the cause of enuresis in children is poor understanding and management on the part of parents and caretakers The psychoanalysts see the enuresis as an expression of the child's emotional stress It arises usually in the period (third or fourth year) when he is trying to get his relationship with his parents satisfactorily adjusted Anything that threatens his security with them may bring on any number of behavior difficulties The birth of a new baby, the loss of a beloved nurse, too harsh methods of training, a fancied neglect (or a real one) on the part of a parent, strained relations or open quarrels between the parents, all may act to make the child fear the loss of his parents' love, and the enuresis is a means of getting their attention and reassuring himself

Parents often foster the habit by too much attention to it The anxious mother, who hovers over the child fearing that something will go wrong, the ambitious one, who sets out to train her baby at a few weeks of age; the rigid one, who punishes any lapses severely —all invite the continuance of the habit rather than its cure Even after a child has been dry for many months, emotional excitement or stress may result in his wetting himself either by day or night Every kindergarten and first-grade teacher knows how often "accidents happen" to well-trained children Little Mary Ann, three and a half, who had been dry since two, started to nursery school, and after a few weeks began wetting herself every afternoon The explanation proved to be her admiration for four-year-old Jimmie, who was an enuretic child and wet himself every day at school

Probably no other child "misdemeanor" has called forth such a variety of harsh measures on the part of parents Scolding, whipping, shaming, depriving of privileges, making the child wash his bedding, and sometimes ingenious tortures—all are employed, and nearly always to no avail Nine-year-old Tim wet himself at school as well as at home, his mother, who had conscientiously tried everything she knew or heard of, punished him by making him stand in front of the fire with his wet drawers over his face inhaling the fumes Tim, a miserable little fellow of the moody and grouchy type, was convinced that he was not his father's child, because the father

was so strict with him. Tim did not improve until he went to stay with his grandparents in another city. Here the trouble stopped as if by magic

In treating enuresis the psychiatrist recommends common-sense measures, easing up on worry about the situation, finding out what in the home or the school keeps distressing the child In severe cases, the psychologist, a psychiatric social worker, or the psychiatrist himself may undertake treatment of the child, which almost invariably involves treatment of the home itself, or removal of the child, temporarily at least, to a less-irritating environment

Sex Habits

Another habit about which parents are deeply concerned is masturbation, but since it is no longer considered by the psychiatrist an abnormal manifestation in children or adolescents, we shall treat it only briefly. The earlier period of masturbation, usually spoken of as the infantile period, needs no further treatment than the recognition that it is bound to occur as the result of the body exploration in which all healthy infants engage Neither threats nor punishment, nor an attitude of disgust or horror are appropriate. Distraction of the child's attention, engaging him in some other activity and answering truthfully his questions about his body are the sensible means of dealing with it If the masturbation is prolonged and excessive, or of the compulsive type, so that the child seems to be unable to control his indulgence, he may need the attention of the doctor, but great care should be taken that he does not regard the circumcision or other operation that may be necessary as a punishment for the masturbation In some cases masturbation becomes so tied up with the child's loves and hates and fears that the services of a psychiatrist are necessary, but ordinarily the matter takes care of itself if treated sensibly.

The same is true of the masturbation of puberty Since it occurs in practically all boys and in the majority of girls, frequently in purely spontaneous manner without teaching by others or any knowledge of it in others, it should be regarded only as a normal phase of sex development In normal cases it never comes to the attention of parent or teacher except by accident—unless they go snooping about to discover it! The adolescent who masturbates openly or to such an extent that his genitals become sore, needs help, and frequently is either of defective intelligence or is suffer-

ing from a severe neurosis In that case the masturbation is a symptom of the personality disorder, rather than the cause of it, as was formerly believed

As to the other sexual "problems" that occur in children, none of them need be regarded as signs of depravity or of a mental disorder It is now known that normal children, if not taught differently, engage in sex play and experimentation with each other, and no useful purpose is served by dignifying these activities by such terms as homosexuality or seduction. Only when children become involved with an unwholesome or abnormal adult is there danger of damage to the personality, and when wisely handled they appear able to outride this hazard also * The attitudes of parents and other adults to the situation is far more likely to upset the child than the experience itself. The same can be said here as in the preceding paragraph When adolescents indulge shamelessly in sex activities or in the so-called perversions and occupy their time and minds with sex matters to the exclusion of other activities, they are either defectives or in need of psychiatric attention

DISORDERS OF SPEECH IN CHILDREN

Speech defects of one kind or another are very common in children. The age at which talking begins varies considerably Some children use words as early as five months and speak fluently at eighteen months; others do not talk until three or more years of age Nor does backwardness in speech always indicate mental retardation or defect, although, in general, defective children talk later than the normally intelligent Lateness in acquiring speech is due to a number of different causes, among which the emotional one must certainly be reckoned Harry A, who has been for years Professor of Law in a well-known college, did not talk till he was four. Harry was the baby of the family with four older sisters, all of whom petted and babied him and anticipated his every wish. Allen G, now a normal young man of eighteen, was saying words and phrases at fifteen months, when the nurse who always had taken care of him left, he stopped saying anything After several months of being cared for by his mother, he was beginning to talk again, when her illness necessitated her leaving him for a sanitarium. Again he ceased to talk entirely and cried when anyone attempted to

* Bender, L, and A Blau Reaction of children to sex relations with adults, Am J Orthopsychiat 7.516, 1937

induce him to talk. Not until he was three, after his mother had returned and he had established security with her again, did he begin really to talk.

Faulty articulation, such as "baby talk," lisping, or inability to enunciate certain sounds, is common in childhood, and many people carry such defects into maturity. They are due largely to faulty training, though defects or deformities in the organs of speech may be responsible. Defects in phonation or the quality of the voice sounds may appear in adolescence, especially in boys.[*] These nearly always betoken a personality difficulty. Charles H., seventeen years old, swallowed his words and talked as though he were suffering from bad tonsils and adenoids. Charles' throat was clear, but he labored under a great emotional strain. His voice improved after his worries came into the open and were threshed out with him.

Clarice M., a young woman of twenty-three, had the high-pitched voice of a young child, which fitted almost exactly her stage of emotional development. Clarice had plenty of intelligence, and she finally emancipated herself from a very dominating mother and grew up. Her voice required retraining, but she finally was able to speak normally.

Roger T., at fifteen, had a very high falsetto voice, which he retained until he was in the twenties. He used it as an excuse to stop school and for his failure to get a job. However, it expressed his fundamental personality, for Roger believed that he was more girl than boy. He secretly dressed in girl's clothing and fell violently in love with other boys. This boy was developing a chronic mental disorder and was hospitalized at twenty-two.

The most distressing of the speech disorders is stammering (stuttering). It is very common in children. The number of stammering children in the United States has been estimated at a quarter of a million. About one in every hundred school children is a stammerer. The condition occurs far more frequently in boys, though girls are affected also. It ranges from the inability to pronounce certain letter sounds without hesitation or repetition up to an almost complete inability to talk at all. The stammerer may grow ingenious in substituting sounds he can use for those he cannot, or he may talk fluently under certain circumstances—at the telephone, for instance, or to strangers. Often he can sing easily.

There are many different theories in regard to stammering, and

* We are not referring to the voice changes of puberty, but to the peculiarities that linger after puberty has passed.

the "cures" for it are legion, from the ancient legend of Demosthenes holding pebbles in his mouth and orating to the ocean for audience, up to psychoanalysis Most of them have at least some successes to their credit, which gives us a clue as to the nature of stammering: anything that can be cured by hocus-pocus or by exercises and rituals is not organic. There may be cases in which an organic condition aggravates the matter, but most child psychiatrists now agree that stammering is a personality disorder In the great majority of cases, it begins in childhood, when the child is trying to perfect his speech (from two to five years) Impatient adults correct him, stop him, make him repeat, pronounce correctly, or siblings laugh at him and imitate him. A sensitive child, as the stammerer almost invariably is, reacts to such interference with increased tension and concentration on his manner of speaking, with the result that the stammer, instead of being a transient matter, becomes fixed.

School entrance develops another group of stammerers, many of whom are found to have difficulties in other fields of language as well They are slow in learning to read, they are mirror readers (seeing the letters in reverse order), they cannot spell, they are left-handed There seems to be little doubt that there is a group of stammerers in whom the difficulty constitutes only a part of a whole complex of speech and language difficulties, probably on a neurologic basis In such cases the condition is much more difficult to treat

Other children react by stammering to the stress of the new situation (school), just as others do not stammer badly until puberty, when physiologic, psychologic and social factors combine to set up stresses and strains for the oversensitive child

Heredity is often accused as the cause of stammering, and it is true that in many cases there is either a stammerer in the immediate family or a history of childhood stammering in parents or other close relatives However, it would seem to be more a case of imitation or of social inheritance than of actual inherited defect of the speech organs or the speech centers in the brain Kanner* points out that when the child is learning to talk there is a natural repetition of sounds, coupled with a search for words that will express his wishes and experiences If at this time there happens to be another person in the home who stammers, it is easy for the child to imitate him. With two or more stuttering children in the family, there occurs immediately the thought of heredity, and almost always a parent or a relative can be produced who also stammered.

* *Op cit*, p 317.

Thus the ordinary difficulties of a child learning to talk are exaggerated, and the fear of stammering serves to fix and perpetuate the habit Almost all successful treatment of stammering seeks to relax the fear and the tension associated with it, and this involves the co-operation of the family—often its re-education

Little Anna, a premature infant and who had been slow in acquiring speech, fell very ill with a throat condition at the age of thirty-three months, following which she was operated on for the removal of tonsils and adenoids The nurse insisted that the parents go home, and next morning Anna woke to full consciousness in the hospital and called for her father and mother to find for the first time in her life that they were not there The whole experience was a tremendous shock to her, and thereafter when she tried to talk she stammered badly. The family, guided by a child psychologist, paid no attention to it Not in any way was her attention ever called to her difficulty with words. She was listened to patiently, never corrected or stopped or made to "say it over." In six months the stammering had disappeared completely.

Another child began to stammer at about the same age after the birth of a sister who became more attractive and aggressive than she was. Her parents "worked at" her continually, attempted to make her breathe properly, to stop and think before she began to talk, scolded her for talking too fast, and so on. At the time of entering school Ethel was still stammering badly

The school systems in our larger cities have classes for speech defectives, and a few states have a state-wide program It has been found, however, that no corrective exercises or mechanical drill on sounds are sufficient in themselves to correct stammering in the majority of cases Such measures are indeed necessary, but they must be coupled with a mental hygiene program that takes account of the whole child, including his family background, his school setting, his status in the community (does he belong to a so-called "inferior" group such as the Negro or other outsider groups, does he live "on the wrong side of the tracks," et cetera), his physical condition, and his personality make-up This procedure is followed in the better speech clinics and it is the only one that holds out much hope of success with school children

BEHAVIOR PROBLEMS IN CHILDREN

A large number of more or less serious difficulties in child behavior may be lumped together under some such caption as above,

since they are not due to any organic defect or disorder, but display themselves in emotional upsets of one kind or another, or in socially disapproved or even antisocial conduct. Such things as extreme jealousy or cruelty, temper tantrums, night terrors, anxiety attacks, fears of various sorts—of the dark, of animals, of storms, water, and so on—lying, stealing, playing truant, obnoxious sex conduct, such as peeping and spying, or exposing themselves, cause extreme anxiety to the parents and form the bulk of the reasons for children being referred to the Child Guidance Clinics or the psychiatrist

Parents of an only child or of a first child are likely to be disturbed by manifestations that they learn to accept with more experience Johnnie is extremely upset by the arrival of the little brother or sister His jealousy, which, to be interpreted, is fear of his loss of his parents' love, displays itself in refusal to eat, is vomiting his food, in temper tantrums, in night terrors which necessitate his being taken into his parents' bed, even in sliding clear back into infancy and wetting and soiling himself It is not unusual for a child of even three or four to strike, slap, or pinch the baby, or attempt to drag it out of its basket or off the bed None of this is a sign of infant depravity, but merely that the child senses that here is another creature that for some reason or other is usurping his parents' time and attention When the first child has been unduly petted and spoiled, the reaction is likely to be proportionately more severe. Unwise parents have been known to tease a youngster by pretending great attention to the baby and laughing at the temper tantrum thus provoked. More often they are at a loss to understand the behavior or to know how to deal with it

In attempting to remedy the situation, parents should try not to spoil the child unduly in the first place and to be very careful that he misses nothing of the love to which he has been accustomed before the advent of the baby He is likely to show some jealousy, but if he is not scolded or punished and is made to feel that he has a share in the new baby, the matter will take care of itself in the normal child

Let us remember that three fundamental human needs which exist almost from the moment of birth are. the need for emotional security, for feeling oneself loved and wanted, the need for adequacy, the feeling that one is equal to the demands of one's environment, and the need for self-expression, for finding outlets for the energy that surges within every normal human being The thwarting of these needs is sufficient explanation for most of the untoward behavior in which children indulge When one's security

is threatened, panic ensues (and not only in children), and there is blind endeavor to do something, *anything*, to regain it. When one feels inadequate to cope with his realities, when real or fancied inferiorities force him to the wall, there is in children a blind striking out at the environment, a rebellion that may take forms seemingly entirely unrelated to the situation. Children's delinquencies are often enough upon this basis. Or there may be withdrawal, submission to one's weakness, a giving up the struggle even before it is begun. Many school failures or poor school performances are due to this type of reaction to frustration. "I'll be beaten anyway, so why try at all?" is the child's attitude, often enough unconscious on his part. When the child's urge to self-expression is thwarted, we may expect all kinds of "bad" behavior, from resigned unhappiness up to grave delinquencies.

Johnny and Jimmy are playing ball, inventing rules of their own and pretending that they have a full team. Dad goes out to show them how to play. He criticises every move they make and ridicules their "crazy rules." Johnny throws down his bat and starts for the house. He is severely reprimanded for his "nasty temper" and sent upstairs until suppertime. But instead of staying, Johnny makes a bundle of his necessities, steals into his father's study and takes all the money from his desk, sneaks down the back stairs and down the hill to the railroad track, where he starts out for parts unknown. It had happened once too often. This child's father was a minister; he was frantic with grief over his son's behavior and had no idea of his own part in it.

Not only the home, but the school, sometimes the church or the community, poverty and a dozen other things may frustrate the child's desire for self-expression. Before we become too alarmed about any child's behavior, it is well to examine carefully how his needs are being met. The clinic and the psychiatrist would get fewer cases if parents could do this intelligently.

THE PSYCHONEUROSES IN CHILDHOOD

Children occasionally suffer from the psychoneuroses, and even from the major psychoses, which we shall discuss in a later section. Many writers would lump together all the various reactions we have discussed above and describe the child displaying any combination of them as "neurotic," and it is true that in our adult neurotic and psychotic patients we practically always get a history

of such traits extending back into childhood. But certainly the majority of our nervous children do manage to grow up and adjust themselves to life, even though they fall short of the degree of emotional development that the psychiatrist might consider desirable. There is probably no adult anywhere who would not show some neurotic traits, either now or in his earlier life, if closely examined, and these traits are far more common in children, since children are in the process of learning adjustment.

However, we get in the clinics and in private practice a certain number of children who suffer so severely from their fears, compulsions, or hypochondriac states that they remind one irresistably of the adult neurotic

Obsessions and Compulsions

Obsessions and compulsions of a mild sort are more or less normal in childhood Many childish games make use of rituals in which things must be done just so or the player forfeits his place or some object or possession Young children love to have things repeated over and over and will not allow a word or an accent to deviate from the accepted version The compulsions to touch or avoid certain objects, to count the window panes, to do everything by three's and so on are very common The obsession with sex thoughts, mental pictures and sex words or expressions is so common around puberty as to be almost normal In rare cases it does lead to action, such as cruelty and aggression (though practically never of a direct sexual nature), or stealing, or to ritual acts "so I can get rid of my bad thoughts" When the child becomes unable to control his obsessive thoughts, when they take possession of him and frighten or worry him beyond all reason, we are justified in calling his condition a neurosis, and he should have help at the earliest possible moment

Sadie F , daughter of an alcoholic father and an unstable mother, could not remember when she did not suffer from a large variety of obsessions, compulsions and phobias. She was beset by doubts and indecision, compelled to do things over and over and never felt sure that they were right. She was obsessed with the thought of her dead brother lying in his grave or rising out of it at the Judgment Day. She was obsessed with fantasies of a boy beaten by his father, identified herself with the boy and suffered agonies of remorse and pain with him. She had a phobia of hell fire and performed all sorts of ritualistic acts to save herself from it. She had attacks of rigidity

in which she lay with her eyes rolled up and could not move her limbs. The country doctor said that she was very nervous and gave her "some kind of pills and powders." Sadie was a good student and she graduated from high school, attended a Teacher Training School and taught for a few years. Her obsessions and compulsions changed as she grew older, but did not lessen. She was never able to make an adjustment for any length of time.

Hysteria

As to hysteria, we hear often enough of the hysterical child, which to the layman means the overexcitable and easily suggestible child, but hysteria as a definite neurosis in children is not so often diagnosed nowadays, although there are still certain quarters where almost any unusual behavior in a child is diagnosed as "hysteria"

Children may display all sorts of hysterical motor disturbances, from tremors and tics up to paralysis of a limb or complete inability to speak (mutism). Hysterical fainting attacks are met more or less frequently. Thomes B , a fifteen-year-old boy from a good home, did not like his stepmother and so he lived with his grandmother who let him do as he pleased He had hysterical heart attacks. Thomas was brought to the Clinic by his father and had no attacks while under observation Then one day he ran away from the Detention Cottage and hitchhiked his way to his grandmother's A social worker was sent to bring him back, and when Thomas saw her he went into a tantrum, crying, swearing and declaring that he never would return. Suddenly he collapsed in a heart attack His pulse was barely obtainable, though his color was good and his breathing regular The social worker, who knew him, went on talking about catching the train for the journey back, and all at once Thomas sat up and spoke.

"I'll go if you're going on the train, but I won't go in any old automobile."*

In general, it may be said that hysterical states in children, as in adults, may involve almost any organ or system of the body and may deceive the nonmedical (and sometimes the medical) observer into thinking that an actual organic disorder is present. For this reason parents should not take it upon themselves to decide that a child is "just hysterical" Once having been reassured, however, that the smothering spells or the heart attacks, the headaches or the

* Richmond, W V The Adolescent Boy, New York, Rinehart, 1933, p. 84.

globus hystericus (lump in the throat) are not organic, it is well not to let the little culprit get away with it. Some psychiatrists point out to him that he is not really sick or going crazy and that his mind is playing tricks on him, his "spells" are saving him from something that he does not wish to do or to face, or serve the purpose of getting something that he wants, hereafter no one will pay any attention to them

In a truly hysterical child, such Spartan treatment is likely to result in a flood of new symptoms, for the one thing that the hysterical personality craves is attention The psychoanalysts see in this the child's lack of security and his bid for affection Other psychiatrists describe the hysterical personality as a strongly extroverted type, with a shallow emotional life, very suggestible, prone to identify with others (as it is usually put, "very imitative"), and little conscious of any deep core of personality within This type of personality, they believe, can be distinguished even in childhood It must be said that the child hysteric nearly always has someone in his environment who is the inspiration or the pattern for his attacks or his disabilities. The striking resemblance of the child's symptoms to those of the adult who serves as his pattern is often remarked. Removal from this environment and the institution of a wholesome physical and mental regime, and especially placement where nothing can be gained by the hysterical displays, often works a magic cure

THE PSYCHOPATHIC CHILD

The psychopathic personality has been fully described in Chapter 13, where it was said to be in evidence in childhood, even in infancy In a sense the true psychopath never outgrows his infancy. To the end he shows the egocentricity, the inability to understand his relation to reality, as well as the inability to bear frustration, that characterize the infant But we must beware of confusing psychopathic behavior with the psychopathic personality itself Children may indulge in all sorts of perverse activities—lying, stealing, abnormal cruelty, bad sex behavior, assaults, and so on—without meriting the diagnosis of psychopath, which is so often tacked onto them There are different reasons for such behavior, and only occasionally is it due to actual psychopathy The true psychopathic personality, in the sense of the person who has from infancy displayed the traits of "adamantine stubbornness, temper tantrums,

utter selfishness, complete egocentricity, viciousness, sadism and a total lack of capacity for any substantial postponement of gratification," to quote again from Heaver's study,* is fortunately rare. When such a personality is actually in evidence in a child, whoever has him in charge should lose no time in procuring expert advice

The children who show undue selfishness (all children are selfish), hate and aggression, as they are found in those usually diagnosed as psychopathic, nearly always turn out to be children whose infancy and childhood are spent under intolerable conditions. Either they are rejected by their parents or they have had very unwise ones who have not known how to give them the security without which no child can get a real foothold in life The world is hostile to these children from the beginning, an uncertain milieu in which they never can find their places They either fight it directly or they learn to deal with it in cunning, underhanded ways

Treatment of such children should be in the hands of the psychiatrist or of other workers psychiatrically trained The success that has been attained in a few instances suggests that these children can be salvaged if the proper personnel can be obtained to live with and care for them The superhuman patience required is beyond the capacity of most people.

MAJOR PSYCHOSES IN CHILDREN

True psychoses, such as manic-depressive psychosis and dementia praecox in children, are rare, but they do occur We have had the opportunity to observe several

Gordon M., a fourteen-year-old boy from a broken home, was admitted to the hospital after a stormy career of several years' duration. He had spells of incorrigibility in school, when he shouted, sang, and tormented the other children, alternating with periods of quietude in which he seemed to be merely stupid At other times Gordon was a good student, and by no means a dullard. At twelve he was sent to an industrial school for younger children, where he continued to behave as before, finally getting into such a state that he was recognized as psychotic and so certified At thirty-four Gordon is still a hospital patient, though he is able to spend a good part of his time on parole The diagnosis always has been manic-depressive psychosis.

* Heaver, W. Lynwood A study of forty male psychopathic personalities before, during, and after hospitalization, Am J Psychiat. **100** 343, 1943

Tommy L., colored, was brought to the hospital at nine years of age, in a semistuporous state from which he passed into an excitement in which he was assaultive, tore his clothes and behaved like the usual adult in a catatonic excitement. Previous to this he had not been noticeably different from other children and was progressing fairly well in school. After a while he was better, but never could live outside the hospital. He was a fairly intelligent lad, learning to do various types of work about the institution, as well as to read and write fluently. As he grew older he became very rigid and pedantic, secretive about his delusions, and ceased to take any interest in work. He is now in the early thirties.

In 1941 Bradley published *Schizophrenia in Childhood*, which brings together all that was known up to that time. He notes that there appear to be two types of onset of the disease in childhood: the acute type, which comes on suddenly, as in the case noted above, and the chronic type, which has a much more insidious onset. Since, however, when details of the child's early life are obtainable one usually finds evidence of peculiar or *aberrant* behavior very early, even in infancy, one feels that the disease process may have been present very early in life, though it did not come to the attention of the physician until much later. We have in mind two cases, one diagnosed at fourteen and the other at sixteen, in which marked differences from the siblings were in evidence in early infancy. There was a seeming lack of appreciation of reality and an inability to make contacts with others in the family, so that from the beginning the child's behavior impressed everyone as "queer" or "peculiar."

The outlook for childhood schizophrenia is poor, but Bradley warns against too facile diagnosis. There are other conditions in childhood that have some of the symptoms of schizophrenia but are outgrown or yield to treatment. Much remains to be learned about dementia praecox in childhood, and perhaps the best advice that at present can be given to parents is not to be too quickly alarmed, but not to put off seeking psychiatric advice if the child's behavior is too peculiar—especially if he shows a tendency to be seclusive, to withdraw from contacts with other children and to live in a world of his own instead of trying to adjust himself to reality.

Child psychiatry is a new branch of medicine. Undoubtedly as it develops, more and more insight will be gained, not only into the causes of child behavior, normal as well as abnormal, but also into the beginning of adult maladjustments. Its scope must be greatly

enlarged, and many more psychiatrists must be trained and must turn their attention to this period of life. The working out of a comprehensive child-study program, with facilities for parent education as well as for care and treatment of those children needing it, is a matter for the future, nearly all the elements for such a program are already in existence, however, and await only the pressure from enlightened public opinion to put them together into a real effort to conserve our greatest national asset, our children.

READING LIST

Bender, L Childhood Schizophrenia, Am J. Orthopsychiat. 17:40–56, 1947

Bond, E D, and K E Appel The Treatment of Behavior Disorders Following Encephalitis, New York, Commonwealth Fund, 1931.

Bradley, Charles Schizophrenia in Childhood, New York, Macmillan, 1941

Cameron, H C. The Nervous Child, ed 4, London, Oxford, 1929

Kanner, Leo: Child Psychiatry, Springfield, Thomas, 1935.

Kasanin, J C Personality changes in children following cerebral trauma, J Nerv & Ment Dis 69:385–406, 1929

Levy, D M Maternal Overprotection, New York, Columbia Univ Press, 1943.

Lewis, N D. C, and B L Pacella, ed: Modern Trends in Child Psychiatry, New York, Internat. Univ Press, 1945

Louttit, C M Clinical Psychology, A Handbook of Children's Behavior Problems, New York, Harper, 1936

Menninger, William C. Juvenile Paresis, Baltimore, Williams & Wilkins, 1936.

Moodie, William The Doctor and the Difficult Child, New York, Commonwealth Fund, 1940.

Richards, Ether L Behavior Aspects of Child Conduct, New York, Macmillan, 1932

Richmond, Winifred V. The Adolescent Boy, New York, Rinehart, 1933

Thom, Douglas A: Everyday Problems of the Everyday Child, New York, Appleton-Century, 1927

——— Habit Clinics for Child Guidance, U. S Children's Bureau Publication No. 135, 1938 (Washington, Government Printing Office, 1939.)

17

Psychiatry and the Layman

Little more than a century ago, when the United States was well on its way to becoming a great and prosperous nation, when railroads were being built and the genius of New England was in flower, a young woman named Dorothea Dix, who had been forced to leave schoolteaching because of poor health, began to teach a Sunday school class for female prisoners in a Cambridge, Mass, jail. Dorothea Dix was not merely a pious woman, trying to do her duty by a group of poor unfortunates; she had great intelligence and insatiable curiosity and she began to look about her What she saw galvanized her into an activity that lasted for forty years, it not only revolutionized the care of the indigent insane in this country but took her across the water to stir up reform in England also Says Zilboorg,*

> "The work of Dorothea Lynde Dix stands out as one of the most heroic and most efficient and beneficial revolutions in the care of the mentally sick in history It was performed by one person, a woman, . . whose name in the beginning carried no authority whatsoever, whose influence at the start was nil, and whose immense energy, staggering grit, combative determination, and single-minded enthusiasm were unknown to herself when she first embarked upon her mission to have hospitals built for the pariahs which the mentally ill were considered at that time " She "traversed the whole country. Bad roads, unseasonable weather, poor means of transportation, inhospitable politicians, parsimonious rich, the selfcomplacency of bureaucrats—all this formidable mass of obstacles seemed to her but so many small pebbles on the road, which she swept aside with her energetic broom of conviction and faith, to march on without respite She reached, she broke into, State legislatures, the United States Congress, the English Parliament While she knew disappointments, anguish, even despair, she never gave up and she always conquered "

In 1848 Miss Dix submitted a Memorial to the United States Congress in which she said that she had seen more than 9,000 idiots,

* A History of Medical Psychology, New York, Norton, 1941, p. 382.

epileptics and insane in this country who were "destitute of appropriate care and protection . . . bound with galling chains, bowed beneath fetters and heavy iron balls attached to drag-chains, lacerated with ropes, scourged with rods and terrified beneath storms of execration and cruel blows; now subject to jibes and scorn and torturing tricks, now abandoned to the most outrageous violations."

In those days the mentally ill were largely confined in jails and almshouses, each community being supposed to care for its own indigent and ill Under these circumstances, without adequate supervision or intelligent inspection, with the ideal of legislators to keep the cost of caring for the "lunatics" as low as possible, and added to all this the ignorance and the indifference of the public, the worst abuses prevailed.

Dorothea Dix succeeded in arousing the public conscience. Before her death she had had a hand in founding or enlarging more than thirty State institutions in this country, where the ideas of the more enlightened psychiatrists were introduced and carried out. Although there are still, no doubt, isolated instances of abuse, and though many public hospitals, forced by the legislators "to keep the cost as low as possible," are still little more than custodial institutions, yet the idea of the mentally ill as unfortunate persons who deserve humane treatment and medical care has been since her day ineffaceably fixed in the public mind

Almost three quarters of a century later another layman, Clifford Beers, was instrumental in bringing psychiatry out of the hospital and founding the mental hygiene movement, which in the last thirty-five years has focused the energies of an increasing number of workers, both lay and medical, upon the problems of prevention and the dissemination of knowledge to that end

Clifford Beers knew the problems of the mental patient at first hand, for he himself resided for several years in a mental hospital The story of his illness is dramatically told in his book, *A Mind That Found Itself* In the early years of this century, shortly after leaving college, Beers became depressed and melancholy and attempted suicide He succeeded only in breaking his leg, but he did jolt his family, who had paid no attention to his complaints, into a realization of his mental state, and he was hospitalized After his recovery he thought a great deal about the lack of understanding of the mental patient, even on the part of doctors and nurses, who seemed to have little knowledge of what was going on in the patient's mind What could be done to make people realize that the

mental patient had not become another order of creature but was moved by the same desires and motives as the supposedly normal? How could he use his own experience to aid in the understanding of the mentally sick?

His book was the first answer to these questions, but it was not enough Beers talked it over with his friends and various interested people and also with psychiatrists The result was the founding of a Mental Hygiene Society in Connecticut in 1908, which brought together a number of outstanding psychiatrists as well as laymen from various fields This was the beginning of the Mental Hygiene movement, which in twenty-one years had branches not only all over the United States, but had become a world-wide movement and could hold a large International Congress of Mental Hygiene in Washington

Very soon mental hygiene began to concern itself with prevention As statistics became available, and the appalling number of mental disorders began to force itself upon public attention, causes and reasons and the means of prevention became of paramount importance Before 1930 it was common knowledge that the number of mental patients in the United States equalled the number from all other illnesses combined It is often stated that for every bed in a general hospital there is one in a mental hospital also One person out of every twenty is destined to spend some time out of his life in a mental institution. When we add to these the far more numerous sufferers from neuroses, who are seldom hospitalized, and the sufferers from mental disorders of one kind and another who inhabit our jails, almshouses and reformatories, the imagination is staggered One is almost tempted to remark that in a race of creatures as abnormal as ours seems to be, a world war is a logical outcome

For a while the movement threatened to be almost too enthusiastic and to promise more than it could perform. Gradually, however, it has settled down into a longtime program, the objective of which may be said to be twofold research and education Mental hygiene makes use of all the discoveries that bear on human development and human behavior, and it encourages research accordingly But unless the knowledge so gained can be made to function in human lives, so that people become happier and better adjusted, all the labor is in vain One of the first things that forced itself upon the attention was the fact that adult mental hygiene problems were often difficult or impossible of solution, but that they always

had a history extending back to childhood. Here the trouble begins, and here it must be attacked if it is to be prevented.

In the early 1920's Child Guidance Clinics began to be organized and they have spread over nearly all the United States. Children's clinics were already in existence in the courts, institutions and, in some places, in schools and colleges, but they were usually without benefit of psychiatry and were largely in the hands of psychologists They had done and continue to do yeoman service in child psychology, and we must remember that child psychiatrists were nonexistent twenty years ago, when the National Committee for Mental Hygiene began their training. Nor can we omit the influence of Witmer's Psychological Clinic at the University of Pennsylvania, the first to be organized in this country, and the work of Healy and his associates in the Juvenile Court in Chicago as early as 1939, and later at the Judge Baker Guidance Center in Boston Dr Healy's work laid the foundation for child psychiatry and added immeasurably to our knowledge of maladjustment and delinquency

The beginnings of human behavior were pushed ever farther back. Thom established "Habit Clinics" for preschool children in Boston, Gesell organized the Clinic for Child Development at Yale and began the study of personality development at birth. As the importance of the first few years of life became evident, parental education began to be seen as a necessity The part that the community plays in the development of personality began to be appreciated and is leading to studies of child development in primitive cultures, as well as comparative studies of different groups in our own culture Not all these activities by any means have been under the auspices of the organized Mental Hygiene movement, but all have contributed to its advancement and have conceived of themselves as co-workers in its field.

Recently a wave of books, magazine articles and motion pictures dealing more or less intelligently and fairly with the problem of mental disease has appeared, indicating a wide public interest Various foundations have given large sums to promote psychiatric teaching and research and hope thereby to improve the care and the prospects of the mentally ill—one thinks here of the Rockefeller, the Markle and the Macy foundation, and the Supreme Council of the Scottish Rite Masons (Northern Jurisdiction) The Psychiatric Foundation has been organized to mobilize lay interest, as is so effectively done in the case of infantile paralysis and tuberculosis, for example. Finally, late in the 1946 session, Congress passed the

Mental Health Act, providing for an annual outlay of ten million dollars for research, teaching and the general raising of hospital standards.

The Mental Hygiene movement has been from the beginning under the guidance of psychiatrists, and indeed is often spoken of as extramural psychiatry, but its work is supported and much of it is done by laymen. After all, it is the layman who is most concerned. He must support by his taxes any measures for dealing with the problems raised by mental illness or abnormality, whether those measures be constructive or not, and it is he who, in the community or in his own home, sees their beginnings and suffers from their neglect

When we stop to think about it, we all know that the matter of most importance in any civilization or cultural group is not its wealth or technical accomplishment but the human material of which it is composed The real strength of a nation lies in the quality of its people For the first time in history, we have sufficient knowledge of human nature to enable us to attack its study scientifically and to predict, up to a certain point at least, what can be expected of an individual or of groups of individuals in certain situations We know something of the conditions under which human beings can develop and flourish, as well as those under which development is stunted and maladjustment inevitable An army marches forward on its stomach, according to Napoleon, but it has taken us a long time to see the essential truth in the remark that a nation marches forward upon the feet of its children

As has been stressed many times in this book, psychiatry and psychology do not pretend to have all the answers to the problems of human beings. Many of them must be sought in other sciences—in physics and chemistry, in anthropology and sociology, as well as in the newer science of ecology, which studies the relationship between the organism and its environment Nevertheless, in its knowledge of fundamental human needs and its insistence upon the necessity for their fulfillment, psychiatry has the key to the development of normal personality

In this war against mental maladjustment and mental disease, or, to put it positively, in this campaign for the development of better human beings, for raising the level of our human resources, the layman must play an increasingly important part. Without a body of informed public opinion behind him, the psychiatrist is as helpless as a general would be without an army He can chart cam-

paigns and plan procedures, but the layman must carry them out The doctor cannot force his patients to take his medicines or follow his advice Without their co-operation he is helpless

This book has been written in the faith that the layman wants to know more about psychiatry, and that, rightly informed, he will lose much of his dread of mental abnormalities and be willing, even eager, to join with psychiatry and mental hygiene in helping to advance the campaign for better human beings in a better world

READING LIST

Bassett, Clara: Mental Hygiene and the Community, New York, Macmillan, 1934

Beers, Clifford A Mind That Found Itself, ed. 25, Garden City, New York, Doubleday, 1935.

Gesell, Arnold, and others. The First Five Years of Life, New York, Harper, 1940.

Hogue, Helen Gibson Bringing Up Ourselves, New York, Scribner, 1943

Kardiner, A Psychological Frontiers of Society, New York, Columbia Univ. Press, 1946.

Marshall, Helen E Dorothea Dix: Forgotten Samaritan, Chapel Hill, University of North Carolina Press, 1937.

Preston, George H.. The Substance of Mental Health, New York, Rinehart, 1943.

Publications of the National Committee for Mental Hygiene, 1790 Broadway, New York City

Strecker, Edward A, and K E Appel: Discovering Ourselves, A View of the Human Mind and How It Works, ed. 2, New York, Macmillan, 1943.

Index

Superior n ([n]) refers to names which appear in the footnotes